Chapter. 5

भारतीय शास्त्रीय संगीत की सामयिक अपेक्षायें

1 संस्थागत शिक्षा पद्धति में सुधार -

संगीत शिक्षण में निर्धारित क्रम बनाने के अर्थात् उसे संस्थागत बनाने के मुख्य तीन उद्देश्य थे, एक तो उसे शिक्षण के अन्य विषयों के स्तर पर लाकर सम्मान दिलाना, दूसरा उसे सर्वजन सुलभ बनाना, तीसरा संगीत-शिक्षा के क्षेत्र में फैली अनियमितता तथा मनमौजीपन को दूर करना। प्राचीन संगीत शिक्षा पद्धति में विद्यार्थी के जीवन का एक लम्बा समय व्यर्थ नष्ट होता था, उसमें थोड़ी बचत हुई। मिथ्या एवं संकुचित विचारधारा कि खानदानी व्यक्ति ही संगीत की शिक्षा ले सकता है, विद्यालयीन शिक्षा के कारण समाप्त हो गई। इस प्रकार संस्थागत-शिक्षा-पद्धति ने संगीत जगत में घरानेदार-शिक्षा-पद्धति के समय में उत्पन्न कई समस्याओं का अंत किया; तथा इसके स्वरूप को रूढ़ियों के मिविड़तम कूप से निकालकर नया कलेवर प्रदान करने की ओर शिक्षा-शास्त्रियों का ध्यान आकर्षित किया। इन प्रयत्नों से शताब्दियों का बंदी मुक्त होकर विचरने लगा, प्रतिबंध हटा, किन्तु प्रतिस्पर्धा बढ़ी, प्रसार तो हुआ पर कलात्मक स्तर घटा, ज्यों-ज्यों चिकित्सा हुई रोग बढ़ा, सम्भवतः इसलिये कि रोग का निदान निर्विवाद रूप से नहीं हो पाया।

आज अनेक विद्यार्थी संगीत विषय में स्नातक, उपस्नातक, व शोधकार्यरत हैं कई शोधकार्य पूर्ण कर चुके हैं। बचपन से ही फिल्म संगीत या सुगम संगीत कानों में पड़ते-पड़ते तथा उसकी नकल करते-करते विद्यार्थियों को संगीत की समझ अच्छी हो गई है। वे किसी भी बंदिश अथवा चीज को आसानी से ग्रहण कर लेते हैं, किन्तु दूसरी ओर इसमें भी संदेह नहीं कि बहुतों को यह भी मालूम नहीं होता कि हारमोनियम में उनका षड़ज-पंचम कौन सा है? तानपूरे के तार किन स्वरों में मिलाये गये हैं? सितार के तार कितने हैं? किन-किन स्वरों के हैं? तबले में कौन सी ताल बज रही

है? जो स्वर गले से निकल रहे हैं वे कौन से हैं?

संगीत शिक्षा की संस्थागत-शिक्षा-व्यवस्था ने जहाँ संगीत कला के क्षेत्र में संख्यात्मकता की वृद्धि हुई है वहाँ इसका गुणात्मक स्तर काफी घटा दिखता है। संगीत कला के गुणात्मक स्तर घटने के क्या कारण हो सकते हैं इसकी चर्चा अध्याय तृतीय में, 'संस्थागत शिक्षा पद्धति के प्रभाव' के अंतर्गत की जा चुकी है। इस अध्याय में हमें उन उपायों की ओर देखना है जिनसे गुणात्मकता घटने की इस स्थिति को रोका जाय और समयजन्य आवश्यकताओं को देखते हुये संगीत की शिक्षा व्यवस्था में इस प्रकार के परिवर्तन किये जा सकें जिससे इस कला का भविष्य उज्वल हो सके।

शिक्षा किसी न किसी रूप में आदिकाल से चली आ रही है। प्राचीनकाल में जब मनुष्य आदिम अवस्था में था उस समय वह जो कुछ भी कार्य करता था वह एक दूसरे को देखकर अनुकरण के द्वारा करता था। सभ्यता के विकास के साथ ही साथ मानव का बौद्धिक विकास भी होने लगा और ज्ञानार्जन की भावना बढ़ने के साथ समाज में शिक्षा की आवश्यकता का अनुभव होने लगा। अतः समाज ने यह निश्चित किया कि शिक्षा विशेष व्यक्तियों द्वारा विशेष स्थान पर ही दी जाय; जिससे समाज का प्रत्येक सदस्य उस शिक्षा को ग्रहण कर आगे जीवन में आने वाली समस्याओं को सुलझा सके और सुखमय जीवन व्यतीत कर सके। अतः किसी विषय की शिक्षा की समस्याओं को जानने के बाद यह आवश्यक होता है कि उसके समाधान से पहले शिक्षा क्या है? यह जान लिया जाय।

प्रायः शिक्षा का अर्थ किसी विद्यालय में अध्ययन करना समझा जाता है। परंतु शिक्षा की परिधि केवल विद्यालय तक सीमित नहीं है। शिक्षा की परिभाषा विभिन्न विद्वानों ने इस प्रकार की है —

जर्मन के प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री पेस्तलॉजी के अनुसार —

"शिक्षा मनुष्य की समस्त शक्तियों का स्वाभाविक, प्रगतिशील और विरोधहीन विकास है।"1

अरस्तु के अनुसार – "शिक्षा का अर्थ है स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का विकास करना।"2

प्लेटो के अनुसार – "The capacity to feel pleasure and pain at the wright moment."3

हार्न महोदय की यह परिभाषा आदर्शवाद की ओर संकेत करती है – "शिक्षा एक चिरंतन प्रक्रिया है जो शारीरिक और मानसिक दृष्टि से विकसित, स्वतंत्र एवं चेतनायुक्त मानव को ईश्वर के प्रति उच्च अनुकूलन कराती है जिसकी अभिव्यक्ति व्यक्ति के बौद्धिक, संवेगात्मक, और संकल्पित वातावरण में होती है।"4

स्ट्रेयर का कथन है – "शिक्षा वह है जो एक व्यक्ति के कार्यों में अंतर ला देती है।"5

रवीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार – "गुरुदेव भारत में एक ऐसी शिक्षा चाहते थे जो वातावरण के निकटतम सम्पर्कों में दी जाय वह समझाते थे कि शिक्षा का उद्देश्य सम्पूर्ण प्रकृति तथा सम्पूर्ण जीवन से व्यक्तित्व में एकत्व की भावना का विकास है। सुसंयोजित व्यक्तित्व के लिये यह एकत्व की भावना ही वे महत्वपूर्ण समझते थे। इस प्रकार की शिक्षा

---

1 शिक्षा के सिद्धांत, डा. राजेश्वर मिश्रा, पृ. ११
२ विश्व के महान शिक्षा शास्त्री, डा. वैधनाथ वर्मा, पृ. ४२
३ शिक्षा के सिद्धांत, डा. राजेश्वर मिश्रा पृ. १२
४ वही पृ. १२
५ वही पृ. १३

के लिये आवश्यक है कि प्रारंभ से ही बालक की भावनाओं की ओर ध्यान रखा जाय। इसीलिये गुरुदेव कहते थे कि जिस प्रकार पौधा स्वयं अपनी रोशनी से बढ़ता है उसी प्रकार बालक के चेतन में प्रारंभ से ही इस प्रकार के संस्कार चाहिये कि जो आगे जाकर बालक के विकास में सहायक हों।"[1] महात्मा गांधी भी शिक्षा का अर्थ यही मानते थे किन्तु इस प्रकार के विकास के साथ-साथ वे समाज सेवा को भी शिक्षा का महत्वपूर्ण अंग मानते थे।

स्वामी विवेकानंद शिक्षा का अर्थ व्यक्ति के अंतर्निहित गुणों के स्पष्टीकरण के रूप में प्रकट करते हैं। उनका विचार है कि व्यक्ति बाहर से कुछ नहीं सीखता वह केवल उसकी खोज करता है जो कि व्यक्ति में स्वयं पहले निहित है। शिक्षा का कार्यक्रम मानव के जन्म से लेकर मृत्यु तक चलता है और प्रत्येक प्राणी उसके लिये शिक्षा का कार्य किसी न किसी रूप में करता है। यहाँ तक कि छोटे से छोटे जीव जैसे चींटी या घोंघे तक से शिक्षा प्राप्त होती है। इस प्रकार समय-समय पर विभिन्न व्यक्तियों ने शिक्षा की परिभाषा भिन्न-भिन्न प्रकार से की है।

परंतु साधारणतः शिक्षा के दो अर्थ माने जाते हैं — १ व्यापक अर्थ २ संकुचित अर्थ

१ व्यापक अर्थ —

इस अर्थ के अनुसार शिक्षा वह क्रिया है जिससे मनुष्य के जीवन का विकास होता है अथवा जिससे वह परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करता है। प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री टी-रेमन्ट का कथन है कि शिक्षा विकास का वह क्रम है जिससे मनुष्य अपने को आवश्यकतानुसार भौतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक वातावरण के अनुकूल बना लेता

---

१ विश्व के महान शिक्षा शास्त्री, वैधनाथ प्रसाद वर्मा, पृ. ३३९-३८

है।[1] शिक्षा का यह कार्य जीवन भर चलता है। इस अर्थ के अनुसार बालक प्रकृति से ही कुछ ना कुछ सीखता है।

२ शिक्षा का संकुचित अर्थ –

इस अर्थ के अनुसार शिक्षा कुछ विशेष प्रभावों तथा विषयों के अध्ययन तक सीमित हो जाती है। इस अर्थ के अनुसार बालकों को वह ज्ञान दिया जाता है जिसे समाज का व्यसक वर्ग उनके जीवन के लिये उपयोगी समझता है। यह शिक्षा बालक एक पूर्व-नियोजित योजना के अनुसार पाता है। इस प्रकार की शिक्षा-व्यवस्था के लिये अध्यापक शिक्षा का उत्तरदायी माना जाता है। इस प्रकार की शिक्षा में ज्ञान अंदर से नहीं आता वरन् शिक्षक बालक के मस्तिष्क को ज्ञान से ठूंसने का प्रयास करता है। यह ज्ञान केवल परीक्षा में पास होने का साधन मात्र बनकर रह जाता है। जीवन में आवश्यकता पड़ने पर उससे काम नहीं लिया जा सकता है। इसीलिये आधुनिक युग में इस प्रकार की शिक्षा का महत्व समाप्त हो रहा है और अब बालक के सर्वांगिण विकास पर ध्यान देना आवश्यक समझा जा रहा है।

शिक्षा कोई जड़ वस्तु नहीं है जो किसी वस्तु के रूप में दी जा सके। शिक्षा तो एक प्रकार की चेतना है जिसे व्यक्ति स्वयं प्राप्त करता है। शिक्षा से जीवन की प्रगति होती है अतः उसे गतिशील क्रिया कहा गया है। कुछ विद्वान उसे सविचार प्रक्रिया कहते हैं क्योंकि शिक्षा के लिये विचारपूर्वक एवं जानबूझकर प्रयत्न किये जाते हैं। एडम्स महोदय ने शिक्षा के लिये कहा है कि शिक्षा जीवन की गतिशील क्रिया है। इसका क्षेत्र अत्यंत विशाल है। ड्यूवी महोदय ने भी माना है कि शिक्षा के दो प्रमुख अंग हैं–

---

1 विश्व के महान शिक्षाशास्त्री, डा. वैद्यनाथ वर्मा पृ. ३३१-३२

१ मनोवैज्ञानिक २ सामाजिक। बालक का विकास उसकी मूल प्रवृत्तियों तथा शक्तियों पर निर्भर करता है। अत: शिक्षक का बालक की मूल प्रवृत्तियों और शक्तियों से परिचित होना आवश्यक है। इसके अध्ययन से उसे शिक्षा की सामग्री का ज्ञान हो जायेगा। सामाजिक अंग का तात्पर्य यह है कि समाज में क्रियाशील रहकर ही व्यक्ति शिक्षा प्राप्त कर सकता है, क्योंकि वह एक सामाजिक प्राणी है और वह समाज से हर समय कुछ न कुछ सीखता है। बालक का जीवन उस समाज के लिये होता है जिसका कि वह अंग है। अत: उसकी शिक्षा उसी वातावरण में होनी चाहिये जिसमें वह रहता है। इस प्रकार ड्यूवी शिक्षा के सामाजिक पक्ष पर बल देते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से शिक्षा के विभिन्न अर्थ स्पष्ट हो जाते हैं। प्राय: इस बात को आधुनिक युग के सभी विद्वान स्वीकार करते हैं कि आज की शिक्षा का अर्थ है बालक का सर्वांगीण विकास अथवा व्यक्ति के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास। इस प्रकार शिक्षा का अर्थ उस ज्ञान अथवा ज्योति से है जो व्यक्ति के जीवन का पथप्रदर्शन करती है। इसलिये ज्ञान मनुष्य का तृतीय नेत्र कहा गया है। शिक्षा को मातृ-तुल्य-पोषक, पितृ-तुल्य-पथप्रदर्शक और स्त्री-तुल्य आनंदप्रद कहा गया है। वह भौतिक क्षेत्र में यश व सम्पत्ति देने वाली तथा आध्यात्मिक क्षेत्र में मोक्ष प्रदान करने वाली मानी गयी है।

शिक्षा के उद्देश्य

शिक्षा रूपी त्रिभुज के तीन अंग हैं। शिक्षक, पाठ्य-विषय और बालक इन तीनों के बीच ही शिक्षण का कार्य चलता है। प्राचीन काल में शिक्षा रूपी इस त्रिभुज का अंग शिक्षक माना जाता था। मध्यकाल में शिक्षा के दूसरे अंग अर्थात् पाठ्य-विषय को अधिक महत्व दिया गया।

स्वतंत्रता संग्राम के बाद स्वतंत्र भारत में आर्थिक और राजनैतिक परिवर्तन होने के साथ ही साथ शिक्षा के उद्देश्यों में भी बहुत महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये। आधुनिक शिक्षा में बालक का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। अब बालक शिक्षा का केन्द्र है इस मत का प्रतिपादन सर्वप्रथम एडम्स महोदय ने किया था। उन्होंने कहा कि शिक्षा का विवरण इस विषय में मिलता है, "शिक्षक जॉन को लैटिन पढ़ाता है।" इस वाक्य में पढ़ाना क्रिया के दो कर्म हैं एक लैटिन और दूसरा जॉन। पहले जॉन है फिर लैटिन तभी शिक्षक शिक्षण कार्य में सफल हो सकता है; अतः शिक्षा के नवीन रूप में बालक को शिक्षा का केन्द्र माना गया है। अब शिक्षा के समस्त कार्य बालक की रुचियों के अनुरूप किये जाते हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि शिक्षा बाल केन्द्रित है तो बालक को क्या बनाना है। प्रायः बालक शिक्षा समाप्त करने के बाद शिक्षा द्वारा किसी न किसी व्यवस्था को सीखकर अपनी आजीविका कमाता है। जीविकोपार्जन के इस उद्देश्य को दाल-रोटी का उद्देश्य कहा जा सकता है। कुछ अन्य देशों में यह उद्देश्य ब्लूजैकिट और व्हाईट कालर के नाम से प्रसिद्ध है, किन्तु यदि जीविकोपार्जन ही शिक्षा का उद्देश्य है तो क्या जीवन का लक्ष्य रोटी कमाना और पेट भरना है? पेट तो पशु भी किसी न किसी प्रकार से भर ही लेते हैं। फिर पशु और मानव में अंतर ही क्या रहा। हमारे पूर्वजों ने जीवन का लक्ष्य चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष माना है तो फिर जीविकोपार्जन हेतु शिक्षा ग्रहण करने वाले व्यक्तियों को इसकी प्राप्ति कैसे हो सकती है। इसलिये शिक्षा तो ऐसी होनी चाहिये जो मनुष्य के सर्वांगीण विकास के साथ ही साथ मनुष्य को आमोद-प्रमोद तथा बेकार के समय का सदुपयोग करने के लिये तैय्यार करे। इसके अतिरिक्त आजीविका कमाने के चक्कर में पड़कर हम संगीत कला, साहित्य आदि से कोई लाभ नहीं उठा सकेंगे और

उनसे दूर रहने पर जीवन रसहीन हो जायेगा।

कुछ विद्वानों ने शिक्षा का उद्देश्य, 'विद्या के लिये विद्या माना है।" प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री कोमेनियस शिक्षा के इसी उद्देश्य से सहमत थे। उनका कहना था कि आदर्श स्कूल का सबसे उत्तम काम है दूसरों को ज्ञान देना। यह जीविकोपार्जन के उद्देश्य से बिलकुल उलटा है। जहाँ जीविकोपार्जन का उद्देश्य सांसारिक सुख एवं सम्पत्ति को बढ़ाता है वहाँ ज्ञान मस्तिष्क पर बल देता है; किन्तु यह ज्ञान यदि बालक की बुद्धि तक सीमित रहता है तो ऐसे ज्ञान से लाभ ही क्या। ज्ञान तो ऐसा होना चाहिये जो बालक को भविष्य में आने वाली समस्याओं को सुलझाने तथा जीवन की कठिनाइयों को दूर करने में सहायक हो।

इसी प्रकार शिक्षा के शारीरिक विकास का उद्देश्य, सांस्कृतिक उद्देश्य, नैतिक उद्देश्य, जन्मजात गुणों के विकास का उद्देश्य, सामाजिकता की भावना के विकास का उद्देश्य इत्यादि समय-समय पर विभिन्न विद्वानों ने शिक्षा के विभिन्न उद्देश्य निर्धारित किये हैं। शिक्षा के किसी एक उद्देश्य पर जोर देना तथा दूसरे तथ्यों को नजरअंदाज करना व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में बाधक होगा। इस प्रकार शिक्षा के उद्देश्य अनेक हैं जो कि देश, काल, व्यक्ति तथा समाज के अनुसार ही बदलते रहे हैं। शिक्षा के प्रमुख विचारकों का मत है कि शिक्षा का उद्देश्य बहुमुखी है। इसमें बौद्धिक, नैतिक, शारीरिक, सांस्कृतिक, भावात्मक, सामाजिक आदि सभी समाहित हैं। इसीलिये शिक्षा के उद्देश्य के लिये भूतपूर्व राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद ने कहा है—

"The real aim of education is to develope the body, mind and character of a man."

इन्हीं तत्वों को ध्यान में रखकर आज शिक्षा में यथा संभव विविध विषय पढ़ाये जाते हैं। जहाँ ज्ञान के लिये विज्ञान और गणित जैसे विषयों को पढ़ाया जाता है तो बालक के

संवेगात्मक विकास के लिये संगीत कला तथा अन्य कलाओं को भी प्रोत्साहन दिया जाता है। राष्ट्र के हित के लिये भी उपयोगी शिक्षा दी जाती है। जिससे वास्तव में बालक के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास हो सके और उसकी शिक्षा स्वयं उसके लिये, देश के लिये और समाज के लिये उपयोगी सिद्ध हो सके।

अतः शिक्षा के उपरोक्त व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के उद्देश्य का आधार लेकर अनेक परिवर्तन किये जाने की आवश्यकता है उसमें उत्पन्न अनेक दोषों को दूर करने की आवश्यकता है। तभी वह शिक्षार्थी, समाज और राष्ट्र के लिये हितकर हो सकेगी। प्रारंभ में संगीत शिक्षा अन्य विषयों के साथ चले फिर प्रतिभाशाली और उसमें रुचि रखने वाले विद्यार्थियों का चुनाव करने के पश्चात हर तरह से संगीत शिक्षा को उनका विकास करने योग्य बनाया जाय ताकि वे उसमें दक्षता हासिल कर अपने जीवन की समस्याओं को हल करते हुये स्वयं सुखी हों और एक सुखी सम्पन्न समृद्ध समाज व राष्ट्र के निर्माण में अपना योगदान दे सकें। इसके लिये हमें आज हमारी संगीत-शिक्षा-पद्धति में निम्नलिखित तथ्यों में सुधार करने की आवश्यकता है। इसकी आवश्यकता विद्वान लूथर के शब्दों द्वारा हमारे सम्मुख और भी अधिक स्पष्ट हो सकती है – "संगीत मनुष्य को दयालु, नीतिशील, और बुद्धिमान बनाता है। संगीत खुदा की दी हुई कला है, जो मनुष्य को कष्टों से दूर कर उन्हें शांति पहुँचाती है।"[1]

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में शिक्षा का प्रसार काफी तेजी से हो रहा है। जिसमें संगीत शिक्षा का स्थान भी अपना अमूल्य स्थान रखता है। भारतवर्ष के सभी प्रान्तों में संगीत शिक्षण के लिये

---

1 संगीत १९५५, मई, पृ.४

विधालय, महाविधालय तथा विश्वविधालयों में व्यवस्था की गयी है। परंतु इस व्यवस्था में कहीं कमियों रह गयी हैं कि हमें उसका पूर्ण लाभ नहीं मिल पा रहा है।

संगीत ऐसी कला है, जिसका शास्त्रीय परंपरागत रूप शिक्षा के बिना असंभव है। प्रत्येक कला ग्रहण करने के लिये प्रतिभा का होना परमावश्यक है, किन्तु संगीत में प्रतिभा के साथ सुशिक्षा महत्वपूर्ण तथा आवश्यक बिन्दु है। संगीत की कलात्मकता, शास्त्रीयता एवं परम्परा की सुरक्षा तथा विकास करने में शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान है। अतः संगीत शिक्षा के महत्व को समझते हुये सर्वप्रथम आज की परिस्थितियों में इस क्षेत्र में उत्पन्न समस्याओं का समाधान करना आवश्यक है। यहाँ शोधकर्ता ने संगीत शिक्षण की समस्याओं से संबंधित सामग्री एकत्रित करने के लिये तथा उनके निराकरण संबंधी कई प्रश्नों के लिये मत प्राप्त करने के लिये प्रश्नावली प्रविधि का प्रयोग किया है; क्योंकि प्रश्नावली गुणात्मक एवं संख्यात्मक सूचना संग्रहित करने वाले अन्य उपकरणों की अपेक्षा सर्वाधिक लचीला उपकरण है।

प्रश्नावली का निर्माण दो प्रकार से किया गया। एक प्रश्नावली महाविधालयों के संगीत छात्रों के लिये तथा एक प्रश्नावली महाविधालयों के संगीत प्राध्यापकों के लिये बनाई गई है। दोनों तरह की प्रश्नावली का निर्माण महाविधालय में संगीत शिक्षण से संबंधित समस्याओं के वर्गों के आधार पर किया गया है। जो इस प्रकार हैं —(१) विधालय के प्रारंभिक स्तर से संगीत विषय अनिवार्य हो (२) छात्रों का चुनाव (३) संगीत शिक्षण के लिये उपयुक्त स्थान (४) कक्षा में छात्रों की संख्या (५) कक्षा-शिक्षा का समय (६) महाविधालयों में वाद्य यंत्रों का अभाव (७) प्रशिक्षित प्राध्यापक (८) विश्वविधलयीन शिक्षा में पाठ्यक्रम की कमियों (९) वर्तमान शिक्षा प्रणाली में गुरु कुल-शिक्षा-पद्धति का समन्वय (१०) पाठ्यक्रम की अधिकता (११) संगीत संस्थाओं को आर्थिक सहायता का अभाव (१२) पर्याप्त संगीत शिक्षण सहायताओं के प्रयोग का अभाव संगीत शिक्षा में (१३) वर्तमान परीक्षा पद्धति का दोष पूर्ण होना।

संगीत प्राध्यापकों के लिये प्रश्नावली —

संगीत प्राध्यापकों के लिये बनाई गयी प्रश्नावली में ८९ प्रश्नों का निर्माण किया गया है। ये प्रश्न समस्याओं से संबंधित १३ वर्गों के आधार पर इस प्रकार बाँटे गये हैं — प्रथम वर्ग के अंतर्गत तीन प्रश्न, द्वितीय वर्ग के अंतर्गत पाँच प्रश्न, तृतीय वर्ग के अंतर्गत दो प्रश्न, चतुर्थ वर्ग में तीन प्रश्न, पंचम वर्ग में ६ प्रश्न, छठवें वर्ग में तीन प्रश्न, सातवें वर्ग में ११ प्रश्न, आठवें वर्ग में भी ११ प्रश्न, नवें वर्ग में दस प्रश्न, दसवें वर्ग में चार प्रश्न, ग्यारहवें वर्ग में तीन प्रश्न, बारहवें वर्ग में पंद्रह प्रश्न, तेरहवें वर्ग में बारह प्रश्न रखे गये हैं।

संगीत छात्रों के लिये प्रश्नावली —

संगीत छात्रों के लिये निर्मित प्रश्नावली संगीत प्राध्यापकों की प्रश्नावली से भिन्नता रखती है। छात्रों की प्रश्नावली में कुल पचास प्रश्नों को संगीत शिक्षा से संबंधित दस समस्याओं के वर्गों के अंतर्गत इस प्रकार विभक्त किया गया है — प्रथम वर्ग के अंतर्गत दो प्रश्न, द्वितीय वर्ग के अंतर्गत छः प्रश्न, तृतीय वर्ग में तीन प्रश्न, चतुर्थ वर्ग में छः प्रश्न, पंचम वर्ग में चार प्रश्न, षष्ठम वर्ग में चार प्रश्न, सातवें वर्ग में चार प्रश्न, आठवें वर्ग में चार प्रश्न, नवें वर्ग में नौ प्रश्न, दसवें वर्ग में आठ प्रश्न रखे गये हैं।

प्रश्नावली के निर्माण के पश्चात टंकण कला द्वारा उसकी प्रतियाँ बनवाई। संगीत प्राध्यापकों के लिये प्रश्नावली की केवल १०० प्रतियाँ बनवाई तथा विद्यार्थियों के लिये दो सौ प्रतियाँ बनवाई गयीं। इसके पश्चात दस महाविद्यालयों में ये प्रतियाँ प्राध्यापकों के लिये दस-दस तथा छात्रों के लिये बीस-बीस प्रतियाँ स्वयं शोधकर्ता ने वितरित कीं तथा स्वयं ही एकत्रित भी कीं। ये प्रतियाँ उन्हीं महाविद्यालयों में वितरित की गयीं जहाँ संगीत शिक्षण सुचारु रूप से चल रहा है। तथा ये प्रश्नावलियाँ संगीत के केवल उपस्नातक कक्षा के छात्रों से ही भरवाई गयीं। अनुसंधानकर्ता द्वारा प्रत्येक संगीत प्राध्यापक तथा छात्र से निवेदन किया गया कि

उनके प्रश्नों के उत्तरों को गोपनीय रखा जायेगा। इस प्रकार शोधकर्ती द्वारा संगीत शिक्षण की समस्याओं से सम्बन्धित, प्रश्नावली के माध्यम से दत्त सामग्री का संकलन किया गया।

संगीत प्राध्यापकों से संबंधित प्रश्नावली के परिणाम –

संगीत प्राध्यापकों तथा संगीत छात्रों हेतु निर्मित प्रश्नावलियाँ अग्रलिखित दस महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में वितरित की गयीं – इन्दिरा कला विश्वविद्यालय खैरागढ़, राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर, भातखंडे संगीत महाविद्यालय लखनऊ, फैकल्टी ऑफ परफार्मिंग आर्टस बनारस, संगीत एवं ललित कला संकाय दिल्ली विश्वविद्यालय, शासकीय मानकुंवर बाई महाविद्यालय जबलपुर, आदर्श संगीत महाविद्यालय सागर, भातखण्डे संगीत महाविद्यालय जबलपुर, शासकीय स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय इन्दौर, राजस्थान संगीत कला संस्थान जयपुर। महाविद्यालयों के संगीत प्राध्यापकों तथा छात्रों द्वारा भेजे गये प्रश्नावलियों के परिणाम इस प्रकार हैं –

1 विद्यालय के प्रारंभिक स्तर से संगीत विषय अनिवार्य हो –

हमारी आज की संगीत-शिक्षा-व्यवस्था की सबसे बड़ी कमजोरी यह देखी जाती है कि विद्यालय के प्रारंभिक स्तर से संगीत शिक्षा की कोई अनिवार्य व्यवस्था नहीं है। जहाँ संगीत कला की ठोस नींव पड़ सकती थी संस्कार पड़ सकता था वहीं हमने इसकी कोई आवश्यकता नहीं समझी। इसका परिणाम हमारे सामने यह है कि जब विद्यार्थी महाविद्यालयीन शिक्षा ग्रहण करना आरंभ करता है तो वहीं संगीत के, 'क, ख, ग' की शुरुआत करता है। फिर बी. ए. अथवा एम. ए. की डिग्री लेने के पश्चात् उसके पूर्ण निष्णात होने की अपेक्षा की जाती है जो कि संभव नहीं है। अतः हमें सर्वप्रथम अपनी संगीत शिक्षा-व्यवस्था की इसी त्रुटि को दूर करने की आवश्यकता आज की परिस्थितियों में है। आज संगीत जगत के अनेक प्रसिद्ध विद्वानों, कलावंतों का भी यही आग्रह है कि संगीत-कला के स्तर में सुधार के लिये आवश्यक है कि संगीत-शिक्षा की शुरुआत संगीत-कला के स्तर में सुधार के लिये

विधालयीन शिक्षा की शुरुआत के साथ ही करदी जाय इस संबंध में कुछ प्रबुद्ध संगीतज्ञों के विचार इस प्रकार हैं—

श्रीमती सुमति मुटाटकर — "के. जी. स्तर से संगीत कक्षा के स्तर के अनुरूप अनिवार्य रूप से सिखाया जाय। इससे विधार्थियों का संस्कार बनने में सहायता प्राप्त होगी।"[1]

श्री वामन हरी देशपांडे — "६ से १० - १२ वर्ष की उम्र के बालक के कानों पर स्कूल में जो संगीत आ जायेगा उससे वे संस्कारयुक्त बन जायेंगे पाठशाला शुरु होने के पहले, दीर्घविकाश में, छुट्टी के समय अच्छा सुरीला संगीत उनके कानों पर आ जाय तो स्वर, लय, ताल आदि का अनुभव और संगीत का आकर्षण निर्माण होगा। पाठशाला में लाऊडस्पीकर के द्वारा यह बात हो सकती है।"[2]

डा॰ प्रभा अत्रे — "के अनुसार संगीत की शिक्षा, 'के. जी.' स्तर से प्रारंभ होकर, 'पी. एच. डी.' स्तर तक निरंतर जारी रहनी चाहिये। विभिन्न स्तरों की इस शिक्षा में एक समन्वय रहना चाहिये। एस. एस. सी. तक पहुँचने तक छात्र को इस विधा का अच्छा ज्ञान हो सकेगा। इसके बाद वह विशेषज्ञता हेतु चयन करने में सक्षम होगा।"[3]

इस समस्या के संबंध में इन विद्वानों के प्राप्त मतों के बाद हमनें संगीत महाविधालयों के प्राध्यापकों तथा विधार्थियों के मत भी इस सम्बन्ध में प्रश्नावली विधि द्वारा प्राप्त किये हैं जो इस प्रकार हैं। इन प्रश्न उत्तरों

---

१ प्रत्यक्ष साक्षात्कार द्वारा साभार, स्थान, २३·२·८८

२ संगीत कला विहार १९६४, अक्टूबर, 'संगीत के संस्कार' पृ· ४०९

३ संगीत १९८६, जनवरी, 'संगीत परिक्षायें विभिन्न दृष्टिकोण' पृ· १८२

के परिणामों की प्रतिशतता निम्नलिखित तेरह तालिकाओं के आधार पर निकाली गयी है।

तालिका न. १

प्रश्न	उत्तर हाँ	उत्तर नहीं
१ क्या संगीत विषय विद्यालय के प्रारंभिक स्तर से अनिवार्य होना चाहिये ?	९१ प्रतिशत	९ प्रतिशत
२ क्या यह गलत नहीं कि संगीत जैसे विषय को विद्यालय के प्रारंभिक स्तर से नहीं पढ़ाया जाता ?	८६ प्रतिशत	१४ प्रतिशत
३ विद्यालय के प्रारंभिक स्तर से संगीत विषय अन्य विषयों की तरह अनिवार्य होने पर क्या संगीत-कला और संगीत-शिक्षा के स्तर में सुधार की संभावना है?	८७ प्रतिशत	१३ प्रतिशत

संगीत केवल एक विषय न होकर कला है जो कि सभी कलाओं में श्रेष्ठ मानी जाती है। संगीत विषय के रूप में एक अत्यन्त कठिन विषय माना जाता है फिर भी विद्यालय के प्रारंभिक स्तर से इसकी शिक्षा की व्यवस्था नहीं के बराबर है यही कारण है कि इसके विद्यार्थियों में परिपक्वता का अभाव है। जबकि दूसरे विषयों को स्कूल स्तर से पढ़ाये जाने के कारण उनमें विद्यार्थियों की परिपक्वता महाविद्यालयीन स्तर तक आने तक विद्यार्थी परिपक्व हो चुके होते हैं। प्रथम वर्ग के तीन प्रश्नों का निष्कर्ष इस प्रकार है। ९१ प्रतिशत संगीत प्राध्यापक यह कहते हैं कि संगीत विषय विद्यालय के प्रारंभिक स्तर से अनिवार्य हो जबकि ९ प्रतिशत प्राध्यापक इसकी आवश्यकता नहीं समझते। ८६ प्रतिशत संगीत प्राध्यापक इसे गलत मानते

है कि संगीत जैसे विषय को विद्यालय के प्रारंभिक स्तर से नहीं पढ़ाया जाता जबकि १४ प्रतिशत प्राध्यापक इसे गलत नहीं मानते। ८६ प्रतिशत संगीत प्राध्यापकों का मत है कि विद्यालय के प्रारंभिक स्तर से संगीत अनिवार्य करने पर संगीत-शिक्षा और संगीत कला के स्तर में सुधार होगा; १२ प्रतिशत प्राध्यापकों का मानना है कि सुधार नहीं होगा।

संगीत जैसे विषय की विद्यालय के प्रारंभिक स्तर से शिक्षा-व्यवस्था न होने के कारण एकदम महाविद्यालीन स्तर से इसकी शिक्षा आरंभ होने के कारण इस विषय की शिक्षा में जो बाधा उत्पन्न होती है उसकी कठिनाई को समझते हुये अधिकतम संगीत प्राध्यापक विद्यालय के प्रारंभिक स्तर से संगीत विषय की शिक्षा अनिवार्य करना आवश्यक समझते हैं। तथा ८६ प्रतिशत संगीत प्राध्यापक मानते हैं कि उपरोक्त व्यवस्था होने पर संगीत-शिक्षा तथा कला के स्तर में सुधार की आशा की जा सकती है।

२ छात्रों का चुनाव संगीत शिक्षा के लिये —

संगीत के लिये योग्य विद्यार्थियों का चुनाव हो सके इसके लिये प्रवेश परीक्षा का एक तो कई महाविद्यालयों या शिक्षा-संस्थाओं में प्रावधान ही नहीं है। यदि कहीं है भी तो नाममात्र के लिये उसका कड़ाई से पालन नहीं होता। जिससे योग्य तथा अयोग्य दोनों विद्यार्थियों को शिक्षक को साथ लेकर चलना होता है। जिससे शिक्षा में बाधा उत्पन्न होती है तथा योग्य विद्यार्थियों का नुकसान होता है। संगीत-शिक्षा की उपरोक्त समस्या से संबंधित प्रश्न प्रश्न-पत्र की द्वितीय तालिका के अंतर्गत रखे गये हैं।

तालिका न. २

प्रश्न	उत्तर हाँ	उत्तर नहीं
१ महाविद्यालयीन स्तर पर जो छात्र प्रवेश लेते हैं क्या आप उनका चुनाव योग्यता के आधार पर करते हैं?	६४ प्रतिशत	२१ प्रतिशत
२ क्या आप इस पक्ष में हैं कि संगीत जैसे विषय में प्रवेश के लिये छात्र का चुनाव उसकी योग्यता के आधार पर ही हो?	९१ प्रतिशत	९ प्रतिशत
३ कहीं आप छात्र का चुनाव किसी राजनैतिक दबाव, सिफारिश अथवा अन्य आधार पर तो नहीं करते?	४ प्रतिशत	९६ प्रतिशत
४ यदि आपकी कक्षा में ऐसे छात्र आ जायें तो आपको उनको पढ़ाने में कठिनाई तो नहीं होती?	६० प्रतिशत	३० प्रतिशत
५ इस प्रकार के छात्रों के कक्षा में प्रवेश से दूसरे योग्य छात्रों की शिक्षा में बाधा आती है अथवा नहीं?	६२ प्रतिशत	२८ प्रतिशत

प्रश्नावली के तालिका न. २ के पाँच प्रश्नों का निष्कर्ष यह निकलता है कि ६४ प्रतिशत संगीत प्राध्यापकों का मत है कि वे छात्रों का चुनाव योग्यता के आधार पर करते हैं जबकि २१ प्रतिशत प्राध्यापक छात्रों का चुनाव सामान्य रूप से करते हैं। ९१ प्रतिशत प्राध्यापकों का मानना है कि वे छात्रों का चुनाव राजनैतिक दबाव, सिफारिश अथवा अन्य आधार पर नहीं करते जबकि ९ प्रतिशत प्राध्यापकों का कथन है कि

उन्हें ऐसा भी करना पड़ता है। ९१ प्रतिशत प्राध्यापक इस पक्ष में हैं कि छात्रों का चुनाव उनकी योग्यता के आधार पर ही होना चाहिये। जबकि ९ प्रतिशत प्राध्यापक इसकी आवश्यकता नहीं समझते। ६० प्रतिशत प्राध्यापकों का कहना है कि यदि हमारे पास ऐसे छात्र आ जायें जो राजनैतिक दबाव में या सिफारिश के माध्यम से चुने गये हों, उनको हमें ज्यादा समय देकर, या कक्षा अवधि से बाहर का समय शिक्षा के लिये देना होता है। महाविद्यालयों के ३० प्रतिशत प्राध्यापकों को इस प्रकार की किसी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता। उपरोक्त प्रकार के छात्रों के प्रवेश के कारण दूसरे योग्य छात्रों की शिक्षा में बाधा उत्पन्न होती है ऐसा ६२ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है २८ प्रतिशत प्राध्यापक इस प्रकार की किसी कठिनाई का सामना नहीं करते।

उपरोक्त परिणामों के आधार पर निष्कर्ष यही हैं कि ६४ प्रतिशत प्राध्यापकों का कथन है कि वे संगीत शिक्षा के लिये छात्रों का चुनाव योग्यता के आधार पर करते हैं जबकि यह सही नहीं है अधिकतर महाविद्यालयों में छात्रों का चुनाव सामान्य रूप से होता है। ९१ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि छात्रों का चुनाव उनकी रुचि और योग्यता के आधार पर ही होना चाहिये। ९६ प्रतिशत प्राध्यापक मानते हैं कि वे छात्रों का चुनाव किसी दबाव अथवा अन्य आधार पर नहीं करते जबकि ६० प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि इस प्रकार के छात्रों के प्रवेश से कक्षा-शिक्षा में बाधा उत्पन्न होती है। ६२ प्रतिशत प्राध्यापक मानते हैं कि अयोग्य छात्रों के साथ योग्य छात्रों की शिक्षा में भी बाधा उत्पन्न होती है। इन अंतिम दो प्रश्नों के परिणामों के आधार पर कहा जा सकता है कि तृतीय प्रश्न के सही उत्तर प्राप्त नहीं हुये हैं शायद किसी प्रकार के भय के कारण। फिर भी प्राप्त परिणामों के आधार पर कहा जा सकता है कि संगीत-शिक्षा के लिये छात्रों का चुनाव योग्यता तथा रुचि के

आधार पर ही किया जाय। इसके लिये प्रवेश परीक्षा का प्रवधान हो और उसका कड़ाई से पालन किया जाय इससे इससे तालिका के अन्य प्रश्नों के अंतर्गत उल्लिखित तथा अन्य समस्याओं के समाधान में सहायता मिलेगी और संगीत कला तथा शिक्षा का स्तर ऊँचा उठेगा।

३ संगीत शिक्षण के लिये उपयुक्त स्थान की व्यवस्था-

अनेक संगीत महाविद्यालयों में संगीत-शिक्षण के लिये उपयुक्त स्थान की व्यवस्था का अभाव पाया जाता है। प्रायः कक्ष छोटे होने के कारण और छात्रों की संख्या अधिक होने के कारण कठिनाई होती है। संगीत कक्ष बहुत पास होने तथा ध्वनि निरोधक न होने के कारण वाद्य-कक्षों और गायन-कक्षों के सम्मिलित शोर के कारण शिक्षकों को शिक्षा देने में कठिनाई होती है। इस समस्या से संबंधित प्रश्न तालिका तृतीय के अंतर्गत रखे गये हैं —

तालिका न. ३

प्रश्न	उत्तर हाँ	उत्तर नहीं
१ क्या संगीत शिक्षण के लिये कक्ष का हवादार और साफ सुथरा होना आवश्यक है?	९४ प्रतिशत	६ प्रतिशत
२ क्या आपके महाविद्यालय में संगीत शिक्षण के लिये उपयुक्त स्थान की व्यवस्था है?	६६ प्रतिशत	३४ प्रतिशत

इस समस्या से संबंधित प्रश्नों के उत्तर में ९४ प्रतिशत प्राध्यापक संगीत शिक्षण के लिये उपयुक्त स्थान की आवश्यकता को अनिवार्य समझते हैं जबकि ६ प्रतिशत प्राध्यापक इसे आवश्यक नहीं मानते। ६६ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि उनके महाविद्यालयों में संगीत शिक्षण के लिये उपयुक्त स्थान है जबकि ३४ प्रतिशत प्राध्यापकों का कथन है कि उनके महाविद्यालय

में संगीत-शिक्षण के लिये उपयुक्त स्थान की व्यवस्था नहीं है।

इन परिणामों से निष्कर्ष यह निकलता है कि अधिकतम संगीत प्राध्यापक संगीत शिक्षण के लिये उपयुक्त स्थान को आवश्यक अनिवार्यता समझते हैं। २४ प्रतिशत महाविद्यालयों में अब भी साफ-सुथरे हवादार कक्षों का अभाव है। ये महाविद्यालय भी प्रमुख महाविद्यालय हैं तब सामान्य संगीत-शिक्षण संस्थाओं में क्या स्थिति होगी इसका अनुमान लगाया जा सकता है। अतः नयी संगीत-शिक्षा संस्थायें खोलने की अपेक्षा जो संस्थायें हैं उनमें संगीत-शिक्षा के लिये उपयुक्त स्थान की व्यवस्था किये जाने की आवश्यकता प्राथमिक है।

४ कक्षा में छात्रों की संख्या —

कक्षा में छात्रों की अधिकता का भी संगीत-कला के शिक्षण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है; विशेषकर उच्च वर्ग की कक्षाओं में संगीत एक ऐसा विषय है जिसे सामुहिक शिक्षा का विषय बनाने के बाद भी कक्षाओं में छात्रों की संख्या का उचित अनुपात होना आवश्यक है। अन्यथा संगीत की क्रियात्मक शिक्षा उचित रीति से दे पाना असंभव होगा है, और इसका प्रभाव संगीत-शिक्षा पर पड़ता है। इसके परिणामस्वरूप हमें संगीत-कला का गिरता स्तर प्राप्त हो रहा है। इस समस्या से संबंधित प्रश्न प्रश्नावली की चतुर्थ तालिका के अंर्तगत रखे गये हैं।

तालिका न. ४

प्रश्न	उत्तर हाँ	उत्तर नहीं
१ विश्वविद्यालयीन संगीत शिक्षण में कला के उच्च स्तर के लिये कक्षा में छात्रों की संख्या कम होना आवश्यक है?	९३ प्रतिशत	६ प्रतिशत

प्रश्न	हाँ	उत्तर नहीं
२ एक संगीत कक्ष में पाँच-छः विद्यार्थियों से अधिक होने चाहिये अथवा नहीं?	२५ प्रतिशत	६५ प्रतिशत
३ कक्षा में छात्रों की संख्या अधिक होने पर क्या अधिक वर्ग बनाकर उनकी व्यवस्था की जानी चाहिये?	८४ प्रतिशत	६ प्रतिशत

विश्वविद्यालय स्तर पर संगीत-शिक्षण के लिये छात्रों की संख्या की समस्या पर आधारित प्रश्नों के प्राध्यापकों द्वारा प्राप्त उत्तरों के परिणाम इस प्रकार प्राप्त हुये हैं। ८३ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि विश्वविद्यालयीन संगीत शिक्षण में कला के उच्च स्तर के लिये कक्षा में छात्रों की संख्या कम होनी चाहिये। 6 प्रतिशत प्राध्यापक इसकी आवश्यकता नहीं समझते हैं। २५ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि एक संगीत कक्ष में विद्यार्थियों की संख्या ५-६ से अधिक होनी चाहिये जबकि ६५ प्रतिशत प्राध्यापक चाहते हैं कि एक संगीत कक्षा में विद्यार्थियों की संख्या पाँच अथवा छः से अधिक न हो। ८४ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि कक्षा में छात्रों की संख्या अधिक होने पर अधिक वर्ग बनाकर इस समस्या का समाधान करना चाहिये। जबकि ६ प्रतिशत प्राध्यापक इसकी आवश्यकता नहीं समझते।

उपरोक्त परिणामों के आधार पर निष्कर्ष यह निकलता है कि विश्वविद्यालयीन स्तर पर ८५ प्रतिशत प्राध्यापकों के मतों के आधार पर छात्रों की संख्या कक्षा में कम की जाय। ६५ प्रतिशत प्राध्यापक मानते हैं कि कक्षा में पाँच अथवा छः विद्यार्थियों से अधिक न हों। इस मुद्दे को प्रयोगों द्वारा निश्चित किया जा सकता है। संगीत कक्षा में छात्रों की निर्धारित सीमा कितनी हो ताकि संगीत की क्रियात्मक कक्षाओं में संगीत-शिक्षा सुविधापूर्ण ढंग से हो सके। तथा कक्षा में छात्रों की संख्या अधिक होने पर अतिरिक्त वर्ग बनाकर उनकी व्यवस्था

व्यवस्था की जानी चाहिये।

५ संगीत शिक्षा के लिये समय का अभाव —

जैसा कि कहा गया है कि संगीत एक विषय न होकर कला है और वह भी सर्वोच्च कला है। कला को पढ़ा अथवा पढ़ाया नहीं जाता बल्कि कला की साधना की जाती है तथा करवाई जाती है। इसलिये संगीत जैसे विषय को पढ़ाने के लिये महाविद्यालयों में निर्धारित चालीस मिनट का समय पर्याप्त नहीं माना जा सकता। क्योंकि ४० मिनट के समय में सभी वाद्ययंत्रों को मिलाकर विद्यार्थी को संगीत की क्रियात्मक शिक्षा देना उचित रीति से संभव नहीं हो पाता। इस समस्या से संबंधित प्रश्न तालिका न. ५ के अंतर्गत रखे गये हैं। उनके प्राप्त परिणाम इस प्रकार हैं।

तालिका न. ५

प्रश्न	हाँ (उत्तर)	नहीं (उत्तर)
१ विज्ञान और अन्य तकनीकी महाविद्यालयों की भाँति संगीत महाविद्यालयों का समय भी सात घंटे होना चाहिये?	६३ प्रतिशत	२६ प्रतिशत
२ क्या संगीत जैसे विषय को पढ़ाने के लिये दिया गया प्रत्येक घंटे के लिये ४० मिनट का समय पर्याप्त है, जो कि महाविद्यालयों में दिया जाता है?	६८ प्रतिशत	२२ प्रतिशत
३ अगर नहीं तो इस विषय को पढ़ाने के लिये प्रत्येक घंटे में कितना समय मिलना चाहिये (अ) ४० मिनट (ब) ८० मिनट?	(अ) १८ प्रतिशत	(ब) ८२ प्रतिशत
४ संगीत शिक्षा के क्रिया-पक्ष को सुदृढ़ करने के लिये स्वर-पक्ष तथा ताल-पक्ष को सुदृढ़ करने के लिये इनके अभ्यास के लिये अलग घंटे हों?	८६ प्रतिशत	१४ प्रतिशत
५ इसी प्रकार संगीत की अलग-अलग विधाओं	८३ प्रतिशत	१६ प्रतिशत

जैसे ख्याल, ध्रुपद, धमार, तराना, ठुमरी की शिक्षा के लिये अलग-अलग घंटों की व्यवस्था हो ?

प्र.६ क्या आपके महाविद्यालय में इस प्रकार की व्यवस्था है ? २४ प्रतिशत ६६ प्रतिशत

पाँचवी तालिका के अंतर्गत छः प्रश्न रखे गये हैं उनका प्राप्त परिणाम यह रहा ६३ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि विज्ञान तथा अन्य तकनीकी महाविद्यालयों की भाँति संगीत महाविद्यालयों का समय भी सात घंटे होना चाहिये। २६ प्रतिशत प्राध्यापक इसकी आवश्यकता नहीं समझते। ६८ प्रतिशत प्राध्यापक मानते हैं कि संगीत शिक्षण के लिये ४० मिनट का समय कम है जबकि २२ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि यह समय पर्याप्त है। १८ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि संगीत शिक्षण के लिये ४० मिनट का समय पर्याप्त है। जबकि ८२ प्रतिशत प्राध्यापक ८० मिनट का समय एक घंटे (पीरियड) में संगीत शिक्षण के लिये होना सुविधाजनक मानते हैं। ८६ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि संगीत शिक्षा में स्वर तथा ताल पक्ष की सुदृढ़ता के लिये इनके अभ्यास के लिये अलग घंटे हों जबकि १४ प्रतिशत प्राध्यापक इसकी आवश्यकता नहीं समझते। पाँचवे प्रश्न के लिये ८३ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि संगीत कला की अलग-अलग विधाओं के लिये अलग-अलग घंटों की व्यवस्था हो जबकि १६ प्रतिशत संगीत प्राध्यापक इसकी आवश्यकता नहीं समझते। छठवें प्रश्न के उत्तर में २४ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि उनके महाविद्यालय में उपरोक्त प्रकार की व्यवस्था है जबकि ६६ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है उनके महाविद्यालयों में इस प्रकार की व्यवस्था नहीं है।

उपरोक्त प्राप्त परिणामों के आधार पर कहा जा सकता है कि संगीत-शिक्षा के क्षेत्र में समय के अभाव को लेकर जो समस्यायें हैं उनके समाधान के लिये अधिकतम प्राध्यापक तैय्यार हैं। साथ ही संगीत कला और शिक्षा के स्तर में सुधार हो इस

दृष्टि से वे और दूसरे परिवर्तनों के लिये भी तैय्यार हैं। ६३ प्रतिशत प्राध्यापक संगीत महाविद्यालयों की शिक्षा का समय सात घंटे रखना चाहते हैं। ६८ प्रतिशत प्राध्यापक संगीत शिक्षा के लिये दिया गया ४० मिनट प्रतिघंटा (क्रियात्मक) के लिये अपर्याप्त मानते हैं। ८२ प्रतिशत प्राध्यापक संगीत की क्रियात्मक शिक्षा के लिये ८० मिनट प्रतिघंटा रखा जाय यह उचित समझते हैं। ८६ प्रतिशत प्राध्यापक स्वर-पक्ष तथा ताल-पक्ष को सुदृढ़ करने के लिये इनके अभ्यास के लिये पृथक घंटों की व्यवस्था हो ऐसा चाहते हैं। ८३ प्रतिशत प्राध्यापक संगीत की अलग-अलग विधाओं की शिक्षा के लिये पृथक घंटों की व्यवस्था उचित समझते हैं। प्राप्त मतों के आधार पर यदि उपरोक्त प्रकार की व्यवस्था की जाय तो हमारी वर्तमान संगीत शिक्षा गुरुकुलीन-शिक्षा-पद्धति के गुणों से समपन्न हो जायेगी। और फिर इसके परिणाम निश्चय ही बहुत लाभकारी प्राप्त होंगे।

६ महाविद्यालयों में वाद्य यंत्रों की उपयुक्त व्यवस्था —

महाविद्यालयों में संगीत-वाद्य-यंत्रों जैसे तानपूरे, सितार, तबले तथा ऐसे वाद्यंत्र जो खासकर युवा-समारोह के समय प्रयोग में लाये जा सकते हैं जैसे वायलिन, सन्तूर, काष्ठतरंग, स्वरमण्डल, दिलरुबा, शहनाई, गिटार, क्लेरनेट, बांसुरी, जलतरंग, तारशहनाई आदि का अभाव देखा जाता है। कक्षा में चाहे गायन हो अथवा वादन प्रत्येक छात्र के पास वाद्य-यंत्र का होना अतिआवश्यक होता है। महाविद्यालयों में तो अगर कक्षा में दस छात्र हैं तो तानपूरा मुश्किल से एक और सितार भी तीन-चार से अधिक नहीं बजती। कक्षा में यदि १० छात्र हैं तो दो तानपूरे बजने आवश्यक हैं ताकि सब लोग उसकी आवाज़ को ठीक ढंग से सुन सकें। संगीत-शिक्षण की यह एक बड़ी समस्या मानी जाती है। इस समस्या से संबंधित प्रश्न तालिका नं. ६ के अंतर्गत रखे गये हैं। इन प्रश्नों के प्राप्त परिणाम इस प्रकार हैं। —

प्रश्न	तालिका नं. ६	हाँ उत्तर	नहीं
१ महाविधालयों में अधिकतर वाधयंत्रों का अभाव पाया जाता है क्या यह सही है?		५८ प्रतिशत	४२ प्रतिशत
२ क्या संगीत शिक्षण के लिये वाधयंत्रों जैसे तानपूरा, तबला, सितार, वायलिन आदि का होना आवश्यक है?		१०० प्रतिशत	० प्रतिशत
३ क्या आपके महाविधालय में उपयोगी वाधयंत्र हैं?		६५ प्रतिशत	२५ प्रतिशत

छठवीं तालिका के अंतर्गत तीन प्रश्न रखे गये हैं उनका प्राप्त परिणाम यह रहा :- प्रथम प्रश्न के उत्तर में ५८ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि महाविधालयों में वाध यन्त्र पर्याप्त रूप में पाये जाते हैं जबकि ४२ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि वाधयंत्र पर्याप्त रूप में नहीं पाये जाते। द्वितीय प्रश्न के उत्तर में शतप्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि संगीत शिक्षण के लिये सभी वाधयंत्रों का महाविधालयों में पर्याप्त रूप से होना आवश्यक है। ६५ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि उनके महाविधालयों में उपयोगी वाधयंत्र हैं जबकि २५ प्रतिशत महाविधालयों के प्राध्यापकों का मत है कि उनके महाविधालयों में पर्याप्त वाधयंत्रों का अभाव है।

प्राप्त परिणामों के आधार पर निष्कर्ष यह निकलता है कि सभी प्राध्यापक संगीत शिक्षा के लिये वाधयंत्रों की उपलब्धता को अनिवार्य मानते हैं। अतः संगीत शिक्षा के स्तर में सुधार के लिये आवश्यक है कि जिन महाविधालयों में वाधयंत्रों का अभाव है वहाँ इस कमी को दूर किया जाय।

६ प्रशिक्षित प्राध्यापकों की व्यवस्था –

महाविद्यालयों में संगीत विषय क्रिया तथा शास्त्र इन दो विधाओं में दक्ष होना जरूरी है। परंतु, महाविद्यालयों में कुछ संगीत प्राध्यापक ऐसे पाये जाते हैं, जो यदि संगीत के क्रियात्मक पक्ष में दक्ष हैं तो शास्त्र पक्ष में दक्ष नहीं होते। इस तरह प्रायः सुशिक्षित व प्रशिक्षित प्राध्यापकों का जो संगीत के कला पक्ष अर्थात क्रिया और शास्त्र पक्ष दोनों में संतुलन बनाये रख सकें; महाविद्यालयों में प्रायः अभाव देखा जाता है जिससे भी संगीत शिक्षा के सुचारु रूप से चलने में बाधा उत्पन्न होती है। इस समस्या से संबंधित प्रश्नों के उत्तर में प्राध्यापकों द्वारा प्राप्त मत इस प्रकार हैं :—

प्रश्न	तालिका नं. ६ उत्तर हाँ	नहीं
१ क्या नये शिक्षक शिक्षण कार्य के लिये पूर्ण अनुभवी पाये जाते हैं?	०%	१००%
२ क्या महाविद्यालयों में नवीन प्राध्यापकों को प्रारंभ में प्रशिक्षण की आवश्यकता है?	६५%	३५%
३ क्या महाविद्यालयों में नवीन प्राध्यापक प्रशिक्षित होते हैं?	६०%	३०%
४ संगीत प्राध्यापक को संगीत के कौन से पक्ष में दक्ष होना चाहिये? (क) शास्त्र पक्ष २ क्रिया पक्ष (ग) उभय पक्ष	१०% १५% ६५%	
५ क्या महाविद्यालयों में ऐसे कुशल संगीत प्राध्यापकों का अभाव देखा गया है जो संगीत के उभय पक्ष में दक्ष हों?	६४%	२६%
६ क्या महाविद्यालयों में तबला संगतकारों का अभाव देखा गया है?	६२%	३८%

प्रश्न	उत्तर हाँ	नहीं
६ क्या आपके महाविधालयों में गायन एवं वादन दोनों कक्षाओं के लिये अलग-अलग तबला वादक हैं?	२६%	६३%
८ क्या आप समझते हैं कि महाविधालय में प्रत्येक घंटे में प्रत्येक वर्ग के लिये अलग-अलग तबला वादक होने आवश्यक हैं?	८३%	१६%
९ अगर आपके महाविधालय में एक ही तबला वादक है और कक्षायें दो से अधिक हैं तो इस समस्या का हल आप कैसे करते हैं? सुबह-शाम पारी-पारी से कक्षायें लगाकर,	११%	८९%
१० क्या प्राध्यापकों के प्रशिक्षण हेतु आप वर्ष में एक बार कार्यशिविर लगाने के पक्ष में हैं?	९३%	६%
११ क्या आपके विचार से इस कार्य-शिविर में संगीत के दो पक्षों क्रियात्मक तथा शास्त्र का सम्मिलित होना आवश्यक है?	६६%	३४%

तालिका नं. 6 में प्राध्यापकों के लिये ११ प्रश्न रखे गये हैं। प्रथम प्रश्न के उत्तर में शत प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि नये शिक्षक शिक्षण कार्य के लिये पूर्ण अनुभवी नहीं पाये जाते। प्रश्न दूसरे के लिये ६५% प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि नये प्राध्यापकों को प्रारंभ में प्रशिक्षण की आवश्यकता है जबकि ३५% प्रतिशत प्राध्यापक इसकी आवश्यकता नहीं समझते। प्रश्न तीसरे के लिये 60 प्रतिशत

प्राध्यापकों का मत है कि महाविद्यालयों में प्रशिक्षित प्राध्यापकों का अभाव पाया जाता है। जबकि ३०% प्रतिशत प्राध्यापकों का कथन ऐसा नहीं है। चतुर्थ प्रश्न के उत्तर में १५% प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि प्राध्यापकों को संगीत के क्रिया पक्ष में दक्ष होना चाहिये। जबकि ६५% प्रतिशत प्राध्यापक संगीत प्राध्यापक को संगीत के उभय पक्ष में दक्ष होना चाहिये ऐसा मानते हैं। प्रश्न पांचवें के उत्तर में ६४% प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि प्राय: ऐसे संगीत प्राध्यापकों का अभाव देखा गया है जो संगीत के उभय पक्ष में दक्ष हों जबकि २६% प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि ऐसा नहीं है प्रश्न ६! के उत्तर मे ६२% प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि प्राय: महाविद्यालयों में तबला संगतकारों का अभाव देखा गया है। जबकि ३८% प्रतिशत प्राध्यापकों का का मत है कि ऐसा उनके महाविद्यालयों में नहीं है प्रश्न सात के उत्तर में २६% प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि उनके महाविद्यालय में गायन - वादन दोनों कक्षाओं के लिये अलग - अलग तबला वादक हैं जबकि ६३% प्रतिशत प्राध्यापकों का कथन है कि उनके महाविद्यालय में इस प्रकार की व्यवस्था नहीं है। प्रशन आठ के लिये ८३ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि महाविद्यालय में प्रत्येक घंटे में प्रत्येक वर्ग के लिये अलग-अलग तबला वादक होने आवश्यक हैं; १६ प्रतिशत प्राध्यापक इसकी कोई आवश्यकता नहीं समझते। प्रश्न ९ के उत्तर में ११ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि वे तबला वादकों की कमी को पारी-पारी से कक्षाओं की व्यवस्था करके पूरी करते हैं जबकि ८९ प्रतिशत प्राध्यापकों के पास इस समस्या का भी कोई हल नहीं है। प्रश्न दसवें के लिये ९२ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि वे प्राध्यापकों के प्रशिक्षण हेतु वर्ष में एक बार कार्यशिविर

लगाने के पक्ष में हैं; जबकि ६ प्रतिशत प्राध्यापक इसकी आवश्यकता नहीं समझते। प्रशन ११ वें के उत्तर में ६६ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि वे प्रशिक्षण शिविर में संगीत के शास्त्र और क्रिया दोनों पक्षों का सम्मिलित होना आवश्यक समझते हैं।

८ विश्वविधालयीन शिक्षा में पाठ्यक्रम —

महाविधालयों में संगीत शिक्षण हेतु निर्धारित ४० मिनट का समय बहुत कम है; महाविधालयों में इसी निर्धारित समय के अंतर्गत संगीत के दोनों पक्षों (क्रिया व शास्त्र) के पाठ्यक्रमों को पढ़ाना पड़ता है। जिसके लिये यह समय बहुत कम है। महाविधालयों में संगीत शिक्षण की यह भी एक बड़ी समस्या है। परंतु यदि महाविधालयों के संगीत शिक्षण के समय को बढ़ाया जाय तो पाठ्यक्रम में अधिकता नहीं कही जा सकती। इस संबंध में प्रश्नावली विधि द्वारा प्राध्यापकों द्वारा प्राप्त मत इस प्रकार हैं —

प्रश्न तालिका नं. ८	उत्तर हाँ	उत्तर नहीं
१ क्या महाविधालयों में संगीत का पाठ्यक्रम अनियमित है?	५२%.	४८%.
२ क्या आप समझते हैं कि इस पाठ्यक्रम को नियमित स्वरूप दिया जाना चाहिये?	६६%.	३३%.
३ क्या आप पाठ्यक्रम में किसी विशेष सांगीतिक पक्ष का विशेष अध्ययन रखने के पक्ष में हैं,	६४%.	३६%.
४ संगीत शिक्षा के पाठ्यक्रम को जीविकोपार्जन की समस्या दूर करने के आधार पर व्यावसायिक रूप देना चाहिये।	१००%.	०%.

	हाँ	उत्तर	नहीं
५ आपके विचार से संगीत के किस पक्ष को महत्व दिया जाना चाहिये? (क) शास्त्र पक्ष (ख) क्रिया पक्ष (ग) उभय पक्ष	१५%	२५%	६०%
६ क्या संगीत के दोनों पक्ष एक दूसरे पर आधारित हैं- क्रिया तथा शास्त्र।	६८%		३२%
6 कुछ प्राध्यापक संगीत के क्रिया-पक्ष पर अधिक बल देते हैं क्या यह सही है?	५१%		४९%
८ क्या आपके पाठ्यक्रम में संगीत श्रवण की कोई व्यवस्था है?	०%		१००%
९ क्या संगीत-कला के स्तर में सुधार की दृष्टि से संगीत-शिक्षा में संगीत श्रवण का समावेश अनिवार्य होना चाहिये?	१००%		
१० संगीत प्रदर्शन के संबंध में प्रत्येक विद्यार्थी का दो बार प्रदर्शन संगीत समारोहों में किया जाना आवश्यक है।	१००%		
११ क्या पाठ्यक्रम में उपशास्त्रीय संगीत और सुगम संगीत का अनिवार्य किया जाना आवश्यक है?	63%		२6%

प्रथम प्रश्न के उत्तर में ५२% प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है महाविद्यालय में पाठ्यक्रम वर्ष में पूर्ण ही नहीं हो पाता है। जबकि ४८ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि ऐसा नहीं है। द्वितीय प्रश्न के लिये ६6 प्रतिशत प्राध्यापकों का मत

है कि इस पाठ्यक्रम को वर्ष में पूर्ण हो सके ऐसा नियमित स्वरूप दिया जाना चाहिये। जबकि ३३ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। तृतीय प्रश्न के उत्तर में ६४ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि पाठ्यक्रम में किसी विशिष्ट सांगीतिक पक्ष का विशेष अध्ययन रखा जाना आवश्यक है; ३६ प्रतिशत प्राध्यापक इसकी आवश्यकता नहीं समझते। चतुर्थ प्रश्न के उत्तर में १०० प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि संगीत शिक्षा के पाठ्यक्रम को जीविकोपार्जन की समस्या दूर करने के आधार पर व्यावसायिक रूप देना आवश्यक है। ६० प्रतिशत प्राध्यापक पांचवे प्रश्न के उत्तर में मानते हैं कि संगीत के उभयपक्ष को महत्व दिया जाना आवश्यक है जबकि २८ प्रतिशत प्राध्यापक संगीत के क्रियापक्ष को महत्व देना आवश्यक मानते हैं। प्रश्न ६: के लिये ६८ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि संगीत कला के दोनों पक्ष शास्त्र और क्रिया एक दूसरे पर आधारित हैं। ३२ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि ऐसा नहीं है। प्रश्न सप्तम के लिये ५१ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि कुछ प्राध्यापक संगीत के क्रिया पक्ष पर बल देते हैं जबकि ४९ प्रतिशत प्राध्यापकों का मानना है कि ऐसा नहीं होना चाहिये। प्रश्न आठवें के लिये १०० प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि पाठ्यक्रम में संगीत श्रवण के संबंध में कोई व्यवस्था नहीं है। नवमें प्रश्न के उत्तर में शतप्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि संगीत कला के स्तर में सुधार की दृष्टि से संगीत-शिक्षा में संगीत श्रवण का समावेश अनिवार्य होना चाहिये। दसवें प्रश्न के लिये शत-प्रतिशत प्राध्यापकों का मानना है कि संगीत प्रदर्शन के लिये पाठ्यक्रम में वर्ष में प्रत्येक विद्यार्थी का दो बार संगीत समारोहों में प्रदर्शन अनिवार्य किया जाना आवश्यक है। ग्यारहवें प्रश्न के संबंध में २६ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि इसकी आवश्यकता नहीं है जबकि ६३ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि पाठ्यक्रम में उपशास्त्रीय संगीत

और सुगम संगीत का समावेश किया जाना उचित होगा। जबकि २६ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि उसकी आवश्यकता नहीं है।

९ वर्तमान शिक्षा प्रणाली में गुरुकुल-शिक्षा-पद्धति का समावेश —

गुरुकुल-शिक्षा-पद्धति में उत्पन्न हो गयीं कमियों को दूर करने के लिये संस्थागत-शिक्षा-पद्धति द्वारा संगीत-शिक्षा की व्यवस्था को अपनाया गया। पर गुरुकुल-शिक्षा-पद्धति के गुणों की पूर्ति। भुला दिया गया, परिणामस्वरूप संस्थागत-शिक्षा-पद्धति भी कमियों से भर गयी। हमारी संगीत कला और शिक्षा के स्तर में गिरावट का यह भी एक कारण है। अतः आज संस्थागत-शिक्षा-पद्धति को गुरुकुल-शिक्षा-पद्धति के गुणों द्वारा समृद्ध करने की आवश्यकता दिखाई पड़ रही है। इन दोनों पद्धतियों की कमियों को इनके गुणों के आदान-प्रदान द्वारा दूर किया जा सकता है और भविष्य में इसके परिणामस्वरूप संगीत कला के स्तर में एक ठोस सुधार संभव हो सकता है। इस समस्या के संबंध केवल प्राध्यापकों के मत तालिका नं. ९ के अंतर्गत प्रश्नावली प्रविधि द्वारा लिये गये हैं। इस तालिका के अंतर्गत १० प्रश्न रखे गये हैं। इनके उत्तरों द्वारा प्राप्त मत इस प्रकार हैं —

प्रश्न तालिका नं. ९	उत्तर हाँ	उत्तर नहीं
१ संगीत कला के स्तर को ऊँचा उठाने में क्या आधुनिक शिक्षा प्रणाली उपयुक्त है?	३२%	६२%
२ क्या आधुनिक प्रचलित शिक्षा प्रणाली द्वारा कोई छात्र उच्चकोटि का कलाकार बन सकता है?	९%	९१%

प्रश्न	उत्तर हाँ	नहीं
३ क्या वर्तमान शिक्षा प्रणाली में सुधार की आवश्यकता है?	८६%	१४%
४ क्या यह सही है कि आधुनिक शिक्षा प्रणाली केवल एक अच्छा प्रशिक्षक तैयार कर सकती है?	५६%	४४%
५ क्या संगीत शिक्षा की गुरुकुल शिक्षा पद्धति के अंतर्गत ही एक अच्छा कलाकार बना जा सकता है?	४६%	५४%
६ क्या संस्थागत शिक्षा पद्धति और गुरुकुल शिक्षा पद्धति के गुणों का समन्वय वर्तमान संगीत शिक्षा को अधिक उपयोगी बना सकता है?	८९%	११%
७ क्या संगीत शिक्षा में उपरोक्त परिवर्तन द्वारा संगीत शिक्षा और कला का स्तर ऊँचा उठेगा?	८३%	१६%
८ क्या इस प्रकार की संगीत शिक्षा द्वारा उच्चकोटि के कलाकारों के निर्माण की आशा की जा सकती है?	६६%	३३%
९ एक स्तर के बाद प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को गुरु कुल शिक्षा पद्धति द्वारा शिक्षा देने की उचित व्यवस्था पृथक करना उचित होगी?	६६%	३३%
१० क्या इसके लिये प्रत्येक प्रांत में गुरुकुल शिक्षा पद्धति पर आधारित विशवविद्यालय निर्माण करना उचित होगा?	५६%	४४%

प्रथम प्रश्न के लिये ६२ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि

संगीत कला के स्तर को ऊँचा उठाने में आधुनिक शिक्षा प्रणाली सक्षम नहीं है जबकि ३३ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि ऐसा नहीं है। द्वितीय प्रश्न के लिये ९१ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि प्रचलित शिक्षा प्रणाली द्वारा कोई छात्र उच्च कोटि का कलाकार नहीं बन सकता जबकि ९ प्रतिशत प्राध्यापकों का मानना है कि ऐसा नहीं है। प्रश्न तीसरे के लिये ८६ प्रतिशत प्राध्यापक मानते हैं कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली में सुधार की आवश्यकता है जबकि १४ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि इसकी आवश्यकता नहीं है। प्रश्न चतुर्थ के लिये ५६ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि आधुनिक शिक्षा प्रणाली केवल एक अच्छा प्रशिक्षक तैयार कर सकती है। जबकि ४४ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है ऐसा नहीं है। प्रश्न पाँचवें के लिये ४६ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि गुरुकुल शिक्षा पद्धति के अंतर्गत एक अच्छा कलाकार बना जा सकता है जबकि ५४ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि ऐसा नहीं है। प्रश्न छठवें के लिये ८९ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि संस्थागत-शिक्षा-पद्धति और गुरुकुल शिक्षा पद्धति के गुणों का समन्वय वर्तमान शिक्षा प्रणाली को अधिक उपयोगी बना सकता है। जबकि ११ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि ऐसा जरूरी नहीं है। प्रश्न सातवें के लिये ८३ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि संगीत शिक्षा में उपरोक्त परिवर्तन द्वारा संगीत शिक्षा और कला दोनों का स्तर ऊँचा उठेगा जबकि 16 प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि यह संभव नहीं हो सकेगा। प्रश्न नवमें के लिये ६७ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि एक स्तर के बाद प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को गुरुकुल-शिक्षा-पद्धति द्वारा शिक्षा देने की पृथक व्यवस्था उचित व लाभकारी होगी। ३३ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि इसकी आवश्यकता नहीं है। प्रश्न दसवें के लिये ५६ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि इसके लिये प्रत्येक प्रांत में गुरुकुल-शिक्षा-पद्धति पर आधारित विश्वविद्यालय का निर्माण करना उचित होगा

जबकि ४४ प्रतिशत प्राध्यापक इसकी आवश्यकता नहीं मानते हैं।

१० पाठ्यक्रम की अधिकता –

दसवीं तालिका के अंतर्गत भी पाठ्यक्रम से संबंधित कुछ प्रश्न रखे गये हैं जिनके लिये प्राध्यापकों द्वारा प्राप्त मत इस प्रकार हैं –

प्रश्न तालिका नं. १०	उत्तर हाँ	नहीं
१ चालिस मिनट के समय को ध्यान में रखकर क्या संगीत के पाठ्यक्रम में अधिकता नहीं पायी जाती?	८८%	१२%
२ क्या आप प्रत्येक वर्ष पाठ्यक्रम पूरा करा पाते हैं?	६६%	२३%
३ पाठ्यक्रम में कमी करना उचित होगा?	६५%	३५%
४ पाठ्यक्रम में कमी होने पर क्या संगीत शिक्षा के स्तर में सुधार संभव है?	६१%	३९%

८८ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत प्रथम प्रश्न के लिये इस प्रकार है कि चालिस मिनट के समय को ध्यान में रखकर संगीत के पाठ्यक्रम में अधिकता पाई जाती है जबकि १२ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि ऐसा नहीं है। प्रश्न दूसरे के लिये ६६ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि वे प्रत्येक वर्ष पाठ्यक्रम पूरा करा पाते हैं, जबकि २३ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि पाठ्यक्रम पूरा करने की केवल खानापूरी होती है। प्रश्न तीसरे के लिये ६५ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि शीघ्र संगीत शिक्षा के पाठ्यक्रम में कमी करना उचित होगा जबकि ३५ प्रतिशत प्राध्यापक इसकी आवश्यकता नहीं समझते

प्रश्न चतुर्थ के उत्तर में ६१ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि पाठ्यक्रम में कमी किये जाने पर संगीत शिक्षा के स्तर में सुधार संभव है जबकि ३९ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है ऐसा शायद ही हो।

११ संगीत संस्थाओं को आर्थिक सहायता —

महाविद्यालयों में दूसरे विज्ञान जैसे विषयों को जितनी आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है उसके मुकाबले में संगीत विभाग को आधी भी नहीं मिल पाती। जिसके कारण न तो संगीत विभाग में पर्याप्त संगीत वाद्ययंत्रों, संगीत से संबंधित पुस्तकों, कैसेट लाइब्रेरी आदि की व्यवस्था नहीं हो पाती है। संगीत की प्रगति एवं शिक्षण से संबंधित यह एक बहुत बड़ी व जटिल समस्या मानी जा सकती है। इस समस्या से संबंधित तीन प्रश्न तालिका नं. ग्यारह के अंतर्गत रखे गये हैं —

प्रश्न तालिका नं. ११	हाँ	उत्तर नहीं
१ संगीत जैसे विषय को हमेशा ही आर्थिक सहायता का अभाव रहता है?	८८%	१२%
२ क्या दूसरे विषयों की भाँति संगीत विषय को भी पूर्ण आर्थिक सहायता मिलनी चाहिये?	१००%	०%
३ क्या इससे संगीत शिक्षा के स्तर में सुधार की संभावना है?	७८%	२२%

प्रथम प्रश्न के संबंध में ८८ प्रतिशत प्राध्यापकों का मानना है कि संगीत जैसे विषय को हमेशा ही आर्थिक सहायता का अभाव रहता है जबकि १२ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि ऐसा नहीं है। प्रश्न दूसरे के लिये शतप्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि दूसरे विषय की भाँति संगीत विषय को भी पूर्ण आर्थिक सहायता

मिलनी चाहिये। ६८ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत तीसरे प्रश्न के उत्तर में है कि इससे संगीत-शिक्षा के स्तर में सुधार की संभावना है जबकि २२ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि सुधार शायद ही हो।

१२ पर्याप्त शिक्षण सहायताओं का प्रयोग संगीत शिक्षा में –

संगीत शिक्षण से संबंधित सहायताओं के अंतर्गत निम्नलिखित यंत्र, जिन्हें श्रव्य, दृश्यात्मक यंत्र भी कहा जाता है, प्रयोग किये जा सकते हैं जैसे – विडियो, टेप-रेकार्डर, रेकार्ड-प्लेयर, तथा प्रोजेक्टर, आदि। परंतु अभी ऐसे श्रव्य दृश्यात्मक उपकरणों का प्रयोग कुछ विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों को छोड़कर सभी के संगीत विभागोंमेंनहीं किया जाता है। कुछ विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों के संगीत विभागों में केवल रेकार्ड-प्लेयर तथा टेप रेकार्डर का प्रयोग किया जाता है। संगीत शिक्षण से संबंधित यह एक गम्भीर समस्या है। इस समस्या से संबंधित प्रश्नावली द्वारा प्राप्त प्राध्यापकों के मत इस प्रकार हैं –

प्रश्न तालिका नं. १२	हाँ	उत्तर नहीं
१ क्या संगीत शिक्षण के लिये श्रव्य-दृश्यात्मक जैसे उपकरणों का प्रयोग किया जाना चाहिये?	१००%	०%
२ क्या आपके महाविद्यालय में उपरोक्त प्रकार के उपकरणों का प्रयोग होता है?	३२%	६८%
३ क्या आप संगीत शिक्षा के लिये प्रोजेक्टर फिल्म का प्रयोग करते हैं?	०%	१००%
४ क्या विडियो के माध्यम से आप संगीत विषय से संबंधित फिल्में श्रेष्ठ कलाकारों का गायन व वादन छात्रों को सुनवाते	०%	१००%

प्रश्न तालिका नं. १२	हाँ	उत्तर	नहीं
अथवा दिखवाते हैं? इसकी व्यवस्था क्या आपकी संस्था में है?			
५ क्या आप टेपरेकार्डर द्वारा छात्रों को शास्त्रीय संगीत सुनवाते हैं?	६२%		३८%
६ क्या आप छात्रों को रेकार्ड प्लेयर द्वारा उच्चकोटि के कलाकारों के एल. पी. सुनवाते हैं?	५८%		४२%
७ क्या आप अपने छात्रों को इस प्रकार के यंत्रों को सुनने देखने तथा प्रयोग करने के लिये प्रेरित करते हैं?	५२%		४८%
८ क्या आपके महाविद्यालयों में इस प्रकार के उपकरणों की व्यवस्था है?	५६%		४३%
९ क्या आप अपने छात्रों को रेडियो से प्रसारित होने वाले शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रम सुनने के लिये प्रेरित करते हैं?	१००%		०%
१० क्या आप अपने महाविद्यालय में संगीत गोष्ठियों अथवा परिसम्वादों का आयोजन करते हैं?	६६%		३४%
११ क्या इन संगीत गोष्ठियों तथा परिसम्वादों का आयोजन प्रतिमाह आवश्यक है?	१००%		०%
१२ यदि आप छात्रों से युवा समारोह इत्यादि के अंतर्गत कार्यक्रम तैयार करवाते हैं तो क्या आपके अध्यापन में बाधा पड़ती है, अथवा शिक्षा	१००%		०%

प्रश्न	हाँ उत्तर	नहीं
अवधि से बाहर का समय देते हैं?		
१३ क्या संगीत-शिक्षा के स्तर की उच्चता के लिये इस प्रकार के कार्यक्रमों का आयोजन समय-समय पर करना आवश्यक तथा लाभदायक है?	१००%	०%
१४ क्या संगीत शिक्षा में इस प्रकार की महत्वपूर्ण बातों की ओर बिलकुल भी ध्यान नहीं दिया जाता यह सही है?	१००%	०%

प्रथम प्रश्न के लिये शतप्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि संगीत शिक्षण के लिये श्रव्य दृश्यात्मक जैसे उपकरणों का प्रयोग करना आवश्यक है। प्रश्न द्वितीय के लिये ३२ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि उनके महाविधालय में इस प्रकार के उपकरणों का प्रयोग होता है जबकि ६८ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि उनके महाविधालय में इस प्रकार के उपकरणों का प्रयोग नहीं होता है। प्रश्न तीसरे के लिये शतप्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि वे संगीत शिक्षण के लिये प्रोजेक्टर फिल्म का प्रयोग नहीं करते। प्रश्न चतुर्थ के लिये भी शतप्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि वीडियो उपकरण की व्यवस्था उनके महाविधालय में नहीं है। प्रश्न पांचवे के लिये ६२ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि वे टेपरेकार्डर द्वारा छात्रों को शास्त्रीय संगीत सुनवाते हैं जबकि ३८ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि इसकी व्यवस्था उनके महाविधालय में नहीं है। प्रश्न छठवें के लिये ५२ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि वे छात्रों को उच्च-कोटि के कलाकारों के एल. पी. सुनवाते हैं जबकि ४८ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि वे ऐसा नहीं करवा पाते हैं। प्रश्न

प्रश्न सात के लिये ५२ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि वे इन सभी यंत्रों को सुनने, देखने तथा प्रयोग करने के लिये प्रेरित करते हैं जबकि ४८ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि वे ऐसा नहीं कर पाते हैं; क्योंकि उनके यहाँ इस प्रकार के यंत्रों की व्यवस्था नहीं है। प्रश्न आठवें के ५६ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि उनके महाविद्यालयों में कुछ यंत्रों की व्यवस्था है जबकि ४३ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि उनके महाविद्यालय में इस प्रकार के यंत्रों की व्यवस्था नहीं है। प्रश्न नवें के लिये शत-प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि वे अपने छात्रों को रेडियो पर प्रसारित होने वाले शास्त्रीय संगीत के कार्य-क्रमों को सुनने के लिये प्रेरित करते हैं। प्रश्न दसवें के लिये ६६ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि वे अपने महावि-द्यालय में संगीत गोष्ठियों तथा परिसम्वादों का आयोजन करते हैं जबकि ३४ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि वे ऐसा नहीं करते। प्रश्न ग्यारहवें के लिये शत-प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि वे छात्रों से युवा समारोह इत्यादि के अंतर्गत कार्यक्रम तैयार करवाते हैं तो शिक्षा अवधि से बाहर का समय देते हैं। प्रश्न तेरहवें के लिये शतप्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि संगीत शिक्षा को उच्च स्तर देने के लिये इस प्रकार के कार्यक्रमों का आयोजन समय-समय पर करना लाभदायक होगा। प्रश्न चौदहवें के लिये शतप्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि संगीत शिक्षा में इस प्रकार की महत्वपूर्ण बातों की ओर बिलकुल भी ध्यान नहीं दिया जाता यह ठीक नहीं है।

१३ वर्तमान परीक्षा पद्धति —

शिक्षा पद्धति के दोषपूर्ण होने पर परीक्षा पद्धति स्वाभाविक ही दोषों से परिपूर्ण हो जाती है। आज हमारी परीक्षा पद्धति भी अनेक दोषों से परिपूर्ण है। इन दोषों का विवेचन शोधग्रंथ के अध्याय तृतीय, 'भारतीय शास्त्रीय

संगीत की वर्तमान स्थिति' के अ खंड, 'संस्थागत शिक्षा पद्धति का प्रभाव' के अंतर्गत किया जा चुका है। अतः इस बात की भी बड़ी आवश्यकता है कि शिक्षा पद्धति के दोषों के साथ-साथ परीक्षा पद्धति के दोषों के निराकरण की ओर भी ध्यान दिया जाय। यद्यपि संगीत शिक्षा पद्धति में सुधार के साथ परीक्षा पद्धति के दोषों का निराकरण स्वतः ही हो जायेगा। फिर भी इस संबंध में कुछ बातों का ध्यान देना व उनका कड़ाई से पालन करना आवश्यक है। इस समस्या से संबंधित प्राध्यापकों और छात्रों से प्रश्नावली प्रविधि द्वारा प्राप्त मत इस प्रकार हैं —

तालिका नं. १३

प्रश्न	हाँ उत्तर	नहीं
१ वर्तमान परीक्षा पद्धति में सुधार की आवश्यकता है क्या?	१००%	०%
२ परीक्षा पद्धति में कठोरता लाने की आवश्यकता है?	१००%	०%
३ जब तक विद्यार्थी पाठ्यक्रम पूर्ण नहीं करता दक्षतापूर्वक उसे अगली कक्षा में प्रवेश न दिया जाय?	८३%	१६%
४ परीक्षा में केवल ऐच्छिक रागों पर ध्यान न दिया जाय अन्य रागों को भी समान महत्व देना आवश्यक है?	६४%	२६%
५ प्रत्येक माह विद्यार्थियों की मासिक परीक्षा क्रियात्मक और शास्त्र की ली जानी चाहिये?	९६%	३%
६ इन मासिक परीक्षाओं के अंक क्या वार्षिक परीक्षा में जोड़ना उचित होगा?	८८%	१२%
७ क्या हर माह विद्यार्थी का मंच प्रदर्शन आवश्यक होना चाहिये?	१००%	०%
८ महाविद्यालय में होने वाले समारोहों में विद्यार्थियों का भाग लेना अनिवार्य हो।	१००%	०%

प्रश्न	तालिका नं. १३	हाँ उत्तर	नहीं
९	इन, सभी गतिविधियों पर कुछ अंक रखे जाने चाहिये और उन्हें वार्षिक परीक्षा के साथ जोड़ना क्या उचित होगा?	९९%.	१%.
१०	क्या इन प्रयत्नों द्वारा संगीत-शिक्षा तथा कला के स्तर में सुधार हो सकेगा?	८४%.	१६%.
११	क्या उच्च कोटि की संगीत कला के प्रसार और प्रचार द्वारा वर्तमान युग की बढ़ती हुई अशांति और असुरक्षा भावना को शांति और सुरक्षा के वातावरण में परिवर्तित किया जा सकता है?	१००%.	०%.
१२	यदि यह संभव है तो क्या संगीत प्राध्यापकों का कर्तव्य नहीं कि वे अपनी सम्पूर्ण शक्तियों को लगाकर संगीत कला के उच्च स्तर के विकास के लिये प्रयत्न करें?	१००%.	०%.

प्रथम प्रश्न के लिये शतप्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि वर्तमान परीक्षा पद्धति में सुधार की आवश्यकता है। द्वितीय प्रश्न के लिये भी शत-प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि वर्तमान परीक्षा पद्धति में न्यायिक कठोरता लाने की आवश्यकता है। ८२ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत तृतीय प्रश्न के लिये यही है कि जब तक विद्यार्थी पाठ्यक्रम दक्षतापूर्वक पूर्ण नहीं करता उसे अगली कक्षा में प्रवेश न दिया जाय। जबकि १८ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि ऐसा नहीं होना चाहिये। चतुर्थ प्रश्न के लिये ६४ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि परीक्षा में केवल ऐच्छिक राग पर ध्यान देने के अलावा अन्य रागों को समान महत्व दिया जाय जबकि २६ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि ऐसा नहीं होना चाहिये। पंचम प्रश्न के लिये ९८ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि प्रत्येक

माह विद्यार्थियों की मासिक परीक्षायें, क्रियात्मक तथा शास्त्र दोनों विषयों की ली जानी चाहियें जबकि ३ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि इसकी आवश्यकता नहीं है। छठवें प्रश्न के लिये ८८ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि इन मासिक परीक्षाओं के अंक वार्षिक परीक्षा में जोड़ना उचित होगा जबकि १२ प्रतिशत प्राध्यापकों का मानना है कि इसकी आवश्यकता नहीं है। प्रश्न सात के लिये शत प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि हर माह विद्यार्थी का मंच प्रदर्शन आवश्यक हो जबकि शून्य प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि इसकी आवश्यकता नहीं है। प्रश्न आठवें के लिये शत प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि महाविद्यालय में होने वाले समारोहों में विद्यार्थी का भाग लेना अनिवार्य हो जबकि शून्य प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि इसकी आवश्यकता नहीं है। ९९ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत नौवें प्रश्न के लिये है कि इन सभी गतिविधियों पर, कुछ प्रश्न रखे जाने चाहियें और उन्हें वार्षिक परीक्षा के अंकों के साथ जोड़ना चाहिये; जबकि १ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि इसकी आवश्यकता नहीं है। ८४ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत दसवें प्रश्न के लिये है कि इन प्रयत्नों से संगीत-शिक्षा और कला के स्तर में सुधार संभव हो सकेगा। जबकि १६ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि ऐसा शायद ही हो। प्रश्न ग्यारहवें के लिये शतप्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि उच्च कोटि की संगीत कला के प्रसार और प्रचार द्वारा वर्तमान युग की बढ़ती हुई अशांति व असुरक्षा की भावना को शांति और सुरक्षा के वातावरण में परिवर्तित किया जा सकता है। प्रश्न बारहवें के लिये भी शतप्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि उपरोक्त बात संभव है तो संगीत प्राध्यापकों का कर्तव्य है कि वे अपनी सम्पूर्ण शक्तियों को लगाकर संगीत कला के उच्च स्तर के विकास के लिये प्रयत्न करें।

महाविद्यालयों के संगीत छात्रों को भेजी गई प्रश्नावली का परिणाम — अनुसंधानकर्ता द्वारा संगीत छात्रों हेतु भेजी गई प्रश्नावली का निर्माण भी उन्हीं १२ वर्गों के आधार पर

किया गया, जिन वर्गों के आधार पर संगीत प्राध्यापकों हेतु प्रश्नावली का निर्माण किया गया था। छात्रों की प्रश्नावली में प्राध्यापकों की प्रश्नावली के तीन वर्ग उनकी आवश्यकता को न देखते हुये नहीं लिये गये हैं। इस प्रकार की प्रश्नावली में कुल दस वर्ग रखे गये हैं। संगीत छात्रों हेतु रखे गये कुछ प्रश्न संगीत प्राध्यापकों हेतु रखे गये प्रश्नों से भिन्न हैं; कुछ दोनों प्रश्नावलियों में समान हैं।

1 विद्यालय स्तर पर संगीत का विषय के रूप में न होना -

प्रश्न तालिका नं. 1	हाँ उत्तर	नहीं
1 क्या संगीत जैसे विषय को भी विद्यालय स्तर से पढ़ाया जाना चाहिये?	100%	0%
२ क्या संगीत विषय को विद्यालय के प्रारंभिक स्तर से पढ़ाने पर संगीत शिक्षा तथा संगीत कला का स्तर ऊँचा उठेगा?	100%	0%

महाविद्यालय के छात्रों का भी शतप्रतिशत मत यही है कि संगीत शिक्षा विद्यालय के प्रारंभिक स्तर से आरंभ की जाय और इस परिवर्तन का लाभ हमें संगीत-शिक्षा और कला के स्तर में सुधार के रूप में प्राप्त होगा।

२ छात्रों का चुनाव संगीत शिक्षा के लिये -

प्रश्न तालिका नं. २	हाँ उत्तर	नहीं
1 आपने संगीत को एक अनिवार्य विषय के रूप में क्यों चुना	८6%	13%

प्रश्न तालिका नं. २	हाँ	उत्तर नहीं
(क) कलाकार बनने के लिये (ख) अधिक अंक प्राप्त करने के लिये (ग) अच्छा संगीत प्राध्यापक बनने के लिये		
२ आपको यह विषय अन्य विषयों की अपेक्षा आसान लगता है?	६८%	२२%
३ क्या आप अन्य विषयों की अपेक्षा संगीत विषय में अधिक रुचि रखते हैं?	९९%	१%
४ क्या आप समझते हैं कि संगीत जैसे विषय में छात्र का चुनाव छात्र की योग्यता पर ही करना चाहिये?	९४%	६%
५ आप किस प्रकार का संगीत सुनना पसंद करते हैं (क) शास्त्रीय (ख) उपशास्त्रीय (ग) फिल्मी (घ) लोकसंगीत	६८%	३२%
६ क्या आप रेडियो से प्रसारित होने वाले शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रमों को सुनते हैं?	९३%	६%

प्रथम प्रश्न के मत में ८६% प्रतिशत छात्र संगीत को अनिवार्य विषय के रूप में अच्छा कलाकार और अच्छा संगीत प्राध्यापक दोनों ही बनने के लिये चुनते हैं जबकि १३ प्रतिशत विद्यार्थी भी हैं जो संगीत विषय केवल अधिक अंक प्राप्त करने के लिये चुनते हैं। दूसरे प्रश्न के निष्कर्ष के रूप में २२ प्रतिशत छात्रों का मत है कि उन्हें यह विषय अन्य विषयों की अपेक्षा आसान लगता है जबकि ६८ प्रतिशत छात्रों का मत है कि यह विषय अन्य विषयों की अपेक्षा कठिन है। तीसरे प्रश्न के परिणाम में ९९ प्रतिशत छात्र संगीत विषय में अन्य विषयों की अपेक्षा अधिक रुचि रखते हैं जबकि १ प्रतिशत छात्र ऐसे नहीं हैं।

चौथे प्रश्न के निष्कर्ष में महाविद्यालयों के ९४ प्रतिशत संगीत छात्र इस पक्ष में हैं कि संगीत शिक्षा के लिये छात्रों का चुनाव छात्र की योग्यता पर ही होना चाहिये, जबकि ६ प्रतिशत संगीत छात्र इसे आवश्यक नहीं समझते। पांचवें प्रश्न के निष्कर्ष में ६८ प्रतिशत संगीत छात्रों का मत है कि उन्हें शास्त्रीय संगीत ही पसंद है, जबकि ३२ प्रतिशत संगीत छात्र केवल उप-शास्त्रीय फिल्म व लोक संगीत ही सुनना पसंद करते हैं। अंतिम प्रश्न के मत में ९३ प्रतिशत संगीत छात्र रेडियो से प्रसारित होने वाले शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रमों को सुनते हैं, जबकि ६ प्रतिशत संगीत छात्र ऐसे हैं जो ऐसे कार्यक्रमों को नहीं सुनते।

३ संगीत शिक्षण के लिये उपयुक्त स्थान –

प्रश्न तालिका नं. ३	हाँ उत्तर	नहीं
१ क्या संगीत शिक्षण के लिये संगीत कक्ष का हवादार और प्रकाशयुक्त होना आवश्यक है?	१००%	०%
२ क्या महाविद्यालयों में संगीत शिक्षण के लिये उपयुक्त स्थान पाया जाता है?	५३%	४६%
३ क्या आपके महाविद्यालय में संगीत शिक्षण के लिये उपयुक्त व्यवस्था है?	६६%	३३%

प्रथम प्रश्न के लिये शत प्रतिशत छात्रों का मत है कि संगीत शिक्षण के लिये संगीत कक्ष का हवादार और प्रकाशयुक्त होना आवश्यक है। दूसरे प्रश्न के निष्कर्ष में ५३ प्रतिशत छात्रों का मत है कि महाविद्यालय में संगीत शिक्षण के लिये उपयुक्त स्थान पाया जाता है जबकि ४६ प्रतिशत छात्रों का मत है कि महाविद्यालयों में संगीत शिक्षण के लिये उपयुक्त स्थान की व्यवस्था नहीं है। प्रश्न

तृतीय के निष्कर्ष में ६६ प्रतिशत छात्रों का मत है उनके महाविद्यालय में संगीत शिक्षण के लिये उपयुक्त स्थान की व्यवस्था है जबकि ३३ प्रतिशत छात्रों का मत है कि उनके महाविद्यालय में संगीत शिक्षण के लिये उपयुक्त स्थान की व्यवस्था नहीं है।

४ समय का अभाव —

प्रश्न तालिका नं. ४	उत्तर हाँ	नहीं
१ विज्ञान और अन्य तकनीकी महाविद्यालयों की भाँति संगीत महाविद्यालय का समय भी सात घंटे होना चाहिये?	१००%	०%
२ क्या संगीत जैसे विषय को पढ़ाने के लिये महाविद्यालयों में दिया गया ४० मिनट का समय पर्याप्त है?	१०%	९०%
३ अगर नहीं तो इस विषय को पढ़ाने के लिये प्रत्येक घंटे के लिये कितना समय मिलना चाहिये? (अ) ४० मिनट (ब) ८० मिनट	६३%	२६%
४ संगीत शिक्षा के क्रिया पक्ष में स्वर पक्ष और ताल पक्ष को दृढ़ करने के लिये अभ्यास के लिये अलग घंटे रखे जाने चाहिये?	८५%	१५%
५ इसी प्रकार संगीत की अलग-अलग विधाओं जैसे ख्याल, ध्रुपद, धमार, तराना ठुमरी के लिये अलग-अलग घंटों की व्यवस्था होनी चाहिये?	६८%	२२%
६ क्या आपके महाविद्यालय में इस प्रकार की व्यवस्था है?	१०%	९०%

प्रथम प्रश्न के उत्तर में शत प्रतिशत छात्रों का मत है कि विज्ञान

तथा अन्य तकनीकी महाविधालयों की भाँति संगीत महाविधालयों का समय भी सात घंटे होना चाहिये जबकि शून्य प्रतिशत छात्र इसके पक्ष में नहीं हैं। दूसरे प्रश्न के लिये ९० प्रतिशत छात्रों का मत है कि प्रत्येक घंटे के लिये दिया गया ४० मि. का समय संगीत शिक्षा के लिये पर्याप्त नहीं है जबकि १० प्रतिशत छात्र ४० मिनट का समय ही पर्याप्त मानते हैं। चौथे प्रश्न के उत्तर में ८५ प्रतिशत छात्रों का मत है कि ताल-पक्ष और स्वर-पक्ष की सुदृढ़ता के लिये अलग घंटे रखे जाने चाहिये, जबकि १५ प्रतिशत इसकी आवश्यकता नहीं समझते। पांचवे प्रश्न के उत्तर में ६८ प्रतिशत छात्रों का मत है कि संगीत कला की अलग-अलग विधाओं की शिक्षा के लिये अलग-अलग घंटों की व्यवस्था होनी चाहिये जबकि २२ प्रतिशत छात्रों के मतानुसार इसकी आवश्यकता नहीं है। छठवें प्रश्न के संबंध में ९० प्रतिशत छात्रों का मत है कि उनके महाविधालय में उपरोक्त प्रकार की कोई व्यवस्था नहीं है जबकि १० प्रतिशत छात्रों का मत है कि उनके महाविधालय में इस प्रकार की व्यवस्था है।

५ कक्षा में छात्रों की संख्या —

प्रश्न तालिका नं. ५	हाँ	उत्तर नहीं
१ विश्वविधालय संगीत शिक्षण में कला के उच्च स्तर के लिये छात्रों की संख्या का कक्षा में कम होना क्या उचित है?	९२%	८%
२ एक संगीत कक्षा में पांच या ६: विधार्थियों से अधिक नहीं होना चाहिये?	६८	२२%
३ क्या आपके महाविधालय में छात्रों की संख्या अधिक है?	५५%	४५%
४ छात्र संख्या अधिक होने पर अधिक वर्ग बनाकर व्यवस्था आवश्यक है? क्या	९८%	८%

पांचवी तालिका के अंतर्गत चार प्रश्न रखे गये इनका निष्कर्ष इस प्रकार रहा। प्रथम प्रश्न के लिये ९२ प्रतिशत छात्रों का मत है कि विश्वविद्यालयीन संगीत शिक्षण में कला के उच्च स्तर के लिये छात्रों की संख्या का कक्षा में कम होना आवश्यक है जबकि ८ प्रतिशत छात्र इसकी आवश्यकता नहीं समझते। दूसरे प्रश्न के उत्तर में ६८ प्रतिशत छात्रों का मत है कि एक संगीत कक्षा में एक घंटे में पांच अथवा छः विद्यार्थियों से अधिक नहीं होने चाहिये जबकि २२ प्रतिशत विद्यार्थियों का मत है कि ऐसा होना आवश्यक नहीं है। तीसरे प्रश्न के लिये ५५ प्रतिशत छात्रों का मत है कि उनके महाविद्यालय में छात्रों की संख्या अधिक है जबकि ४५ प्रतिशत छात्रों के अनुसार उनके महाविद्यालय में छात्रों की संख्या अधिक नहीं है। चतुर्थ प्रश्न के लिये ९८ प्रतिशत छात्रों का मत है कि संगीत कक्ष में छात्रों की संख्या अधिक होने पर अधिक वर्ग बनाकर उसकी व्यवस्था की जानी चाहिये जबकि ८ प्रतिशत छात्र इसकी आवश्यकता नहीं समझते।

६ वाद्य यंत्रों का अभाव –

प्रश्न तालिका नं. ६	उत्तर हाँ	नहीं
१ महाविद्यालयों में अधिकतर वाद्यंत्रों की कमी पाई जाती है क्या यह सही है?	६६%	२४%
२ क्या संगीत शिक्षण के लिये घर में रियाज़ के लिये वाद्यंत्रों का होना आवश्यक है?	१००%	०%
३ क्या संगीत शिक्षण में घर पर ताल के साथ रियाज़ होना आवश्यक है?	६६%	२३%

तालिका नं. ६ में छात्रों के लिये तीन प्रश्न रखे गये हैं। प्रथम प्रश्न के उत्तर में ६६ प्रतिशत विद्यार्थियों का मत है कि महाविद्यालयों में अधिकतर वाद्यंत्रों की कमी पाई जाती है जबकि २४ प्रतिशत

छात्रों का मत है कि ऐसा नहीं है। दूसरे प्रश्न के उत्तर में शत-प्रतिशत छात्रों का मत है कि घर में रियाज़ के लिये वाद्य यंत्रों का होना आवश्यक है। तीसरे प्रश्न के उत्तर में 66 प्रतिशत छात्रों का मत है कि घर में रियाज के लिये ताल-वाद्य की व्यवस्था होनी आवश्यक है।

6 प्रशिक्षित प्राध्यापक संगीत शिक्षा के लिये –

प्रश्न तालिका नं. 6	हाँ	उत्तर नहीं
1 क्या संगीत प्राध्यापक का प्रशिक्षित होना आवश्यक है?	61%	२९%
२ एक संगीत प्राध्यापक को संगीत के कौन से पक्ष में दक्ष होना आवश्यक है?	८३%	16%
३ क्या महाविद्यालयों में तबला वादकों का अभाव रहता है?	६४%	३६%
४ महाविद्यालय में प्रत्येक कक्षा के लिये प्रृथक तबला वादक होना क्या आवश्यक है?	९०%	१०%

तालिका नं. 6 के अंतर्गत छात्रों के लिये केवल चार प्रश्न रखे गये हैं। प्रथम प्रश्न के लिये 61 प्रतिशत छात्रों का मत है कि संगीत प्राध्यापक का प्रशिक्षित होना आवश्यक है जबकि २९ छात्रों का मत है कि इसकी आवश्यकता नहीं है। प्रश्न दूसरे के लिये ८३ प्रतिशत छात्रों का मत है कि एक संगीत प्राध्यापक को संगीत के उभय पक्ष में दक्ष होना चाहिये जबकि 16 प्रतिशत विद्यार्थियों का मत है कि इसकी आवश्यकता नहीं है। तीसरे प्रश्न के लिये ६४ प्रतिशत विद्यार्थियों का मत है उनके महाविद्यालय में तबला वादकों का अभाव पाया जाता है जबकि ३६ प्रतिशत छात्रों का मत है कि ऐसा उनके महाविद्यालय में नहीं है। प्रश्न चतुर्थ के लिये ९० छात्रों का मत है कि महाविद्यालय में प्रत्येक कक्षा के लिये प्रृथक तबला वादक

होना आवश्यक है जबकि १० प्रतिशत विद्यार्थियों का मत है कि यह आवश्यक नहीं है।

८ पाठ्यक्रम संगीत शिक्षा में –

प्रश्न तालिका नं. ८	उत्तर हाँ	नहीं	
१ क्या संगीत के दोनों पक्ष (क्रिया और शास्त्र) एक दूसरे पर आधारित हैं?	८९%.	११%.	
२ आपके विचार से संगीत के कौन से पक्ष को महत्व मिलना चाहिये? (क) शास्त्र (ख) क्रिया (ग) उभय पक्ष	११%.	२५%.	६४%.
३ चालिस मिनट के घंटे को ध्यान में रखते हुये क्या संगीत के पाठ्यक्रम में अधिकता नहीं पाई जाती?	९६%.	४%.	
४ समय के अभाव को देखते हुये क्या संगीत का पाठ्यक्रम कम किया जाना चाहिये?	८३%.	१६%.	

तालिका नं. आठ के अंतर्गत चार प्रश्न रखे गये हैं और पाठ्यक्रम से संबंधित समस्या के लिये छात्रों द्वारा प्राप्त मत इस प्रकार हैं – प्रथम प्रश्न के लिये ८९ प्रतिशत छात्रों का मत है कि संगीत के दोनों पक्ष एक दूसरे पर आधारित हैं जबकि ११ प्रतिशत विद्यार्थियों का मत है कि वे एक दूसरे पर आधारित नहीं हैं। प्रश्न दूसरे का निष्कर्ष इस प्रकार है ६४ प्रतिशत छात्रों का मत है कि संगीत के उभय पक्ष को महत्व मिलना चाहिये जबकि २५ प्रतिशत विद्यार्थियों का मत है कि संगीत के क्रिया-पक्ष को महत्व मिलना चाहिये। ११ प्रतिशत विद्यार्थियों का मत है कि संगीत के शास्त्र पक्ष को महत्व मिलना चाहिये। प्रश्न तीसरे के लिये ९६ प्रतिशत छात्रों का मत है कि ४० मिनट के घंटे को ध्यान में रखते हुये संगीत के पाठ्यक्रम में अधिकता पाई जाती है। जबकि ४ छात्रों का मत है कि ऐसा नहीं है। प्रश्न चतुर्थ के

के लिये ८३ प्रतिशत छात्रों का मत है कि पाठ्यक्रम में कमी की जानी आवश्यक है जबकि १७ प्रतिशत छात्रों का मत है कि इसकी आवश्यकता नहीं है।

९ संगीत शिक्षण में शिक्षण सहायताओं का प्रयोग –

प्रश्न तालिका नं. ९	उत्तर हाँ	नहीं
१ क्या संगीत शिक्षण के लिये श्रव्य-दृश्यात्मक उपकरणों का प्रयोग करना चाहिये?	८१%	१९%
२ क्या आपके महाविद्यालय में इस प्रकार के उपकरणों का प्रयोग होता है?	३३%	६७%
३ क्या आप वीडियो, टी.वी. के माध्यम से विषय से संबंधित फिल्में देखते हैं या बड़े-बड़े कलाकारों का गायन या वादन सुनते हैं?	०%	१००%
४ क्या आप रेकार्ड प्लेयर द्वारा बड़े-बड़े कलाकारों के गायन अथवा वादन के एल.पी. सुनते हैं?	१२%	८८%
५ क्या आप टेपरेकार्डर अथवा रेडियो के माध्यम से शास्त्रीय संगीत सुनते हैं?	९३%	७%
६ क्या आपके प्राध्यापक आपको इन यंत्रों के माध्यम से शास्त्रीय संगीत सुनने के लिये प्रेरित करते हैं?	६७%	३३%
७ क्या आपके प्राध्यापक आपको शा. संगीत के अखिल भारतीय कार्यक्रम सुनने के लिये प्रेरित करते हैं?	५४%	४६%
८ क्या आपके महाविद्यालय में संगीत-गोष्ठी, परिसंवादों का आयोजन होता है?	४५%	५५%
९ क्या संगीत परिसंवादों व गोष्ठियों का आयोजन हर माह आवश्यक है?	९८%	२%

तालिका नं. ९ के प्रथम प्रश्न के लिये ८१ प्रतिशत छात्रों का मत है कि संगीत शिक्षा में श्रव्य-दृश्यात्मक उपकरणों का प्रयोग होना चाहिये जबकि १९ प्रतिशत छात्रों का मत है कि इसकी आवश्यकता नहीं है। द्वितीय प्रश्न के लिये ३३ प्रतिशत छात्रों का मत है कि उनके महाविद्यालय में कुछ यंत्रों का प्रयोग होता है जबकि ६६ प्रतिशत छात्रों का मत है कि उनके महाविद्यालय में इसकी व्यवस्था नहीं है। प्रश्न तीन के लिये शत-प्रतिशत छात्रों का मत है कि वे विडियो अथवा टी.वी. का प्रयोग अपनी संगीत शिक्षा के लिये नहीं कर पाते चतुर्थ प्रश्न के लिये ९३ प्रतिशत छात्रों का मत है कि वे रेडियो और टेप रेकार्डर के माध्यम से शास्त्रीय संगीत सुनते हैं जबकि ६ प्रतिशत छात्रों का मत है कि वे ऐसा नहीं करते। प्रश्न पांचवे के लिये १२ प्रतिशत छात्रों का मत है कि वे रेकार्ड-प्लेयर का प्रयोग शास्त्रीय संगीत सुनने के लिये करते हैं जबकि ८८ प्रतिशत छात्रों का मत है कि वे ऐसा नहीं कर पाते क्योंकि यह साधन उनके पास उपलब्ध नहीं है। प्रश्न छठवें के लिये ६३ प्रतिशत छात्रों का मत है कि उनके प्राध्यापक उपरोक्त यंत्रों द्वारा उन्हें शास्त्रीय संगीत सुनने के लिये प्रेरित करते हैं जबकि ३३ प्रतिशत छात्रों का कथन है कि उनके साथ ऐसा नहीं होता है। ५४ प्रतिशत छात्रों का मत सातवें प्रश्न के लिये है कि उनके प्राध्यापक शास्त्रीय संगीत के अखिल भारतीय कार्यक्रम सुनने के लिये प्रेरित करते हैं जबकि ४६ प्रतिशत छात्रों का मत है कि वे ऐसा नहीं करते। प्रश्न आठवें के लिये ४५ प्रतिशत छात्रों का मत है कि उनके महाविद्यालय में संगीत गोष्ठियां और परिसम्वादों का आयोजन होता है जबकि ५५ प्रतिशत छात्रों का उत्तर है कि उनके महाविद्यालय में इस प्रकार के आयोजन नहीं होते। प्रश्न नवें के लिये ९८ प्रतिशत विद्यार्थियों का मत है कि संगीत शिक्षा के उच्च स्तर की प्राप्ति के लिये संगीत गोष्ठी तथा परिसम्वादों का आयोजन हर माह होना चाहिये। जबकि २ प्रतिशत छात्रों का मत है कि इसकी आवश्यकता नहीं है।

१० वर्तमान परीक्षा पद्धति –

तालिका नं. १०

प्रश्न	हाँ उत्तर	नहीं
१ क्या वर्तमान परीक्षा प्रणाली में कठोरता लानी चाहिये ?	८०%	२०%
२ जब तक पाठ्यक्रम दक्षतापूर्वक पूर्ण न हो विद्यार्थी को अगली कक्षा में प्रवेश न दिया जाय ?	५२%	४८%
३ मासिक परीक्षा अनिवार्य होनी चाहिये और क्या उनके अंक वार्षिक परीक्षा में जोड़ना उचित होगा ?	६१%	२९%
४ ऐच्छिक राग के साथ-साथ परीक्षा में अन्य रागों को भी महत्व देना चाहिये ?	५८%	४२%
५ हर माह विद्यार्थी का मंच प्रदर्शन अनिवार्य होना चाहिये ?	५०%	५०%
६ क्या इन प्रयासों द्वारा संगीत शिक्षा का स्तर ऊँचा उठेगा ?	१००%	०%
७ क्या उच्चकोटि की संगीत कला के प्रसार और प्रचार द्वारा वर्तमान युग की बढ़ती हुई अशांति और असुरक्षा की भावना को शांति और सुरक्षा के वातावरण में परिवर्तित किया जा सकता है ?	१००%	०%
८ यदि यह संभव है तो संगीत के क्षेत्र में प्रविष्ट होने पर क्या संगीत छात्रों का कर्तव्य नहीं होता कि वे अपनी सम्पूर्ण शक्तियों को लगाकर संगीत-कला के उच्चतम स्तर की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करें ?	१००%	०%

उपरोक्त समस्या से संबंधित प्रश्न विद्यार्थियों के लिये

दसवीं तालिका के अंतर्गत रखे गये हैं। ये प्रश्न कुल आठ हैं। प्रथम प्रश्न के लिये ८० प्रतिशत छात्रों का मत है कि वर्तमान परीक्षा पद्धति में न्यायिक कठोरता लानी चाहिये जबकि २० प्रतिशत छात्रों का मत कठोरता लाने के पक्ष में नहीं है। दूसरे प्रश्न के लिये ५२ प्रतिशत छात्रों का मत है कि जब तक पाठ्यक्रम दक्षतापूर्वक पूर्ण न हो अगली कक्षा में प्रवेश न दिया जाय जबकि ४८ प्रतिशत छात्र ऐसा नहीं चाहते हैं। तृतीय प्रश्न के उत्तर में ७१ प्रतिशत छात्रों का मत है कि मासिक परीक्षा अनिवार्य हो और उसके अंक वार्षिक परीक्षा में जोड़े जायें २९ प्रतिशत छात्र ऐसा नहीं चाहते। चौथे प्रश्न के लिये ५८ प्रतिशत छात्रों का मत है कि परीक्षा में ऐच्छिक राग के साथ अन्य रागों को भी समान महत्व मिलना चाहिये। जबकि ४२ प्रतिशत छात्र इस बात के पक्ष में नहीं हैं। पांचवें प्रश्न के लिये ५० प्रतिशत छात्रों का मत है कि विद्यार्थी का हर माह मंच प्रदर्शन आवश्यक है जबकि ५० प्रतिशत छात्र ऐसा नहीं चाहते हैं। प्रश्न छः के लिये शत प्रतिशत छात्रों का मत है कि उपरोक्त प्रयासों द्वारा संगीत शिक्षा का स्तर ऊँचा उठेगा जबकि शून्य प्रतिशत छात्रों का मत है कि ऐसा शायद ही हो। प्रश्न सात के लिये शत प्रतिशत छात्रों का मत है कि उच्चकोटि की संगीत कला के प्रचार-प्रसार द्वारा वर्तमान युग की बढ़ती हुई अशांति और असुरक्षा की भावना को शांति और सुरक्षा के वातावरण में परिवर्तित किया जा सकता है। जबकि शून्य प्रतिशत छात्रों का मत है कि यह संभव नहीं है। प्रश्न आठ के लिये शतप्रतिशत छात्रों का मत है कि यदि यह संभव है तो संगीत-क्षेत्र में प्रविष्ट होने पर संगीत छात्र का यह कर्तव्य है वह अपनी सम्पूर्ण शक्तियों को लगाकर संगीत-कला के उच्चतम स्तर की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करें।

एकत्रित दत्त सामग्री और प्रश्नावली का विश्लेषात्मक अध्ययन-

शोधकर्ता द्वारा विश्वविद्यालयों तथा उसके अंतर्गत आने वाले महाविद्यालयों में संगीत शिक्षण की समस्याओं के लिये बनाई गई प्रश्नावली पाँच विश्वविद्यालयों पाँच महाविद्यालयों

में संगीत छात्रों तथा प्राध्यापकों को दी गयी, जिसके माध्यम से समस्याओं से सम्बन्धित दत्त सामग्री का संकलन किया गया। प्रश्नावली का निर्माण छात्रों और प्राध्यापकों के लिये अलग-अलग किया गया। प्रश्नावली में प्राध्यापकों के लिये समस्याओं से संबंधित १३ वर्गों के आधार पर प्रश्नों का निर्माण किया गया संगीत प्राध्यापकों के लिये बनाई गयी प्रश्नावली में कुल ८९ प्रश्नों का निर्माण किया गया। इसी प्रकार संगीत छात्रों के लिये समस्याओं से संबंधित १० वर्गों के आधार पर प्रश्नों का निर्माण किया गया। इस प्रश्नावली में कुल ५० प्रश्न रखे गये। इस प्रकार जो दत्त सामग्री प्रश्नावलियों के माध्यम से एकत्रित की गयी उस एकत्रित दत्त सामग्री और प्रश्नावलियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन इस प्रकार किया गया।

संगीत प्राध्यापकों हेतु निर्मित प्रश्नावली व प्रश्नावली से प्राप्त दत्त सामग्री का विश्लेषण –

संगीत प्राध्यापकों हेतु निर्मित प्रश्नावली के प्रथम वर्ग के अंतर्गत तीन तरह के प्रश्नों का निर्माण किया गया। इन तीनों प्रश्नों का निष्कर्ष यही रहा कि संगीत विषय विद्यालय के प्रारंभिक स्तर से अनिवार्य किया जाय। यह बहुत गलत है कि ऐसा नहीं किया गया; जिससे विश्वविद्यालयीन शिक्षा की नींव कच्ची ही रह जाती है। यदि विद्यालय के प्राथमिक स्तर से संगीत अनिवार्य किया जाय तो संगीत-शिक्षा और कला के स्तर में सुधार अवश्य होगा।

दूसरे वर्ग की समस्या हेतु प्रश्नावली में पाँच प्रश्न रखे गये हैं। इन पांच प्रश्नों का परिणाम यही रहा कि महाविद्यालयों में छात्र का चुनाव छात्र की योग्यता व रुचि पर ही होना चाहिये। जबकि महाविद्यालयों में ऐसा नहीं होता है। ऐसा न होने से संगीत विषय में कुछ छात्र ऐसे आ जाते हैं, जिनको न ताल का ज्ञान होता है न स्वर का और न ही संगीत विषय के प्रति कोई रुचि। ऐसे छात्रों को शिक्षा देने में संगीत प्राध्यापकों को भी काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। शत-प्रतिशत संगीत प्राध्यापकों की राय है कि यह समस्या तभी

दूर हो सकती है जब महाविद्यालयों में छात्रों के प्रवेश के लिये चयन छात्र की योग्यता एवं रुचि के आधार पर किया जाय।

तीसरे वर्ग की समस्या हेतु भी कुल दो प्रश्नों को प्रश्नावली में रखा गया। अन्वेषणकर्ता ने संगीत शिक्षण से संबंधित तीसरी समस्या महाविद्यालयों में संगीत शिक्षण के लिये उपयुक्त स्थान का अभाव पाई है। संगीत विषय को महत्व न देते हुये संगीत शिक्षण के लिये छोटे-छोटे कक्ष दिये जाते हैं। जिनमें शिक्षा प्रदान करने तथा प्राप्त करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। महाविद्यालय के ६६ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि महाविद्यालयों में संगीत शिक्षण हेतु स्थान उपयुक्त नहीं मिलता। इसके साथ ही ९४ प्रतिशत प्राध्यापकों की राय है कि महाविद्यालयों में संगीत शिक्षण के लिये उपयुक्त व्यवस्था की जानी चाहिये। उपरोक्त परिणामों को देखते हुये संगीत शिक्षण के लिये उपयुक्त स्थान की व्यवस्था शीघ्रता से किये जाने की आवश्यकता है।

चौथे वर्ग की समस्या के लिये कुल तीन प्रश्नों को प्रश्नावली के अंतर्गत रखा गया। अन्वेषणकर्ता ने संगीत शिक्षण से संबंधित चौथी समस्या महाविद्यालयों की कक्षा में छात्रों की संख्या की अधिकता पाई है। संगीत एक ऐसा विषय है जिसे सामूहिक शिक्षा का विषय बनाने के बाद भी उस की कक्षाओं में छात्रों की संख्या का उचित अनुपात आवश्यक है अन्यथा संगीत की क्रियात्मक शिक्षा उचित रीति से दे पाना असंभव होगा। छात्रों की संख्या की अधिकता के कारण भी संगीत शिक्षा तथा कला का स्तर गिर रहा है। ९३ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि विश्वविद्यालय स्तर पर संगीत शिक्षण में कला के उच्च स्तर के लिये छात्रों की संख्या का कक्षा में कम होना आवश्यक है। ६५ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि एक संगीत कक्षा में पांच या छः विद्यार्थियों से अधिक नहीं होने चाहिये। प्रश्नावली के उपरोक्त परिणाम को देखते हुये संगीत शिक्षा के क्षेत्र में इस समस्या का निराकरण यथाशीघ्र होना चाहिये। कक्षा में छात्रों की संख्या कम होने पर शिक्षक छात्रों के गुण-दोषों पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान दे सकेंगे।

पांचवें वर्ग की समस्याओं के लिये कुल छः प्रश्न प्रश्नावली के अंतर्गत रखे गये हैं। अनुसंधानकर्ता का कहना है कि महाविद्यालय में संगीत शिक्षण के लिये कुल चालीस मिनट का समय दिया जाता है यह बहुत कम है अतः इसको बढ़ाया जाना चाहिये। इसके लिये जो परिणाम प्राप्त हुये हैं उनके अनुसार ६८ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि संगीत शिक्षण के लिये कम से कम ८० मिनट का समय होना चाहिये। इसी तालिका के चतुर्थ प्रश्न के उत्तर में ८६ प्रतिशत संगीत प्राध्यापकों का मत है कि संगीत शिक्षा में स्वर तथा ताल पक्ष की सुदृढ़ता के लिये इनके अभ्यास के लिये अलग से घंटे रखे जाने चाहिये। पंचम प्रश्न के लिये ८३ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि संगीत कला की अलग-अलग विधाओं के लिये अलग-अलग घंटों की व्यवस्था होनी चाहिये। इन प्रश्नों के लिये यह परिणाम प्राप्त होने के बाद भी प्रथम प्रश्न के लिये केवल ६३ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि संगीत महाविद्यालयों का समय भी अन्य तकनीकी महाविद्यालयों की भाँति सात घंटे होना चाहिये। परंतु यदि संगीत शिक्षा के लिये प्रत्येक घंटे के समय को बढ़ाया जाय, स्वर-ताल की सुदृढ़ता तथा संगीत कला की प्रत्येक विधा की शिक्षा के लिये पृथक घंटों की व्यवस्था के लिये ८३ तथा ८५ प्रतिशत मत देते हैं तो अपरोक्ष रूप से यह परिणाम प्रथम प्रश्न पर भी लागू होता है। क्योंकि इस प्रकार की व्यवस्था में स्वतः ही संगीत महाविद्यालयों की समय सीमा बढ़कर करीब-करीब विज्ञान व अन्य तकनीकी महाविद्यालयों की समय-सीमा जितनी हो जायेगी। इस प्रश्नावली के उपरोक्त परिणामों के महत्व को समझते हुये, संगीत कला के स्तर की उच्चता के लिये शीघ्र ही इस व्यवस्था को अपनाया जाय।

छठवें वर्ग की समस्या के लिये कुल तीन प्रश्नों को प्रश्नावली के अंतर्गत रखा है। शोधकर्ता का कहना है कि महाविद्यालयों में संगीत शिक्षण के लिये उपयोगी वाद्य यंत्रों की कमी पाई जाती है, जबकि महाविद्यालयों में शिक्षण से संबंधित वाद्य-यंत्रों के अतिरिक्त दूसरे वाद्य-यंत्र जो वाद्य-वृंद के तहत

प्रयोग किये जाते हैं, का होना भी अत्यंत आवश्यक है। इसमें ५८ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि महाविद्यालय में अधिकतर वाद्ययंत्रों का अभाव पाया जाता है। इस परिणाम को देखते हुये हम संगीत शिक्षा के स्तर की कल्पना कर सकते हैं। वाद्ययंत्रों के अभाव में कैसी संगीत शिक्षा होगी इसकी हम कल्पना कर सकते हैं अत: इस समस्या के परिणामों को देखते हुये इस समस्या के निराकरण की व्यवस्था भी यथाशीघ्र होनी चाहिये।

सातवें वर्ग की समस्या के अंतर्गत कुल ११ प्रश्न रखे गये हैं। महाविद्यालयों में प्रशिक्षित प्राध्यापकों तथा तबला वादकों का अभाव ही सातवें वर्ग की समस्या है। इसके विश्लेषण में शत-प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि नये शिक्षक शिक्षण कार्य के लिये पूर्णत: अनुभवी नहीं होते। ६५ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि प्राय: ऐसे संगीत प्राध्यापकों का अभाव पाया जाता है जो संगीत के उभय पक्ष में दक्ष हों। इस समस्या के निराकरण के लिये ९३ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि प्राध्यापकों के प्रशिक्षण के लिये वर्ष में एक बार कार्यशिविर लगाया जाय। ६६ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि इस प्रशिक्षण शिविर में संगीत के शास्त्र और क्रिया दोनों पक्षों को सम्मिलित होना चाहिये। तबला वादकों की कमी के निराकरण के लिये जो विश्लेषण प्राप्त होता है इस प्रकार है। ६२ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि प्राय: महाविद्यालय में तबलासंगतकारों का अभाव देखा गया है। २८ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि महाविद्यालय में प्रत्येक घंटे में प्रत्येक वर्ग के लिये अलग-अलग तबला वादक होने आवश्यक हैं। प्रश्नावली के परिणामों की इस प्रतिशतता के आधार पर प्रशिक्षित प्राध्यापकों तथा तबला-वादकों की समस्या का निराकरण संगीत-शिक्षा तथा संगीत-कला के स्तर में सुधार के लिये अत्यधिक आवश्यक है। क्योंकि तबला गीत, नृत्य, वादन तीनों के लिये आवश्यक है उसके दृढ़ आधार के बिना संगीत शिक्षा अधूरी है। इसलिये समुचित संगीत शिक्षा के लिये योग्य संगीत शिक्षकों की व्यवस्था आवश्यक है।

आठवें वर्ग की समस्या से संबंधित कुल

ग्यारह प्रश्न हैं। जिनका प्रश्नावली के परिणाम के आधार पर विश्लेषण यह है। अन्वेषणकर्ता की मुख्य समस्या यह है कि महाविद्यालयों के संगीत विषय के पाठ्यक्रम में काफी अधिक अनियमितता है जैसे महाविद्यालय में संगीत शिक्षा के लिये निर्धारित ४० मि. के समय को देखते हुये पाठ्यक्रम में अधिकता, पाठ्यक्रम में किसी विशिष्ट सांगीतिक पक्ष के विशेष अध्ययन का अभाव, पाठ्यक्रम का जीविकोपार्जन की समस्या के आधार पर व्यावसायिक रूप न होना, पाठ्यक्रम में संगीत श्रवण से संबंधित व्यवस्था का न होना आदि समस्यायें इस वर्ग के अंतर्गत ली गयी हैं। ६८ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि उपरोक्त समस्याओं के निराकरण द्वारा पाठ्यक्रम को नियमित स्वरूप प्रदान किया जाय ६४ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि पाठ्यक्रम में किसी विशिष्ट सांगीतिक पक्ष का विशेष अध्ययन रखा जाना चाहिये। शत-प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि संगीत शिक्षा के पाठ्यक्रम को जीविकोपार्जन की समस्या दूर करने के आधार पर व्यावसायिक रूप प्रदान करना आवश्यक है। ६० प्रतिशत प्राध्यापक मानते हैं कि संगीत के उभय पक्षों को महत्व दिया जाना चाहिये। शत-प्रतिशत प्राध्यापकों का मानना है कि संगीत कला में सुधार की दृष्टि से संगीत शिक्षा में संगीत श्रवण का समावेश अनिवार्य होना चाहिये। शत-प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि संगीत प्रदर्शन के संबंध में वर्ष में प्रत्येक विद्यार्थी का दो बार संगीत समारोहों में प्रदर्शन अनिवार्य किया जाना चाहिये। ६३ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि पाठ्यक्रम में सुगम संगीत तथा उपशास्त्रीय संगीत का समावेश किया जाना आवश्यक है। प्रश्नावली से प्राप्त परिणामों की प्रतिशतता को देखते हुये पाठ्यक्रम में उपरोक्त तथ्यों में शीघ्र सुधार की आवश्यकता है ताकि संगीत शिक्षा का स्तर ऊँचा उठ सके।

नवम वर्ग के अंतर्गत समस्या से संबंधित १० प्रश्न रखे गये हैं। इसके लिये प्राध्यापकों द्वारा प्राप्त मतों के आधार पर विश्लेषण इस प्रकार है। ८६ प्रतिशत वर्तमान शिक्षा प्रणाली में सुधार की आवश्यकता है यह मानते हैं। ८९ प्रतिशत प्राध्यापकों का

का मत है कि संस्थागत-शिक्षा-पद्धति तथा गुरुकुल शिक्षा पद्धति के गुणों का समन्वय वर्तमान संगीत शिक्षा को अधिक उपयोगी बना सकता है। ८३ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत कि संगीत शिक्षा में उपरोक्त परिवर्तन द्वारा संगीत-शिक्षा और कला दोनों का स्तर ऊँचा उठेगा। ६६ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि एक स्तर के बाद प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को गुरुकुल शिक्षा पद्धति द्वारा शिक्षा देने की पृथक व्यवस्था उचित होगी। ५६ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि इसके लिये प्रत्येक प्रांत में गुरु-कुल-शिक्षा पद्धति पर आधारित विश्वविद्यालय निर्माण करना उचित होगा। गुरुकुल शिक्षा पद्धति के दोषों के निराकरण के लिये संस्थागत शिक्षा पद्धति द्वारा संगीत शिक्षा देने की व्यवस्था की गई पर गुरुकुल शिक्षा पद्धति के गुणों को भी छोड़ दिया गया और यही स्थिति संगीत शिक्षा और कला के स्तर के गिरने का कारण हुई। इस समस्या को लेकर निर्मित प्रश्नावली के परिणाम भी इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि संगीत शिक्षा की दोनों पद्धतियों के समन्वय से संगीत शिक्षा और कला के स्तर में सुधार के दोनों आयाम खुल सकेगें।

१० वीं तालिका के अंतर्गत भी पाठ्यक्रम से संबंधित कुछ प्रश्न रखे गये हैं जिनके लिये प्राध्यापकों द्वारा प्राप्त मतों का विश्लेषण इस प्रकार है। ८८ प्रतिशत प्राध्यापक ४० मिनट के प्रत्येक घंटे के निर्धारित समय को देखते हुये पाठ्यक्रम अधिक मानते हैं। ६५ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि पाठ्यक्रम में कमी की जानी आवश्यक है। ६१ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि पाठ्यक्रम में कमी किये जाने पर संगीत-शिक्षा और कला के स्तर में सुधार संभव है। इन परिणामों को देखते हुये ६८ प्रतिशत प्राध्यापकों का यह मत कि वे पाठ्यक्रम पूरा करा पाते हैं कुछ न्यायिक प्रतीत नहीं होता। क्योंकि वे पाठ्यक्रम में अधिकता भी पाते हैं और उसे कम करने के भी पक्ष में हैं। उपरोक्त तथ्यों के प्राप्त परिणामों को देखते हुये पाठ्यक्रम में इन तथ्यों के आधार को लेकर सुधार किये जाने की कड़ी आवश्यकता है तभी संगीत-शिक्षा व कला के स्तर में ठोस सुधार की संभावना हो सकेगी।

ग्यारहवें वर्ग के अंतर्गत समस्या से संबंधित तीन प्रश्न रखे गये हैं उनका प्राध्यापकों के मतों के आधार पर विश्लेषण इस प्रकार है। इस वर्ग की मुख्य समस्या है संगीत संस्था को दी जाने वाली आर्थिक सहायता में कमी। इस संबंध में ८८ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि संगीत जैसे विषय को हमेशा ही आर्थिक सहायता का अभाव रहता है। शत-प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि दूसरे विषयों की भाँति संगीत जैसे विषय को भी पूर्ण आर्थिक सहायता मिलनी चाहिये। ६८ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि दूसरे विषयों की तरह संगीत विषय को भी पूर्ण आर्थिक सहायता मिलने पर संगीत-शिक्षा के स्तर में सुधार की संभावना होगी। अतः विश्लेषण के आधार पर प्रतिशतता को देखते हुये इस समस्या का निदान भी यथाशीघ्र किया जाना आवश्यक है। इससे महाविद्यालयों में वाद्ययंत्रों, पुस्तकालय, उपयुक्त संगीत-शिक्षा-कक्षों, कैसेट लाइब्रेरी आदि की सुविधायें उपलब्ध हो सकेगी जिससे स्वतः ही संगीत-शिक्षा के स्तर में सुधार संभव होगा।

बारहवें वर्ग के अंतर्गत समस्या से संबंधित १५ प्रश्न रखे गये हैं। इस वर्ग की मुख्य समस्या है पर्याप्त शिक्षण सहायताओं के प्रयोग का संगीत-शिक्षा में अभाव। इसके लिये उपरोक्त प्रश्नों का विश्लेषण प्राध्यापकों के मतों के आधार इस प्रकार है। शत-प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि संगीत-शिक्षा के लिये श्रव्य तथा दृश्यात्मक उपकरणों का प्रयोग किया जाना आवश्यक है। शत प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि उनके महाविद्यालय में वीडियो, टेलीविज़न, प्रोजेक्टर फिल्मों जैसे उपकरणों की व्यवस्था संगीत-शिक्षा के लिये नहीं है। ६२ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि वे टेप रेकार्डर द्वारा छात्रों को शास्त्रीय संगीत सुनवाते हैं। शत-प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि संगीत शिक्षा के उच्च स्तर के लिये संगीत-समारोहों, गोष्ठियों, परिसम्वादों, संगीत-श्रवण आदि क्रिया-कलापों का आयोजन समय-समय पर करना लाभदायक होगा। अतः उपयोगिता की दृष्टि से उपरोक्त क्रिया-कलापों की व्यवस्था संगीत शिक्षा में की जाय।

तेरहवें वर्ग के अंतर्गत समस्या से संबंधित बारह प्रश्न रखे गये हैं; उनका प्राध्यापकों के मतों के आधार पर विश्लेषण

इस प्रकार है। अन्वेषणकर्ता की समस्या इस वर्ग में दोषपूर्ण परीक्षा पद्धति से सम्बन्धित है। शत-प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि वर्तमान परीक्षा पद्धति में सुधार की आवश्यकता है तथा न्यायिक कठोरता लाने की भी तीव्र आवश्यकता है। ८३ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि जब तक विद्यार्थी पाठ्यक्रम दक्षतापूर्वक पूर्ण नहीं करता उसे अगली कक्षा में प्रवेश न दिया जाय। ६४ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि परीक्षा में केवल ऐच्छिक रागों को महत्व न दिया जाकर अन्य रागों को भी महत्व दिया जाय। ९६ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि प्रत्येक माह विद्यार्थी की मासिक परीक्षायें क्रियात्मक और शास्त्र की ली जायें तथा इनके अंक वार्षिक परीक्षा में जोड़े जायें ऐसा मत ८८ प्रतिशत प्राध्यापकों का है। शत प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि हर माह विद्यार्थी का मंच-प्रदर्शन अनिवार्य किया जाय। १०० प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि इन सभी गतिविधियों जैसे मंच-प्रदर्शन, समारोहो, गोष्ठियों में विद्यार्थी का भाग लेना अनिवार्य हो तथा इन पर कुछ अंक रखे जायें जो वार्षिक परीक्षा में जोड़े जायें। ८४ प्रतिशत प्राध्यापकों का मत है कि उपरोक्त प्रयत्नों द्वारा संगीत-शिक्षा तथा कला के स्तर में सुधार संभव होगा। इन परिणामों को देखते हुये इन सुधारात्मक उपायों का अपनाया जाना अति आवश्यक है।

संगीत छात्रों हेतु निर्मित प्रश्नावली तथा प्रश्नावली द्वारा प्राप्त दत्त सामग्री का विश्लेषणात्मक अध्ययन —

संगीत छात्रों हेतु निर्मित प्रश्नावली के अंतर्गत कुल पचास प्रश्नों का निर्माण किया गया। इन पचास प्रश्नों का निर्माण भी संगीत शिक्षण के दस वर्गों के आधार पर ही किया। इन दस वर्गों के अंतर्गत संगीत शिक्षण की समस्यायें ही हैं। प्रश्नावली द्वारा प्राप्त परिणामों का विश्लेषणात्मक अध्ययन इस प्रकार रहा।

प्रथम वर्ग की समस्या के अंतर्गत दो प्रश्न रखे गये। इस वर्ग की समस्या विद्यालय स्तर से संगीत का विषय के रूप में न होना। इस संदर्भ में महाविद्यालय के शत-प्रतिशत छात्रों

का मत है कि संगीत शिक्षा विद्यालय के प्रारंभिक स्तर से अनिवार्य की जाय और इस परिवर्तन का लाभ हमें संगीत-शिक्षा और कला के स्तर के सुधार के रूप में प्राप्त होगा। उपरोक्त परिणामों के आधार पर इस दिशा में कुछ ठोस कदम उठाये जाने आवश्यक हैं।

द्वितीय वर्ग के अंतर्गत छात्रों के लिये समस्या से संबंधित छः प्रश्न रखे गये हैं। इस वर्ग की समस्या है संगीत विषय में छात्रों का चुनाव कैसे हो। महाविद्यालयों के ९४ प्रतिशत छात्रों का मत है कि संगीत विषय में प्रवेश के लिये छात्रों का चुनाव उनकी योग्यता और रुचि के आधार पर ही होना चाहिये। उपरोक्त परिणाम के आधार पर इस समस्या का समाधान भी यथासंभव यथाशीघ्र होना चाहिये।

तृतीय वर्ग के अंतर्गत छात्रों के लिये समस्या से संबंधित तीन प्रश्न रखे गये हैं। इस वर्ग की समस्या है महाविद्यालयों में संगीत शिक्षण के लिये उपयुक्त स्थान का अभाव इस वर्ग के परिणामों के आधार पर प्राप्त विश्लेषण यह है। १०० प्रतिशत छात्रों का मत है कि संगीत शिक्षा के लिये उपयुक्त स्थान होना आवश्यक है। ४६ प्रतिशत छात्रों का मत है कि महाविद्यालयों में उपयुक्त स्थान की व्यवस्था नहीं है। उपरोक्त परिणामों को देखते हुये जहाँ संगीत शिक्षण के लिये उपयुक्त स्थान की व्यवस्था नहीं है की जाय।

चौथे वर्ग के अंतर्गत छात्रों के लिये समस्या से संबंधित छः प्रश्न रखे गये हैं। महाविद्यालयों में संगीत शिक्षण के लिये प्रत्येक घंटे के लिये जो समय-सीमा निर्धारित की गयी है कम है यह चौथे वर्ग की समस्या है। शत-प्रतिशत छात्रों का मत है कि विज्ञान और अन्य तकनीकी महाविद्यालयों की भाँति संगीत महाविद्यालयों का समय भी छः घंटे होना चाहिये। ६२ प्रतिशत छात्रों का मत है कि इस विषय को पढ़ाने के लिये क्रियात्मक के प्रत्येक घंटे का समय ८० मिनट होना आवश्यक है। ८५ प्रतिशत छात्रों का मत है कि ताल और स्वर पक्ष की सुदृढ़ता के लिये इनके अभ्यास के लिये अलग घंटों की व्यवस्था आवश्यक है। ६८ प्रतिशत छात्र

चाहते हैं कि संगीत कला की अलग-अलग विधाओं की शिक्षा के लिये अलग-अलग घंटों की व्यवस्था होना आवश्यक है; इस संबंध में ९० प्रतिशत विद्यार्थियों का मत है कि उनके महाविद्यालय में इस प्रकार की कोई व्यवस्था नहीं है। उपरोक्त विश्लेषण तथा छात्रों के मतों की प्रतिशतता के आधार पर महाविद्यालयीन संगीत-शिक्षा के समय और अन्य मुद्दों पर परिवर्तन होना आवश्यक है। इस परिवर्तन का परिणाम अत्यधिक फलप्रद सिद्ध होगा कला के उच्च स्तर के निर्माण में।

पांचवें वर्ग की समस्या के अंतर्गत छात्रों के लिये प्रश्नावली में चार प्रश्न रखे गये हैं। इस वर्ग के अंतर्गत संगीत-कक्षाओं में छात्रों की अधिकता से उत्पन्न समस्या को रखा गया है। इस प्रश्नावली का विश्लेषण इस प्रकार है — ९२ प्रतिशत छात्रों का मत है कि विश्वविद्यालयीन संगीत शिक्षण में कला के उच्च स्तर के लिये छात्रों की संख्या का कक्षा में कम होना आवश्यक है। ६८ प्रतिशत छात्रों का मत है कि एक संगीत कक्ष में पाँच अथवा छः विद्यार्थियों से अधिक नहीं होने चाहिये। ५२ प्रतिशत छात्र मानते हैं कि उनके महाविद्यालय में कक्षा में छात्रों की संख्या अधिक होती है। ९८ प्रतिशत विद्यार्थियों का मत है कि संगीत कक्षाओं में छात्रों की संख्या अधिक होने पर अधिक संगीत वर्गों की व्यवस्था द्वारा प्रत्येक कक्षा में उनकी संख्या कम की जानी चाहिये। उपरोक्त प्राप्त विश्लेषण के आधार इन समस्याओं का हल भी शीघ्र किया जाना आवश्यक है।

छठवें वर्ग में समस्या से संबंधित चार प्रश्न हैं। इस वर्ग में महाविद्यालय में पायी जाने वाली वाद्य-यंत्रों की समस्या को रखा गया है। ६५ प्रतिशत छात्रों का मत है कि महाविद्यालय में वाद्य-यंत्रों की कमी रहती है। इस प्रतिशतता के आधार पर समस्या का समाधान शीघ्र किया जाना चाहिये।

सातवें वर्ग की समस्या के आधार पर छात्रों के लिये प्रश्नावली में चार प्रश्न रखे गये हैं। इस वर्ग के अंतर्गत प्रशिक्षित प्राध्यापकों तथा तबला वादकों की समस्या को रखा गया है। 61 प्रतिशत छात्रों का मत है कि प्राध्यापकों का प्रशिक्षित होना

आवश्यक है। ८३ प्रतिशत छात्रों का मत है कि संगीत प्राध्यापक को संगीत के उभय पक्ष में दक्ष होना चाहिये। ६४ प्रतिशत छात्रों का मत है कि महाविधालय में तबला वादकों का अभाव रहता है। ९० प्रतिशत छात्रों का मत है कि संगत के लिये प्रत्येक कक्ष में अलग-अलग तबला-वादकों की व्यवस्था आवश्यक है। छात्रों के मतों की प्रतिशतता के आधार पर इन समस्याओं का समाधान शीघ्र किये जाने की आवश्यकता है।

आठवें वर्ग के लिये समस्या से संबंधित चार प्रश्नों का निर्माण किया गया है। इस वर्ग में पाठ्यक्रम की अधिकता से संबंधित प्रश्न रखे गये हैं। ८९ प्रतिशत छात्रों का मत है कि संगीत के दोनों पक्ष शास्त्र और क्रिया एक दूसरे पर आधारित हैं। ६४ प्रतिशत विधार्थियों का मत है कि संगीत शिक्षा में संगीत के उभय पक्षों को समान महत्व मिलना चाहिये। ९६ प्रतिशत छात्रों का मत है कि ४० मि. के घंटे (पीरियड) को ध्यान में रखते हुये पाठ्यक्रम में अधिकता पाई जाती है। ८३ प्रतिशत छात्रों का मत है कि पाठ्यक्रम में कमी की जानी आवश्यक है। उपरोक्त परिणामों के विश्लेषण के आधार पर पाठ्यक्रम में सुधार किया जाना भी अत्यधिक आवश्यक है।

नवें वर्ग में छात्रों के लिये समस्या पर आधारित ९ प्रश्न रखे गये हैं। इस वर्ग में संगीत-शिक्षण में शिक्षण सहायताओं के उपयोग के अभाव की समस्या को लिया गया है। इस संबंध में छात्रों के मतों के आधार पर प्राप्त विश्लेषण इस प्रकार है। शत-प्रतिशत छात्रों का मत है कि संगीत-शिक्षण के लिये श्रव्य-दृश्यात्मक उपकरणों का प्रयोग किया जाना आवश्यक है। ९३ प्रतिशत छात्रों का मत है कि उनके महाविधालय में इनकी व्यवस्था नहीं है। शत-प्रतिशत छात्रों का मत है कि वे वीडियो या टेलीविज़न का उपयोग अपनी संगीत शिक्षा के लिये नहीं करते। ८४ प्रतिशत छात्रों का मत है कि वे टेपरेकार्डर और रेडियो पर शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रम सुनते हैं। १२ प्रतिशत छात्रों का मत है कि वे रेकार्ड-प्लेयर का प्रयोग शास्त्रीय संगीत सुनने के लिये करते हैं। ४२ प्रतिशत छात्रों का मत है कि उनके महाविधालय में संगीत गोष्ठी

तथा परिसम्वादों का आयोजन होता है। प्रतिशत छात्रों का मत है कि महाविद्यालय में संगीत गोष्ठी तथा परिसम्वादों का आयोजन किया जाना आवश्यक है।उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर संगीत-शिक्षण में शिक्षण सहायताओं का प्रयोग किया जाना आवश्यक है।

दसवें वर्ग में छात्रों के लिये समस्या पर आधारित आठ प्रश्न रखे गये हैं।इस वर्ग में संगीत-शिक्षा के क्षेत्र में परीक्षा-पद्धति में उत्पन्न दोषों की समस्या ली गयी है। ८० प्रतिशत छात्रों का मत है कि वर्तमान परीक्षा पद्धति में न्यायिक कठोरता लानी आवश्यक है। ५२ प्रतिशत छात्रों का मत है कि जब तक पाठ्यक्रम दृढ़तापूर्वक पूर्ण नहीं होता छात्रों को अगली कक्षा में प्रवेश न दिया जाय। ७१ प्रतिशत छात्रों का मत है कि मासिक परीक्षा अनिवार्य हो और वार्षिक परीक्षा में उसके अंक जोड़े जायें। ५८ प्रतिशत छात्र ऐच्छिक राग के साथ परीक्षा में अन्य रागों को भी महत्व देने के पक्ष में हैं। ५० प्रतिशत विद्यार्थी हर माह शिक्षार्थी का मंच प्रदर्शन अनिवार्य करने के पक्ष में हैं।उपरोक्त परिणामों के आधार पर यह धारणा गलत सिद्ध होती है कि आज का विद्यार्थी बिना परिश्रम के केवल डिग्री हस्तगत करना चाहता है। छात्रों के मतों की प्रतिशतता के मूल्यों के महत्व को देखते हुये आवश्यक है कि परीक्षा-पद्धति के दोषों के निराकरण के लिये सुधारात्मक उपायों को शीघ्र अपनाया जाय।

प्राध्यापकों तथा छात्रों के द्वारा प्राप्त मतों के विश्लेषण तथा संगीत-जगत के प्रसिद्ध विद्वज्जनों के मतों के आधार पर हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि संस्थागत-संगीत-शिक्षा-पद्धति के दोषों के निराकरण अर्थात् संस्थागत-शिक्षा-पद्धति तथा गुरुकुल-शिक्षा-पद्धति के गुणों के समन्वय द्वारा आज भी यह शिक्षा पद्धति हमारे लिये उपयोगी तथा लाभप्रद सिद्ध होगी।इन दोनों पद्धतियों के गुणों पर आधारित शिक्षा पद्धति कैसी होगी यह शोध का एक विस्तृत विषय है; परंतु फिर भी विद्वज्जनों के परामर्श तथा स्वयं की कल्पना के आधार पर यह शिक्षा पद्धति किन गुणों से पूर्ण हो सकती है इसका खाका खींचने का प्रयास शोधकर्ती ने किया है।

(१) विद्यालय के प्रारंभिक स्तर से संगीत अनिवार्य हो -

किसी भी विद्या, कला अथवा शास्त्र का अध्ययन करना हो तो राष्ट्र के शिक्षा पाठ्यक्रम में उस विषय के स्थान को प्रगतिशील बनाने का कार्य और कोई नहीं वरन् राष्ट्र के छात्र ही करते हैं। छात्र के विद्यालयीन जीवन में जिस विद्या अथवा कला में अभिरुचि निर्माण होगी, महत्ता महसूस होगी उसके संबंध में अपनी प्रगत और सूक्ष्म बुद्धि से अविरल विचार करने की लालसा उसमें निर्माण होगी; ऐसे अविरल विचार से चाहे तो उसे एक तरह का पागलपन ही क्यों न कहें नये - नये सिद्धांतों एवं अन्वेषणों का जन्म होता है। विद्यार्थी दशा में जिस कला - साधना में अभिरुचि हो उस संबंध में खोज लगाने में, उस कला - साधना के लिये अपना जीवन समर्पित करने की इच्छा भविष्य के जीवन में पैदा हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। संस्कारक्षम आयु में इस कला की शिक्षा देना आवश्यक है। संस्कारिता व्यक्ति की क्षमता तथा मार्गदर्शन के आधार पर अच्छी प्रगति की संभावना हो सकती है। इसलिये शालेय पाठ्यक्रम में विषयों का समावेश करते हुये अपने राष्ट्र की सभ्यता तथा उसके लिये उपयुक्त कलाओं का अंतर्भाव शिक्षा में किया जाना आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त संसार के प्रसिद्ध शिक्षा - शास्त्रियों तथा विद्वानों ने संगीत कला की साधना से मानव के जीवन में होने वाले निम्नलिखित लाभों से परिचित होने के कारण इस कला की साधना पर विशेष बल दिया है।

विद्वान लूथर के शब्दों में -

"संगीत मनुष्य को दयालु, नीतिशील और बुद्धिमान बनाता है, जो मनुष्य के कष्टों को दूरकर, उन्हें शांति पहुंचाता है। संगीत खुदा की दी हुई कला है।"१

---

१ संगीत, १९५५ जून, सितंबर, पृ.४

प्रेमचंद — "मनोव्यथा जब असहाय और अपार हो जाती है, जब उसे कहीं त्राण नहीं मिलता, जब वह रुदन और क्रंदन की गोद में भी आश्रय नहीं पाती, तो वह संगीत के चरणों में जा गिरती है।"[1]

रस्किन - "अंतरात्मा का उत्थान व उसे कलात्मक और आनंदमय स्वरूप प्रदान करना ही संगीत कला का मुख्य ध्येय होना चाहिये।"[2]

कविवर रवीन्द्रनाथ — "संगीत स्वर्गिक सौन्दर्य का साकार रूप और सजीव प्रदर्शन है।"[3]

लैंडन - "संगीत तो विश्व भाषा है। जहाँ वाणी मूक हो जाती है, वहाँ संगीत फूट पड़ता है। संगीत हमारी नैसर्गिक भावाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम है। शब्दों में जिनकी प्रखरता व गहराई समा नहीं सकती हमारी ऐसी इच्छाओं को संगीत स्वर का रूप देता है।"[4]

डा. सम्पूर्णानन्द — "Music art and Literature lead a man or person from the lower level of physical existence to a higher spiritual plane and in this way helped in selfpurification."[5]

डॉ. राजेन्द्रप्रसाद के अनुसार — "जीवन में संगीत का क्या स्थान है और क्या होना चाहिये; इसके बारे में कुछ कहना मेरे लिये अनावश्यक है क्योंकि कम से कम हमारे देश में, संगीत के महत्व को सभी जानते हैं और दूसरे, मेरा यह निश्चित मत है कि भौतिक और आध्यात्मिक दोनों ही दृष्टियों से संगीत मनुष्य के लिये साधना का विषय है। भौतिक जीवन में संगीत मनोरंजन का उतना ही बड़ा साधना है जितना यह आध्यात्मिक जीवन में प्रेरणा का स्त्रोत है। आज ही नहीं, सदियों से हमारे देश में संगीत

---

१ संगीत १९६३, अगस्त, पृ. ११
२ वही " " , पृ. १२
३ " " " , पृ. १२
४ वही " " , पृ. १३
५ वही " " , पृ. १३

और भगवत-भक्ति में घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। इसलिये मैं समझता हूँ संगीत में जो प्रभाव और शक्ति है उसका उपयोग मानव के कल्याण के लिये होना चाहिये।

संगीत आदि कलायें संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग हैं। वास्तव में हमारी संस्कृति में एकीकरण की जो विशेष क्षमता है वह उसे इन कलाओं से प्राप्त हुई है। इसलिये संगीत और दूसरी कलाओं को प्रोत्साहन देना भारतीय संस्कृति को उन्नत करने के समान माना जाता है।"[1]

महात्मा गांधी — "संगीत का अर्थ है संगति और व्यवस्था; दुर्भाग्य से भारत में संगीत कुछ ही लोगों की वस्तु बनकर रह गया है। इसका कभी राष्ट्रीयकरण नहीं किया गया। राष्ट्र-गान के साथ विधिवत् गायन को मैं अनिवार्य कर दूँगा। विशाल जन समूह बुद्धि अथवा विचार से कार्य नहीं करते और उन्हें किसी मार्ग पर चलाने अथवा शिक्षा देने का संगीत से सरल कोई माध्यम नहीं है।"[2]

अतः मानव जीवन के लिये कल्याणकारी संगीत कला के महत्व के विषय में सोचते हुये उसे विद्यालय के प्रारंभिक स्तर से अनिवार्य किया जाना चाहिये। इसके पक्ष में -- प्रतिशत प्राध्यापकों तथा प्रतिशत छात्रों के मत प्रश्नावली के परिणामों से प्राप्त हुये हैं। इसके अतिरिक्त संगीत जगत के प्रसिद्ध विद्वानों के भी मत इसी तथ्य के प्रति हैं —

महात्मा गांधी — "संगीत प्रारंभिक पाठशालाओं के पाठ्यक्रम में सम्मिलित होना चाहिये, इसका मैं समर्थन करता हूँ।"[3]

श्री वामनहरी देशपांडे — "६ से १०-१२ वर्ष उम्र के बालक के कानों पर स्कूलों में जो संगीत आ जायेगा उससे वे संस्कारक्षम बन जायेंगे। पाठशाला शुरू होने के पहले, दीर्घावकाश में, छुट्टी के समय अच्छा सुरीला संगीत उनके कानों पर आ जायेगा तो स्वर, ताल, लय आदि का अनुभव और संगीत का आकर्षण निर्माण होगा।

१ संगीत, अक्टूबर १९८२, मार्च, पृ.२

२ सं. क. वि. १९६४, अक्टूबर, जुलाई, पृ. १४

पाठशाला में लाऊड़स्पीकरों के द्वारा यह बात हो सकती है।"१
डॉ. सितांशुराय – "संगीत की शिक्षा, शिक्षा के प्रारंभिक स्तर से प्रारंभ होनी चाहिये।"२
श्रीमती सुमति मुटाटकर – "के.जी. स्तर से संगीत कक्षा के स्तर के अनुरूप अनिवार्य रूप से सिखाया जाय। इससे विद्यार्थियों के संस्कार बनने में सहायता प्राप्त होगी।"३
डा. प्रभा अत्रे – "संगीत की शिक्षा के.जी. स्तर से प्रारंभ होकर 'पी. एच. डी.' स्तर तक निरंतर जारी रहनी चाहिये। विभिन्न स्तरों की इस शिक्षा में एक प्रकार का समन्वय रहना चाहिये। एस. एस. सी. तक पहुँचने तक छात्र को इस विधा का अच्छा ज्ञान हो सकेगा इसके पश्चात् वह विशेषज्ञता हेतु चयन करने में सक्षम होगा।"४
डा. गीता बनर्जी – "ने संगीत की स्तरीय शिक्षा के लिये सरकार के सहयोग व प्रारंभिक शिक्षा में संगीत को शामिल किये जाने पर ज़ोर दिया है।"५

उपरोक्त मतों के आधार पर यह दो राय की बात नहीं रह जाती कि विद्यालय के प्रारंभिक स्तर से संगीत की अनिवार्यता की जाय या नहीं? बालकों में नैसर्गिक ही संगीत प्रेम होता है। अतः विद्यालय के प्रारंभिक स्तर से ही संगीत शिक्षा आरंभ की जानी चाहिये। उनकी इस प्राकृतिक प्रवृत्ति को सुचारु रूप से विकसित करना चाहिये। बालकों के संगीत प्रेम को हम इस बात से जान सकते हैं कि जब कोई मधुर ध्वनि होती है तो उस ध्वनि को खोजने के लिये बालक अपने चारों ओर देखता है। रोते हुये बालक को लोरी गाकर सुलाने की कला सभी जानते हैं। माता जब बालक को लोरी गाकर सुनाती है तब बालक उस धुन को हृदयंगम करता हुआ सो जाता है।

---

१ सं. क. वि., १९७४ अक्टूबर, पृ. ४०९
२ सं. क. वि., १९८१ नवम्बर, पृ. ४३२
३ संगीत, १९८६ जनवरी, पृ. १८२
४ संगीत, १९८६ जनवरी, पृ. १८२
५ संगीत, १९८६ अप्रैल, पृ. ४९

इस दृष्टि से बालक की संगीत में रुचि उत्पन्न करने का कार्य सर्वप्रथम माता ही कर सकती है। वस्तुतः सुन्दर संगीत का आनंद प्राप्त करना जीवन का एक सुखद अनुभव है।

आश्चर्य की बात है कि आज छोटे-छोटे बच्चे गीतों की धुन का सही-सही अनुकरण कर लेते हैं। यह और भी आश्चर्य की बात है कि चाहे वे शब्दों का उच्चारण सही ढंग से नहीं कर सकते हों किन्तु उस धुन की बखूबी नकल करते हैं; इस स्तर पर यदि उन्हें थोड़ा सा भी उचित निर्देशन प्राप्त हो जाय तो उन्हें संगीत से चिरस्थाई प्रेम हो सकता है।

अतएव संगीत शिक्षा विद्यालय के प्राथमिक स्तर से प्रारंभ की जानी चाहिये। इस समय बच्चों को उनकी मातृभाषा के शब्द लेकर हल्की धुनें सिखानी चाहिये। इस समय बच्चों की संगीत शिक्षा खेल पद्धति पर आधारित हो। सम्पूर्ण राग की अपेक्षा औड़व राग की धुनें सीखने में उन्हें आसानी होती है। इस समय संगीत शिक्षा शास्त्रीय संगीत की न होकर शिक्षा के माध्यम के रूप में हो। क्योंकि शुद्ध शास्त्रीय संगीत के जटिल स्वरूप को बालक ग्रहण न कर सकेंगे। उदाहरणतया बच्चों को यदि राम धुन सिखाई जाय तो उनमें स्वाभाविकतया जिज्ञासा का भाव होगा कि इसे कौन गाते थे और वह कौन थे, तब उन्हें बताया जा सकता है कि इस गीत को महात्मा गांधी गाते थे। इसी प्रकार गांधीजी के बारे में उत्पन्न हुई जिज्ञासा को गांधी जी के जीवन पर गीत बनाकर सिखाने से दूर किया जाय, बच्चे बड़े प्रेम से उसे सीखेंगे तथा सदैव याद भी रखेंगे। इसी प्रकार बड़े-बड़े महापुरुषों की जीवनी से बालकों को अवगत कराना चाहिये। गीत राग व ताल आधारित हो सकते हैं। संगीत के सात स्वरों से सप्तक व सप्ताह का ज्ञान कराया जा सकता है। इस समय शास्त्रीय संगीत के रूप में उन्हें सा, रे, गा, मा, पा, धा, नी, सां स्वरों की जानकारी करा देना भर काफी है। प्रारंभिक पारिभाषिक शब्दों की जानकारी दी जा सकती है इसी प्रकार छोटी-छोटी तालों को भी सिखाया जाना चाहिये। बालकों की संगीत शिक्षा में निम्नलिखित बातों का ध्यान

रखा जाना आवश्यक है –
(1) गीतों का चुनाव
(2) मातृभाषा का होना
(3) रुचि का विषय होना
(4) रुचि पूर्ण साहित्य

बालकों की रुचि खेल में बहुत अधिक होती है इसलिये यदि खेलों के माध्यम से संगीत शिक्षा दी जाय तो अधिक उपयुक्त होगा। उदाहरण के लिये यदि विभिन्न अलंकारों का रियाज़ कराना है तो ऐसा किया जा सकता है कि सात विद्यार्थियों को चुन लिया जाये और उन्हें सारेगमपधनीसां बना दिया जाय और खेल-खेल में ही उन्हें सारे अलंकार सिखाये जायें। इसी प्रकार और भी प्रयोग किये जा सकते हैं। इस आयु में उन्हें अच्छे रेकार्ड सुनवाये जायें। रेकार्ड सुनवाने का कार्य उनके व्यायाम करते हुये, खेलते हुये या अल्प अवकाश के वक्त भी किया जा सकता है।

चौथी, पांचवी कक्षा तक उन्हें स्वर ज्ञान कराया जाना शुरू कर देना चाहिये। इस समय सिखाते वक्त तानपूरे का प्रयोग न करके हारमोनियम का प्रयोग किया जाय तो बालक शीघ्र स्वर का उतार-चढ़ाव समझने योग्य बन जायेगा। इस समय उन्हें स्वर का उतार चढ़ाव सिखाते वक्त तीनों सप्तकों के प्रयोग तथा महत्व के बारे में जानकारी देनी चाहिये।

प्राथमिक विद्यालय में संगीत कक्ष में बड़े-बड़े संगीतज्ञों के चित्रों, प्रचलित वाद्यों के चित्रों, एवं विभिन्न रेकार्डों का संग्रह होना चाहिये। उन्हें रेकार्डों को सुनवाकर अच्छे बुरे संगीत का अंतर करना सिखाना चाहिये। इसके लिये बालउपयोगी रेकार्डों या कैसटों का निर्माण किया जाना होगा तभी यह संभव हो सकेगा। इस समय बालकों का परिचय गीत के चार प्रकार के भेदों से कराया जाना चाहिये; शुद्ध शास्त्रीय संगीत से उन्हें दूर ही रखा जाना चाहिये। ये गीत प्रकार ये हो सकते हैं –
1 क्रियात्मक गीत 2 लोक गीत 3 राष्ट्रीय गीत 4 भजन

इन गीतों के अतिरिक्त शास्त्रीय संगीत

के छोटे-छोटे ख्याल मात्र सुनवाये जा सकते हैं। उन्हें जो गीत सिखाये जायें वह किसी सरल राग में होना चाहिये। इसके बाद वह राग सुनवाना चाहिये जिससे वे स्वरों की समानता देखकर राग पहचानने की चेष्टा खुद कर सकें। गीत के साथ-साथ बालकों को नृत्य की शिक्षा भी दी जा सकती है। क्योंकि बालक नकल शीघ्र करते हैं इससे नृत्य के माध्यम से उन्हें ताल का ज्ञान आसानी से कराया जा सकता है। वाद्य संगीत, संगीत से परिचय होने के बाद जहाँ से विद्यार्थी ऐच्छिक संगीत शिक्षा शुरू करेगा वहाँ से ले सकता है। स्वर-ज्ञान व ताल-ज्ञान होने के कारण वाद्य की बजाने की तकनीक से विद्यार्थी आसानी से वाद्य-यंत्र बजाने में सफल होगा। प्रायमरी कक्षा के विद्यार्थी को संगीत का परिचय हो जाय बस यही प्रयत्न शिक्षक का होना चाहिये।

माध्यमिक कक्षाओं में संगीत —

इस स्तर पर आकर सही अर्थ में स्वर-ताल और राग की शिक्षा सुचारु रूप से प्रारंभ की जानी चाहिये। यहाँ संगीत पर लगाये गये भिन्न आकर्षण कम कर दिये जाने चाहियें एवं उन्हें प्रत्यक्ष शिक्षा देनी चाहिये। परंतु संगीत में लय और ताल तथा साहित्य का अभाव नहीं होना चाहिये। इस स्तर पर आगे किस प्रकार की शिक्षा मिलने वाली है इसका परिचय विद्यार्थी को कराया जाना चाहिये। इन कक्षाओं में संगीत एक विषय के रूप में रखा जाना चाहिये; तथा इसके क्रियात्मक पक्ष को मजबूत करना एक ध्येय होना चाहिये। साथ ही विद्यार्थी की संगीत में रुचि बनी रहे इस दृष्टि से सुंदर धुनों में बद्ध भजन, गीत, गज़ल आदि गीत प्रकार सिखाये जाने चाहियें। शास्त्रीय संगीत के शिक्षण के समय भी इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये कि उसमें साहित्य और भाव का सुंदर समन्वय हो। इस स्तर पर मातृभाषा का प्रयोग अधिक उपयुक्त होगा, साथ ही साथ ब्रजभाषा और हिन्दी का भी प्रयोग करते रहना चाहिये। इस स्तर पर भी पल्टे, सरगम आदि का खूब रियाज़ करवाना चाहिये। विभिन्न लयकारियाँ भी सिखानी चाहियें जैसे दुगुन चौगुन आदि। इस स्तर से ध्रुपद की शिक्षा भी

भी दी जानी चाहिये। ध्रुपद गायकी में राग की शुद्धता एवं लयकारी संगीत के दोनों ही मुख्य तत्व आ जाते हैं। तबले पर चौताल, त्रिताल, दादरा, केहरवा तालों को पहचानना और साथ ही हाँथ से ताली लगाने का अभ्यास भी करवाना चाहिये। इस स्तर से बड़े-ख्याल सिखाने भी आरंभ किये जाने चाहिये। इस स्तर से पूरा राग व्यवस्थित ढंग से सिखाया जाना चाहिये। संगीत-शिक्षा से विद्यार्थी में मौलिक गुणों की वृद्धि हो इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिये। इन तीन सालों में १० राग रखे जाने चाहिये परंतु ये राग ऐसे होने चाहिये जिसे बालक आसानी से ग्रहण कर ले। कुछ रागों में छोटे ख्याल कुछ में ध्रुपद और कुछ कठिन रागों में सरगम सिखानी चाहिये। किस राग में क्या सिखाया जाय यह शिक्षक पर छोड़ देना चाहिये। इस समय तानों का रियाज़ विद्यार्थी से करवाना चाहिये जिससे विद्यार्थी आगे की शिक्षा ग्रहण करने के लिये सक्षम हो जाय।

उच्च स्तरीय विद्यालयीन शिक्षा –

नवीं कक्षा से संगीत अनिवार्य विषय न रखकर ऐच्छिक विषय के रूप में रखा जाना चाहिये। कौन विद्यार्थी संगीत विषय लेने की योग्यता रखता है इसके चुनाव का कार्य अध्यापक को मिलना चाहिये। इस स्तर पर १० पिछले रागों के अतिरिक्त ५ ही नये राग और रखे जाने चाहिये इस तरह कुल १५ राग ही हों। इस समय पाठ्यक्रम में विलम्बित ख्याल तथा ध्रुपद के साथ धमार भी रखा जाय। जिन रागों में पहले द्रुत ख्याल सिखाये हों उन्हीं में विलम्बित ख्याल सिखाये जायें तथा राग की विस्तृत गायकी से विद्यार्थी का परिचय कराया जाय। चूंकि पाठ्यक्रम विकासोन्मुख होना चाहिये इसलिये यहाँ पर इस स्तर से संगीत कार्यक्रमों तथा यदि कहीं संगीत सम्मेलन हो तो वह भी सुनवाना चाहिये। इस स्तर से संगीत के तीन विभाग, गायन, वादन, नृत्य पृथक कर दिये जाने चाहिये। इस स्तर से लयकारियों में तिगुन का प्रयोग अवश्य किया जाना चाहिये। कई अन्य उपयोगी तालों का ज्ञान भी कराना चाहिये जैसे तीव्रा, धमार, रूपक, एकताल, झपताल आदि। इस

इस स्तर पर मंचप्रदर्शन का महत्व दर्शा कर विद्यार्थियों का ध्यान रियाज़ की ओर केन्द्रित करना चाहिये। जहाँ तक हो इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि क्रियात्मक कक्षा सुबह की पारी में हो तो ज्यादा अच्छा है। इसके लिये सप्ताह में कुल ९ घंटे (पीरियड) रखे जाने चाहिये जिसमें से छः क्रियात्मक के दो शास्त्र के एक मंच प्रदर्शन का होना चाहिये। ९ से १० कक्षाओं में १०+२ की शिक्षा पद्धति के आधार पर कम समय विद्यार्थियों को देना होगा क्योंकि इन कक्षाओं में उन्हें अन्य विषयों का अध्ययन भी करना पड़ता है। ११वीं तथा बारवीं कक्षाओं से विद्यार्थी पूर्ण रूप से ऐच्छिक विषय के रूप में संगीत ले सकता है और अध्ययन के लिये कुछ थोड़े ही विषय रह जाते हैं। अतः इस वर्ग में आते-आते केवल वे ही बच्चे रह जाते हैं, जिन्हें एक तो अच्छे अंक प्राप्ति की इच्छा रहती है, दूसरे वे जो वास्तव में इस विषय में रुचि रखते हैं। चूँकि यह वर्ग पूर्व वर्ग से उच्च स्तर का है, इसलिये स्वरों के ज्ञान के साथ-साथ इसमें स्वरों के लगाव का अंदाज सिखाना चाहिये जिनमें कण, मींड़, गमक आदि का प्रयोग होता है। भारतीय संगीत की गायन शैलियाँ अपने में बड़ी वैज्ञानिक और संगीत के सही अभ्यास के लिये सिद्ध साधन हैं, यदि इनका क्रमानुसार अभ्यास कराया जाय। इसके अतिरिक्त जो लोग शौकिया संगीत सीखना चाहते हैं उन्हें प्रबुद्ध श्रोता बनाने के लिये अलग से कोर्स रखे जायें परंतु इसके बाद यदि ऐसे संगीत छात्र व्यावसायिक क्षेत्र में आने लगें तो उन्हें प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिये। इस विधि से संगीत शिक्षा द्वारा बच्चों की संगीतात्मक कल्पना शक्ति तथा सृजनशक्ति क्रमशः विकसित होने लगती है। इस स्थिति में बच्चे स्वयं छोटी-छोटी तानों तथा आलाप की बढ़त करने का प्रयत्न करने लगेंगे। इस अभ्यासक्रम में संगीत शिक्षक की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। अतः आलाप और तानों को सिद्ध करने के लिये अलंकारों का अभ्यास कराया जाय फिर तानों का अभ्यास करवाया जाय। तानों तथा आलाप का अभ्यास समझाकर किया जाय ताकि बच्चे मिलते जुलते रागों की तानों तथा आलापों को सही ढंग से गा-बजा सकें और उनके भेद को समझ सकें। इसी समय से

गायन के लिये विद्यार्थी को तानपूरे की जानकारी देना आवश्यक है। इस प्रकार कक्षा ९ से १२ तक के चार वर्षों शास्त्रीय संगीत की नींव आसानी से बनाई जा सकती है और आगे उच्च स्तरीय गायकी के लिये मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है। बशर्ते कि यह अभ्यासक्रम पूर्ण निष्ठा से सम्पन्न हो। यद्यपि विद्यालयीन शिक्षा किस प्रकार की हो इसकी यह एक सामान्य सी रूप रेखा है; यह तो शोध के लिये एक विषय हो सकता है। और इस विषय से अनेक अन्य शाखायें उत्पन्न होकर शोध सामग्री का विषय बन सकती हैं। उपरोक्त व्यवस्था से हमारे सम्मुख आज जो समस्या है कि महाविद्यालय से विद्यार्थी संगीत का क, ख, ग सीखते हैं इसका अंत हो जायेगा।

२ छात्रों का चुनाव –

किसी भी संस्थागत-शिक्षा-पद्धति का प्रारंभ संस्था में विद्यार्थियों के प्रवेश से होता है। संगीत शिक्षण संस्थाओं में संगीत शिक्षण प्राप्त करने की पात्रता रखने वाले विद्यार्थी को ही प्रवेश दिया जाना चाहिये। संस्थागत-शिक्षा-पद्धति के संस्थापक विष्णुद्वय ने प्रारंभ में ही इस चयन प्रणाली का कड़ाई से पालन करने का प्रावधान रखा था। आचार्य रामचंद्र माधव अग्निहोत्री लिखते हैं – "पं. भातखण्डे जी ने छात्र की जाँच इस प्रकार की; उनके पास एक सप्तस्वरी सीटी थी उसे बजाकर उसकी आवाज़ में आवाज़ मिलाने के लिये वे कहते थे। जो छात्र उससे आवाज़ मिला लेते थे, उनकी अन्य बौद्धिक जाँच कराने के पश्चात उन्हें प्रवेश दिया गया। इस प्रकार पहला समूह लेकर संगीत स्कूल का कार्य स्वयं उन्होंने प्रारंभ किया।" परंतु आज इस जाँच परीक्षा का कोई महत्व नहीं है। विभिन्न विश्वविद्यालयों के अधिकांश संगीत विभागों में, जहाँ संगीत बी. ए. के पाठ्यक्रम के एक विषय के रूप में रखा जाता है इस सम्बन्ध में सबसे अधिक लापरवाही बरती जाती है। यद्यपि यह अपेक्षा की जाती है कि स्तर के अनुरूप बी. ए. में संगीत उन्हीं विद्यार्थियों को लेने दिया जायेगा जिन्होंने हाईस्कूल, इन्टरमीडियेट तथा हायर सेकेन्डरी शिक्षा के तीन या चार वर्षों में

संगीत विषय लेकर उसका पूर्वअभ्यास किया हो। परंतु विद्यार्थियों के अनुपलब्ध होने के कारण संगीत-विभाग चलाने की मजबूरी में ऐसे विद्यार्थियों को भी प्रवेश दे दिया जाता है, जिन्होंने बी.ए. में प्रवेश लेने के पूर्व संगीत का कोई शिक्षण प्राप्त नहीं किया तथा जिनकी आवाज़ स्वर परिवर्तन के कारण सीखने योग्य नहीं रही। इससे बी.ए. के पाठ्यक्रम का स्तर बुरी तरह से गिर जाता है।

अधिकांश संगीत संस्थाओं में पर्याप्त शिक्षकों के अभाव में किसी एक कक्षा में बालकों, युवकों, वृद्धों, स्त्री-पुरुषों को एक साथ सीखते देखा जा सकता है। इससे सभी आयु वर्गों की हानि होती है। इन सबके आधार स्वर में भिन्नता तथा ग्रहणशीलता में भिन्नता होने के कारण शिक्षण की जटिल समस्यायें उत्पन्न होती हैं।

संगीत-क्षेत्र के प्रबुद्ध वर्ग की मान्यता है कि बिना योग्यता परीक्षण के संगीत संस्थाओं में विद्यार्थी को प्रवेश न दिया जाय। प्रश्नावली प्रविधि द्वारा संगीत प्राध्यापकों तथा छात्रों के लिये लिये गये मत भी शत-प्रतिशत यही हैं कि छात्रों को संगीत कक्षाओं में योग्यता परीक्षण के बाद ही प्रवेश दिया जाय। इससे संगीत कला के स्तर में सुधार की बड़ी आशा की जा सकती है। परंतु अभी तक हमारे देश में दोष रहित व सर्वमान्य योग्यता परीक्षण विधि का विकास नहीं हो सका है, जिसके व्यवहार द्वारा निश्चित रूप से किसी विद्यार्थी की योग्यता तथा सांगीतिक पात्रता को परखा जा सके।

संगीत सीखने के लिये किसी विद्यार्थी की पात्रता उसके कंठ के सुरीलेपन, वाद्यानुकूल हाथ के लचीलेपन अथवा नृत्यानुकूल सुंदर व सुगठित लचीले शरीर, ध्वनियों की उच्च नीचता की पहिचान लय व गति की समझ, स्मरण शक्ति तथा सांगीतिक रुचि की परख की जाती है और कभी-कभी नहीं भी। अधिकांश संगीत संस्थायें व्यावसायिक दृष्टिकोण से चलाई जाती हैं, उनका शासकीय अनुदान विद्यार्थियों की संख्या पर निर्भर करता है अतः उन्हें बिना किसी परीक्षण के विद्यार्थियों को प्रवेश देना पड़ता है जिन संस्थाओं में ऐसी विवशता नहीं है (इनकी संख्या बहुत कम

है) वे अवश्य प्रयास करती हैं कि ऐसे ही विद्यार्थियों को प्रवेश दिया जाय जिनमें संगीत सीखने की नैसर्गिक योग्यता हो।

संगीत सीखने के लिये विद्यार्थी की आयू का अत्यधिक महत्व है। संगीत की किसी भी विधा गायन, वादन, अथवा नृत्य में बाल्यावस्था की अल्प आयु में संगीत शिक्षण प्रारंभ करना अत्युत्तम माना गया है। इस अवस्था में बालक का शरीर, हाथ या कंठ कोमल, विकासशील एवं ग्रहणशील होने के कारण संगीत की किसी भी विधा की शिक्षा वे सहज ही प्राप्त कर सकते हैं। जो विद्यार्थी संगीत शिक्षा बाल्यावस्था से प्राप्त करते हैं; वे ही किशोर तथा युवावस्था में उच्च-शिक्षा ग्रहण करने में सक्षम होते हैं। किशोरावस्था से शारीरिक परिवर्तन प्रारंभ होने लगते हैं, कंठ फूटने लगता है, अंगों में बड़ापन आने लगता है, अतः विशेषकर पुरूष विद्यार्थियों हेतु बाल्यावस्था में रखी गई सुदृढ़ नींव ही किशोरावस्था के सांगीतिक भवन निर्माण को संभाल पाती हैं अन्यथा गायन सीखने में अत्यधिक कठिनाई होने लगती है।

यद्यपि सिद्धांततः सभी लोग यह मानते हैं कि संगीत-शिक्षण का प्रारंभ बाल्यावस्था से ही होना चाहिये, परंतु विभिन्न कारणों से यह व्यवहार में नहीं हो पाता है। एक मात्र संगीत शिक्षण प्रदान करने वाली संस्थाओं में इसका पालन हो सकता है। परंतु वहाँ भी अधिकाधिक विद्यार्थियों की संख्या के मोह तथा कहीं-कहीं आवश्यकता के कारण सभी आयु के छात्रों को प्रवेश दे दिया जाता है। जिसका दुष्परिणाम हम आज संगीत कला के गिरते स्तर के रूप में देख रहे हैं।

बड़ौदा विश्वविद्यालय संगीत संकाय के स्नातक पाठ्यक्रम में प्रवेश लेने हेतु योग्यता परीक्षण निम्नानुसार निर्धारित किया गया है -

"स्नातक पाठ्यक्रम - संगीत, गायन, वादन, नृत्य एवं नाटक में प्रवेश हेतु -

(1) **ध्वनि व भाषा** - एक गीत अथवा धुन को गाना तथा किसी दिये गये, गीत या धुन को सुनकर दुहराना या किसी दिये गये

संवाद या भाषण को नाटकीय ढंग से प्रस्तुत करना तथा कविता पाठ करना

(ii) **लय** – विभिन्न लयों में साधारण लयात्मक मात्रा देना।

(iii) **गति** – आँखों, अंगों, पैर और हाथों का पर्याप्त सुन्दरता व संतुलन के साथ नियंत्रित लयात्मक संचालन।

(IV) **रचनात्मक क्षमता** – दिये गये गीत की विषय वस्तु का नकल द्वारा प्रतिपादन।"[1]

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में तृतीय वर्षीय डिप्लोमा पाठ्यक्रम तथा पांच वर्षीय बी॰म्यूज़ डिग्री में प्रवेश हेतु भी योग्यता परीक्षा निर्धारित की गयी है। इस योग्यता परीक्षा में संगीत की क्रियात्मक तथा शास्त्रीय वर्गों की प्रारंभिक जानकारी अपेक्षित है। इसे एक दो वर्ष संगीत सीखे हुये विद्यार्थी पर ही लागू किया जा सकता है।[2]

प्रवेश लेने वाले विद्यार्थी के कंठ का सुरीलापन उसके द्वारा गाये सुगम गीत, भजन गाकर समझा जा सकता है। दूसरे उसकी सांगीतिक रुचि का भी परिचय मिलता है। वाद्य संगीत में प्रवेश लेने वाले विद्यार्थी के हाथ एवं बनावट से भी उसकी अनुकूलता प्रतिकूलता का साधारण परिचय मिलता है। नृत्य हेतु शरीर की गठन तथा लचीलापन समझ सकने में कोई कठिनाई नहीं होती।

लय व गति की समझ, गायन, वादन तथा नृत्य इन तीनों विषयों के प्रवेशार्थियों हेतु समान रूप से आवश्यक है। इस सम्बन्ध में उनकी समझ का परीक्षण, विलम्बित, मध्य तथा द्रुत लयों के परस्पर अंतर को पहचानने के द्वारा, किसी निश्चित लय में हाथ से मात्राओं को समान काल में देने को कहकर की जा सकती है।

संगीत में स्मरण शक्ति का विशेष महत्व होने के कारण इसका परीक्षण किया जाना भी आवश्यक है। चूंकि यह

---

1 बड़ौदा विश्वविद्यालय, प्रासपेक्टस, वर्ष ८८-८९, पृ॰१४

2 बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, प्रॉसपेक्टस, वर्ष ८८-८९, पृ॰३१

परीक्षण एकदम सामान्य विद्यार्थियों का किया जाना है, अतः निश्चय ही उनका संगीत ज्ञान एकदम शून्य होगा अतः सामान्य शिक्षा तथा साधारण ज्ञान के परीक्षण से ही स्मरण शक्ति का अनुमान लगाया जा सकता है। फिर भी यह परीक्षण एक सीमा तक ही प्रवेशार्थी की स्मरण-शक्ति का परिचायक हो सकता है; कारण, ऐसा भी देखने में आया है कि कुछ व्यक्तियों की स्मरण शक्ति अपनी रुचि के विषय बहुत अच्छी तथा अन्य विषयों में साधारण या खराब होती है। अतः हो सकता है कि सामान्य शिक्षा या साधारण विषय में प्रवेशार्थी की विशेष रुचि न होने के कारण वहाँ उसकी स्मरण शक्ति विशेष अच्छी न हो। संगीत विषय में रुचि होने पर सांगीतिक स्मरण शक्ति का परिचय बाद में मिलेगा।

प्रवेशार्थियों का सांगीतिक रुचि परीक्षण भी आवश्यक हो जाता है। कभी-कभी कुछ विद्यार्थियों में, संगीत हेतु नैसर्गिक प्रतिभा के अभाव में अथवा न्यूनता होते हुये भी रुचि व लगन के कारण प्रतिभा सम्पन्न विद्यार्थियों की अपेक्षा आशातीत उन्नति व सफलता प्राप्त की है। अतः रुचि परीक्षण में विद्यार्थी कोई सुगम गीत, भजन या नृत्य करके दिखाता है अथवा किसी वाद्य को बजाने का प्रयास करता है तो उससे भी उसकी रुचि का अनुमान लगाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त प्रवेश लेने के पूर्व उसने संगीत के कार्यक्रम देखे सुने हैं या नहीं? संगीतज्ञों के नामों से परिचित है या नहीं? आदि बातें भी उसकी सांगीतिक रुचि को प्रमाणित करती हैं।

कुछ विचारकों के अनुसार संगीत शिक्षण हेतु प्रवेश लेने वाले विद्यार्थी के मानसिक विचार का स्तर भी जाँचा जाना चाहिये। उनके अनुसार जिन विद्यार्थियों का सामान्य मानसिक विकास नहीं हुआ है, वे संगीत शिक्षण में भी सफलता प्राप्त नहीं कर सकते।

इस प्रकार यदि विद्यार्थियों की प्रवेश परीक्षा लेकर उन्हें संगीत जैसे विषय में प्रवेश दिया जाय तो इससे संगीत शिक्षण के क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली अनेक समस्याओं का

अंत हो जायेगा साथ ही अनेक लाभों की प्राप्ति होगी। समान योग्यता वाले विद्यार्थी एक ही कक्षा में होने से शिक्षक को शिक्षा देने में आसानी होगी, समय नष्ट नहीं होगा। और इसका परिणाम हमें संगीत कला के स्तर में सुधार के रूप में प्राप्त होगा।

३ संगीत शिक्षण के लिये उपयुक्त स्थान —

विश्वविद्यालय तथा कुछ महाविद्यालयों को छोड़कर अधिकतर विश्वविद्यालय से संबद्ध महाविद्यालयों में संगीत-शिक्षण के लिये उपयुक्त स्थान का अभाव पाया जाता है। स्वयं मैंने जिस महाविद्यालय में शिक्षा ग्रहण की है वहाँ इस अभाव के फलस्वरूप होने वाली कठिनाइयों को स्वयं अनुभव किया है। बंद सीलनदार अंधेरे कमरे वे भी पास-पास जिन्हें एक दूसरे की आवाज़ों के शोर के व्यवधान के कारण अंदर से भी बंद रखना पड़ता था। वहाँ संगीत-शिक्षा देना एक कठिन कार्य था पर इसका और कोई उपाय न होने के कारण इसी प्रकार संगीत शिक्षा देना तथा प्राप्त करना पड़ता था। कमरे साउन्ड-प्रूफ न होने के कारण वादन की कक्षाओं तथा गायन की कक्षाओं की आवाज़ें एक दूसरे की संगीत शिक्षा में बाधा उत्पन्न करती थीं। अतः स्तरीय संगीत शिक्षण के लिये साफ-सुथरे, हवादार, प्रकाशयुक्त ऐसे कमरे अवश्य होने चाहियें जिनमें दूसरे कमरे की आवाज़ न पहुँच सके। साथ ही कमरे इतने बड़े हों कि सभी छात्र आसानी से अपने वाद्य लेकर बैठ सकें। इसके अतिरिक्त संगीत की प्रत्येक कक्षा के लिये पृथक कक्ष होने आवश्यक हैं। इस प्रकार संगीत शिक्षण के लिये उपयुक्त स्थान की व्यवस्था का भी संगीत शिक्षण के स्तर तथा संगीत कला के स्तर के सुधार पर पड़ेगा।

४ कक्षा में छात्रों की संख्या —

व्यावसायिक दृष्टिकोण से प्रारंभ की गयी अनेक संस्थाओं में प्रवेश के नीयमों में शिथिलता बरती जा कर प्रतिभाहीन विद्यार्थियों को प्रवेश दिया जाता है,

ताकि शासन से अनुदान प्राप्त करने में सुविधा हो।

संगीत संस्थाओं में अधिकाधिक विद्यार्थियों को प्रवेश देने में शिक्षण की परिवर्तित नवीन विधियों भी अहम भूमिका अदा कर रही हैं। संगीत जैसे प्रायोगिक विषय के शिक्षण हेतु आज टेपरेकार्डर, पाठ्यपुस्तकें, श्यामपट आदि का व्यवहार किया जाने लगा है। अतः शिक्षण व अभ्यास में पहले की भाँति गुरु से प्रत्यक्ष सीखने-सुनने की आवश्यकता इतनी अधिक नहीं है पहले जो कुछ प्रत्यक्ष प्रयोग द्वारा सीखा जाता था, आज वह पुस्तकों, टेप-रेकार्डर, श्यामपट आदि पर उपलब्ध हो जाता है और उसे एक कक्षा के अनेक विद्यार्थी ग्रहण कर सकते हैं तथा सुविधानुसार अपने घरों में भी उनका लाभ उठा सकते हैं।

संगीत एक प्रायोगिक कला होने के कारण उसका जितना अच्छा ज्ञान गुरु को प्रत्यक्ष सुन-समझकर संभव है, उतना पुस्तकों आदि के माध्यम से नहीं। राग, ताल, स्वर आदि की बारीकियों को प्रत्यक्ष सुनकर तथा बारबार दुहराते हुये सीखकर ही पक्का किया जा सकता है। इसकेलिये यह आवश्यक है कि किसी एक कक्षा में विद्यार्थियों की एक सीमित संख्या हो, ताकि शिक्षक प्रत्येक विद्यार्थी पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान देते हुये शिक्षण प्रदान कर सके।

सामान्यतः संगीत महाविद्यालयों की कक्षाओं में १०, १५, २० या इससे अधिक विद्यार्थी जिनमें स्त्री या पुरुष दोनों हुआ करते हैं एक साथ बैठकर सीखते हुये देखे जा सकते हैं। ऐसी कक्षाओं में स्त्रियों के गाने की असमर्थता का ध्यान रखते हुये उनके ही स्वाभाविक स्वर को आधार स्वर मान लिया जाता है तथा पुरुषों को अपने मंद्र सप्तक में उतर कर महिलाओं के काली चार या काली पांच स्वर में आवाज़ मिलाते हुये सीखना पड़ता है। इस स्वर में सभी पुरुषों की आवाज़ सहज रूप से उत्पन्न न हो सकने के कारण बेसुरी एवं कर्कश हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। फिर भी इस स्थिति में विद्यार्थियों की एक बड़ी संख्या ४५ या ४० मिनट तक शिक्षक के पाठों को दुहराती

देखी जा सकती है। एक बड़ी संख्या में सभी के मिल जुलकर गाने या बजाने के कारण तथा एक दूसरे के सहारे चलने के कारण; व्यक्तिगत दोषों तथा त्रुटियों का पता चलना असंभव हो जाता है। यह भी अनुभव किया जाता है कि समूह में जो पाठ ठीक तरह से दुहराया गया प्रतीत होता है वही प्रत्येक विद्यार्थी का पृथक-पृथक सुनने पर एकदम गलत सुनाई देता है। समूह में जो विद्यार्थी कुछ अच्छे विद्यार्थियों के सहारे चलते हैं, वे ही अकेले रह जाने पर एकदम अयोग्य व असमर्थ दिखने लगते हैं।

अतः संगीत शिक्षा के लिये किसी भी व्यवस्था के निर्धारण से पहले यह सोच लेना चाहिये कि यह एक विषय बाद में है पहले यह एक कला है। कला को पढ़ा अथवा पढ़ाया नहीं जाता अपितु उसकी साधना की जाती है। अतः छात्रों की संख्या उच्च वर्ग की कक्षाओं में पांच अथवा छः से अधिक न हो, ताकि शिक्षक प्रत्येक विद्यार्थी पर अपना व्यक्तिगत ध्यान दे सके। उसके दोषों को दूर करते हुये इस कला में उसे पूर्ण निष्णात बना सके। प्रश्नावली प्रविधि द्वारा प्राध्यापकों तथा छात्रों द्वारा प्राप्त मत भी इसीका समर्थन करते हैं। अतः प्रयोगों द्वारा शीघ्र निश्चित किया जाना आवश्यक है कि संगीत कक्षों में छात्रों की कितनी संख्या सुविधाजनक होगी। इस समस्या के निराकरण द्वारा भी संगीत-शिक्षण तथा संगीत कला के स्तर में सुधार संभव हो सकेगा।

५ कक्षा शिक्षा का समय –

संगीत शिक्षण हेतु समर्पित संगीत संस्थाओं एवं संगीत-विभागों का पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिये जिनके सीखने से विद्यार्थी समर्थ बने तथा किसी न किसी रूप में संगीत की सेवा कर सके। यह तभी संभव होगा जब उसके क्रिया और शास्त्र पक्ष की गहन शिक्षा का प्रबंध हो सकेगा। गहन संगीत शिक्षा पर्याप्त शिक्षण समय की अपेक्षा रखती है। पाठ्यक्रम इस प्रकार निश्चित किया गया हो कि उसके लिये उपलब्ध समय किसी भी

प्रकार कम न पड़े उसे निश्चित समयावधि में अच्छी तरह से पूर्ण किया जा सके।

परंतु वास्तव में देखने में आता है कि निर्धारित पाठ्यक्रमों की गहन शिक्षा समयाभाव के कारण नहीं हो पाती है। या तो शिक्षकों की पर्याप्त संख्या में कमी के कारण या फिर पाठ्यक्रम की अधिकता के कारण, उसकी गहन शिक्षा का प्रबंध नहीं हो पाता है। शिक्षकों की संख्या कम होने के कारण प्रत्येक कक्षा के प्रतिदिन के समय को कम करना पड़ता है ताकि सभी कक्षाओं का शिक्षण कार्य सम्पन्न हो सके। बहुत अधिक पाठ्यक्रम होने पर भी, उपलब्ध समय में किसी न किसी तरह उसे समाप्त करने की जल्दी रहती है।

संगीत पाठ्यक्रमों के लिये पर्याप्त समय इसलिये भी नहीं निकल पाता है क्योंकि अधिकांश संगीत संस्थायें इस प्रकार चलाई जाती हैं कि उनमें संगीत सीखने वाले विद्यार्थी अपने सामान्य शिक्षा के विद्यालयों में भी जा सकें तथा बचे हुये सांयकाल या प्रातः के समय में संगीत सीखने भी आ सकें। सामान्य शिक्षा अन्यत्र प्राप्त करने वाले विद्यार्थी प्रातःकाल संगीत सीखने के लिये आने में कठिनाई महसूस करते हैं। प्रातःकाल का समय एक तो थोड़ा होता है तथा दूसरे वही समय उनके अध्ययन अभ्यास का भी रहता है। अतः सांयकाल का समय ही ऐसा होता है कि जिसमें वे संगीत सीखने का समय निकाल पाते हैं। इस प्रकार यद्यपि अधिकांश संगीत संस्थायें दोपहर तीन बजे प्रारंभ हो जाती हैं किन्तु उनमें अन्यत्र पढ़ने वाले विद्यार्थी संगीत सीखने हेतु शाम के ५ बजे के पहले नहीं आ पाते। ऐसे विद्यार्थियों की सभी कक्षाओं को सांय ५ बजे से रात्रि आठ या नौ बजे के भीतर सम्पन्न करना पड़ता है। परिणामतः प्रारंभिक कक्षाओं हेतु अधिक से अधिक ६० मि. प्रतिदिन तथा उच्च कक्षाओं के लिये ९० मि. प्रतिदिन के हिसाब से समय निकल पाता है। यह भी तब ही संभव हो पाता है जब किसी संस्था में प्रत्येक विषय हेतु पर्याप्त शिक्षक उपलब्ध हों।

कक्षाओं में यदि विद्यार्थियों की संख्या सीमित हो तो एक या डेढ़ घंटे में भी पर्याप्त शिक्षा दी जा सकती है।

परंतु जिन संस्थाओं में अधिकाधिक संख्या बढ़ाने की प्रवृत्ति रहती है वहाँ कक्षाओं में छात्रों की भीड़ के कारण यह समय पूरा नहीं पड़ता है। इस प्रकार की कक्षाओं में एक तो अधिकांश विद्यार्थी ऐसे रहते हैं कि जिनमें पाठ्यक्रम के स्तर के अनुरूप योग्यता नहीं होती, जिसके कारण सिखाये गये पाठ को उठाने में कठिनाई बनी रहती है तथा पूर्ण होने में अधिक समय लगता है, दूसरे शिक्षक प्रत्येक विद्यार्थी पर पूर्ण रूप से ध्यान भी नहीं दे पाता है। यदि कक्षा अवधि ६० मि. की है तो उसमें से लगभग ५ या १० मि. विद्यार्थियों के कक्षा में प्रवेश करने, वाद्य मिलाने आदि में नष्ट हो जाते हैं, शेष ४० या ४५ मि. में ही शिक्षा हो पाती है। कहीं-कहीं शिक्षकों की कमी के कारण ६० मि. प्रतिदिन की कक्षा भी नहीं हो पाती; ४५ या ५० मि. की कक्षा से ही काम चलाया जाता है। विश्वविद्यालयों में मानविकीय, विज्ञान आदि विषयों के शिक्षण हेतु ४५ या ५० मि. का एक घंटा माना जाता है। परिणामस्वरूप, इन विश्वविद्यालयों के संगीत विभागों में वास्तविक शिक्षण का समय और भी अधिक कम हो जाने के दुष्परिणाम होते रहते हैं।

प्रथम एवं मध्यम के प्रारंभिक पाठ्यक्रमों हेतु प्रतिदिन ६० मि. की प्रायोगिक कक्षा तथा सप्ताह में कम से कम दो दिन पृथक रूप से ६० मि. की शास्त्रीय कक्षा आयोजित की जानी चाहिये। इसके उपरांत के स्नातक पाठ्यक्रम जैसे विद्, विशारद, बी. म्यूज़, बी. ए. आनर्स आदि में प्रायोगिक कक्षा कम से कम प्रतिदिन ९० मि. तथा शास्त्र की कक्षा प्रतिदिन ६० मि. की आयोजित की जानी चाहिये। स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम जैसे-निपुण, कोविद, अलंकार, एम. म्यूज़, एम. ए. इत्यादि में प्रायोगिक पाठ्यक्रम हेतु १२० (दो घंटे) मिनट तथा शास्त्रीय पाठ्यक्रम हेतु ४५, ४५ मि. की दो कक्षायें अर्थात् कुल ९० मि. प्रतिदिन का शिक्षण कार्य होना चाहिये। यह मानते हुये कि सभी पाठ्यक्रमों में सुयोग्य विद्यार्थियों की एक सीमित संख्या में प्रवेश दिया जाना चाहिये फिर उपरोक्तानुसार यदि उनकी कक्षाओं का समय निर्धारित किया जाय तो शिक्षण कार्य सुविधापूर्वक हो सकता है। तथा विद्यार्थी

भी उन्नति कर सकते हैं।

तालिका क्रमांक २

संस्थाओं में संगीत शिक्षण हेतु समयावधि

क्र.	संस्था का नाम	पाठ्यक्रम	प्रायोगिक कक्षा हेतु समय	शास्त्रीय कक्षा	अन्य
1	इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय खैरागढ़ (म.प्र.)	प्रथम दो वर्ष	६० मि. प्रतिदिन	६० मि. सप्ताह में एक दिन	प्रातः काल
		मध्यमा दो वर्ष	६० मि. प्रतिदिन	६० मि. सप्ताह में एक दिन, दो दिन	
		विद दो वर्ष	"		
		कोविद, एम.ए., एम. म्यूज़ प्रतिदिन	९० मि. प्रतिदिन	६० मि. प्रतिदिन	
		डी. म्यूज़. (प्रयोग प्रधान पाठ्यक्रम)[1]	१५० मि. प्रतिदिन		
२	भातखण्डे संगीत महाविद्यालय लखनऊ (उ.प्र.)	प्रत्येक विषय या वाद्य हेतु, जिसे विद्यार्थी ने लिया है, प्रथम वर्ष में एक विद्यार्थी को एक घंटे का तथा उच्च कक्षाओं में डेढ़ घंटे का शिक्षण प्रदान किया जाता है। विद्यार्थियों के लाभार्थ विशेष ट्यूटोरियल कक्षायें तबला व स्वर ज्ञान हेतु आयोजित होती हैं।[2]			
३	बम्बई वि. वि. म्यूज़िक सेन्टर	1 डिप्लोमा (द्वितीय वर्ष) 2 बैचलर ऑफ फाइन आर्टस पाँच वर्ष	प्रत्येक विद्यार्थी को प्रत्येक शिक्षक प्रतिदिन ३० मि. की व्यक्तिगत शिक्षा प्रदान करता है। यह सप्ताह में पाँच दिन दी जाती है। सप्ताह में तीन शास्त्रीय कक्षायें आयोजित होती हैं जिनका समय ६० मि. प्रतिदिन होता है।[3]		

---

1 प्रत्यक्ष प्राप्त जानकारी के आधार पर

2 वही

3 वही

क्र.	संस्था का नाम	पाठ्यक्रम	प्रायोगिक कक्षा	शास्त्रीय कक्षा अन्य
४	दिल्ली वि. वि. संगीत संकाय	संगीत शिरोमणि (डिप्लोमा) बी. ए. (आनर्स) एम. ए. एम. फिल	५० मि. का घंटा सभी पाठ्यक्रमों हेतु प्रतिदिन	५० मि. का घंटा बी. ए. आनर्स हेतु, शास्त्र कक्षायें चार एम. ए. हेतु, एम. फिल के लिये प्रतिदिन १
५	बनारस हिन्दू वि. वि. वाराणसी	डिप्लोमा प्रथम तथा द्वितीय वर्ष	४५ मि. प्रतिदिन	४५ मि. सप्ताह में एक दिन
		तृतीय वर्ष	४५ मि. के दो घंटे प्रतिदिन	२ घंटे (४५ मि.) प्रति सप्ताह
	बी. म्यूज़	बी. म्यूज़	४५ मि. के दो घंटे प्रतिदिन	४५ मि. के दो घंटे प्रतिदिन
		एम. म्यूज़	९० मि. प्रतिदिन	"
		डी. म्यूज़	९० मि. प्रतिदिन	" २
६	गांधर्व महाविद्यालय दिल्ली	प्रथमा में गायन के साथ ही शास्त्रीय ज्ञान दिया जाता है। मध्यमा में एक दिन प्रति सप्ताह तथा विशारद में शास्त्र के लिये इससे भी ज्यादा समय दिया जाता है।३		
6	भारतीय संगीत एवं नर्तन विद्यापीठ	प्रथमा	६० मि. प्रतिदिन	शास्त्र शिक्षण की पृथक व्यवस्था नहीं है।
	भारतीय विद्याभवन बम्बई	मध्यमा	"	
		विशारद	९० मि. प्रतिदिन	शा. शिक्षक बाहर से आमंत्रित होते हैं।४

---

१ स्वयं प्राप्त की जानकारी के आधार पर
२ वही
३ वही
४ वही

क्र.	संस्था का नाम	पाठ्यक्रम	प्रायोगिक कक्षा	शास्त्र कक्षा	अन्य
८	वल्लभ संगीतालय बम्बई	प्रथमा मध्यमा विशारद	४५ से ६० मि. तक के पीरियड सप्ताह में पाँच गायन हेतु, सप्ताह में तीन दिन वाद्य हेतु।1		
९	श्री राम कला केन्द्र दिल्ली	डि. इन परफार्मिंग आर्टस (४ वर्षीय) बैचलर आफ परफार्मिंग आर्टस	४५ से ६० मि. का घंटा प्रतिदिन इसके उपरांत पृथक अभ्यास करना पड़ता है।2		यहाँ विद्यार्थियों की संख्या सीमित होने के कारण विद्यार्थियों को व्यक्तिगत शिक्षण संभव है।
10	देवधर स्कूल ऑफ इन्डियन म्यूज़िक बम्बई		एक प्राध्यापक प्रायोगिक परीक्षा में ही शास्त्र की कक्षा भी ले लेता है। परीक्षा के दो माह पूर्व विशेष लैक्चर देकर शास्त्र का पाठ्यक्रम तैयार किया जाता है।३		

उपरोक्त तालिका में यद्यपि प्रमुख 12 संगीत संस्थाओं की संगीत शिक्षण समयावधि को दर्शाया गया है, परंतु समयावधि की जो विभिन्नता इन संस्थाओं में देखी जा सकती है। इस तालिका को देखने के बाद यह स्पष्ट रूप से समझ में आ सकता है कि संगीत के प्रायोगिक शिक्षण की भी यथोचित व्यवस्था न कर पाने के कारण अधिकांश संस्थाओं, विभागों में संगीत के शास्त्र पक्ष की लगभग उपेक्षा रहती है। और संगीत संस्थाओं में जो समय शिक्षण के लिये रखा गया है उसमें भी पर्याप्त भिन्नता दिखाई पड़ती है।

संगीत शिक्षण में समयावधि की समस्या को लेकर जो प्रश्नावली अन्वेषण-कर्ता ने बनाई थी उसके लिये

---

1 स्वयं प्राप्त की जानकारी के आधार पर

२ वही

३ वही

इसके लिये प्राध्यापकों तथा छात्रों के जो मत लिये गये हैं उनका भी निष्कर्ष यही निकलता है कि संगीत कला की साधना के लिये संगीत शिक्षण की समयावधि को बढ़ाया जाय। जो इस कला की साधना के लिये जीवन समर्पित करना चाहते हैं तथा इसी क्षेत्र में आगे बढ़ना चाहते हैं उनके लिये संगीत शिक्षा की अलग व्यवस्था हो। तथा ऐसी शिक्षा-संस्थाओं की समयावधि विज्ञान व अन्य तकनीकी महाविद्यालयों की भाँति छ: घंटे होनी चाहिये।

जो लोग संगीत का शौकिया अध्ययन करना चाहते हैं उनके लिये इन्हीं शिक्षा संस्थाओं में अलग पाठ्यक्रम हो उनकी समय सीमा सुविधानुसार एक या दो घंटे रखने से काम चल सकता है। पर ऐसे संगीत शिक्षार्थियों को यदि वे संगीत के व्यावसायिक क्षेत्र में आना चाहें तो प्रोत्साहन न दिया जाय अन्यथा इस प्रकार के प्रोत्साहन से फिर संगीत-कला के स्तर पर दुष्परिणाम पड़ेंगे। यदि वे आना ही चाहते हैं तो उन्हें फिर उपरोक्त शिक्षा प्रक्रिया को संपूर्ण करके ही इस क्षेत्र में आने दिया जाय।

६ महाविद्यालयों में वाद्य यंत्र –

महाविद्यालयों में संगीत वाद्य-यंत्रों का अभाव देखा जाता है यह प्रश्नावली-प्रविधि द्वारा प्राप्त मतों के आधार पर सिद्ध हो चुका है। आवश्यक वाद्य-यंत्रों की कमी कला शिक्षा में बहुत बड़ी बाधा उत्पन्न करती है। जब तबला तानपूरे जैसे आवश्यक वाद्य यंत्र ही नहीं होंगे तब संगीत शिक्षा में विद्यार्थी के निपुण होने की आशा कैसे की जा सकती है। इसके अतिरिक्त सभी विश्वविद्यालयों तथा उनसे संबद्ध महाविद्यालयों में कुछ गिने-चुने वाद्य जैसे – वायलिन, सितार, गिटार, तबला के सिवा अन्य वाद्यों की शिक्षा की भी कोई व्यवस्था नहीं है। अत: आवश्यक वाद्यों के अलावा ऐसे वाद्यों की शिक्षा-व्यवस्था भी विश्वविद्यालय के संगीत विभागों तथा महाविद्यालयों में होनी चाहिये जैसे सारंगी, दिलरुबा, शहनाई, बाँसुरी, सन्तूर, वीणा, काष्ठतरंग, जलतरंग, पखावज, तारशहनाई क्लैरनेट आदि।

यद्यपि यह ठीक है कि इस तरह के कठिन वाद्यों को सीखने के लिये विद्यार्थी तैयार नहीं होते फिर भी कुछ ऐसे भी विद्यार्थी होते हैं जो इन वाद्यों की आवाज़ पर मोहित होकर अपनी रुचि के अनुसार इनकी साधना में अपना जीवन समर्पित करने की इच्छा रखते हैं पर इनकी शिक्षा-व्यवस्था न होने के कारण उन्हें किसी दूसरे वाद्य का चयन करना पड़ता है। अतः ऐसे वाद्यों की शिक्षा की व्यवस्था होने का यह लाभ मिलेगा कि कई दुर्लभ तथा लुप्तप्राय वाद्यों को सीखने के लिये कुछ विद्यार्थी अवश्य मिलेंगे और उचित-शिक्षा-व्यवस्था की स्थिति में उनमें से कुछ उस वाद्य वादन में निष्णात हो सकेंगे। अतः हमारे सम्मुख आज जो यह एक समस्या खड़ी है कि भविष्य में सारंगी, दिलरुबा, वीणा जैसे वाद्यों को बजाने वाला ही कोई नहीं मिलेगा इसका समाधान हो सकेगा। और जो भी कुछ विद्यार्थी इसकी साधना का प्रयास करेंगे उनमें से कुछ अवश्य इसमें चोटी के कलाकार बन सकेंगे। इसके अतिरिक्त जब विदेशी विद्यार्थी भारत में संगीत साधना के लिये आते हैं तो यहाँ बड़े-बड़े विश्वविद्यालयों के संगीत विभागों में गिने-चुने दो-चार वाद्यों की शिक्षा की ही व्यवस्था पाते हैं, यह कुछ उचित नहीं प्रतीत होता प्रायः ही विदेशी छात्र भारत में प्राचीन भारतीय वाद्यों के आकर्षण से ही आते हैं जैसे पखावज, वीणा आदि परंतु यहाँ वे इन वाद्यों की शिक्षा का अभाव पाते हैं। इतने बड़े-बड़े विश्वविद्यालयों के चलते इस प्रकार की समस्याओं का होना शोभा नहीं देता।

अतः विश्वविद्यालयों तथा संबंधित महाविद्यालयों में आवश्यक वाद्य यंत्रों जैसे तबला, गिटार, सितार, वायलिन के अतिरिक्त सारंगी, दिलरुबा, शहनाई, बाँसुरी, सरोद, संतूर, तारशहनाई, वीणा, पखावज आदि वाद्यों के साथ-साथ उनकी शिक्षा की भी व्यवस्था की जाय।

6 प्रशिक्षित प्राध्यापक –

किसी भी शिक्षा व्यवस्था का शिक्षक एक महत्वपूर्ण अंग होता है और उसका पद अत्यधिक उत्तरदायित्वपूर्ण है।

डा. राधाकृष्णन् के अनुसार, "शिक्षक एक मोमबत्ती के समान है जो जलकर भी प्रकाश देता है।" अतः शिक्षक का पद अत्यन्त गरिमापूर्ण है और प्रत्येक शिक्षक का कर्तव्य है कि वह इस पद की गरिमा बनाये रखे। संगीत कक्ष में संगीताध्यापक कार्य का मुख्य अंग है। वह नित्य प्रति संगीत शास्त्र और कला का अध्ययन करता है। संगीताध्यापक को स्वयं शास्त्र और कला का अच्छी तरह से ज्ञान आवश्यक है। प्रत्येक गायन शैली और वाद्यों का परिचय और उनकी वादन विधि का बोध होना आवश्यक है। संगीत अध्यापक को प्रत्येक विद्यार्थी की प्रकृति और उसकी शिक्षा ग्रहण करने की मर्यादा का पता होना चाहिये। संगीताध्यापक उदार, हंसमुख, मिलनसार एवं आत्मविश्वास दिलाने वाला होना चाहिये। संगीत अध्यापक का पद उस पुजारी के समान होता है जो मंदिर में इष्ट देवता की आराधना करता है भावकों को उपदेश देता है और भक्ति मार्ग को सुगम, सरल व भावुक रूप प्रदान करता है। और संगीत की उत्तम सेवा के साथ ही साथ उसकी भलाई के लिये सब कुछ न्योछावर करने को तैयार रहता है जहाँ तक हो सके अलग-अलग वाद्य के बजाने और संगत करने के लिये अलग-अलग संगीताध्यापक होने चाहिये। संगीताध्यापक के सिद्धांत- संगीत कक्षा के अतिरिक्त अध्यापक को विद्यार्थी के साथ ही साथ निम्न तथ्यों की ओर ध्यान देना भी आवश्यक है-

१ प्रभावशाली व्यक्तित्व।
२ संगीत शास्त्र और कला में निपुणता।
३ अध्यापन में सरल भाषा का प्रयोग।
४ विद्यार्थी से सद्व्यवहार।
५ विद्यार्थी के मन में अपने सहायकों और कला के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करना।
६ विद्यार्थी को संगीत की उपयोगिता बताना।
७ क्रियात्मक संगीत में स्वर और लय की समयोचित और यथोचित विधि का ज्ञान कराना।
८ गीत के शब्द, अर्थ और ज्ञान, और उनकी यथा समय प्रयोग करने

की क्षमता उत्पन्न करना।

९ स्कूल अथवा कॉलिज में संगीत समारोहों का आयोजन करना।

१० विद्यार्थियों के द्वारा शास्त्राध्ययन एवं कलात्मक पक्ष की नित्य प्रति साप्ताहिक, मासिक तथा वार्षिक जॉच करना तथा उन्हें प्रोत्साहित करना।

११ विद्यार्थी को संगीत के अतिरिक्त अन्य ललित कलाओं का ज्ञान करवाना।

१२ संगीत के विद्यार्थियों को आदर्श चरित्र के लिये प्रेरित करना।

ये सारे संगीत-शिक्षा प्रदान करने वाले गुण यदि ऐसा सोचा जाय कि नये शिक्षकों में हों तो यह संभव नहीं है क्योंकि इनमें से कई बातें शिक्षा-प्रदान करने का अनुभव प्राप्त होने के साथ धीरे-धीरे ही आती हैं। अतः यह आवश्यक है कि नये शिक्षकों को प्रारंभ के कुछ वर्षों तक संगीत शिक्षा प्रदान करने का प्रशिक्षण दिया जाय ताकि उनमें परिपक्वता आ सके। इस संबंध में संगीत प्राध्यापकों तथा विद्यार्थियों के अधिक मत यही प्राप्त होते हैं कि नये संगीत अध्यापकों को प्रशिक्षित किया जाय।

८ विश्वविद्यालयीन शिक्षा में पाठ्यक्रम —

शैक्षणिक प्रक्रिया का तीसरा अंग है पाठ्यक्रम। अमेरिका के दार्शनिक जान ड्यूवी के विचारों के प्रभाव से पाठ्यक्रम को भी अब शिक्षा का एक बहुत आवश्यक अंग मान लिया गया है। अतः आज समाज की प्रगति के लिये पाठ्यक्रम को उचित रूप से निर्धारित करना आवश्यक माना माना जाता है। पाठ्यक्रम से तात्पर्य उन पाठ्य-विषयों से नहीं है जिनकी शिक्षा विद्यालयों में दी जाती है। वरन् विद्यालयों में बालक को दिये जाने वाले समस्त अंगों को अब पाठ्यक्रम का अंग माना जाता है। इसके लिये यह आवश्यक नहीं है कि ये अनुभव बालक को कक्षा में ही दिये जायें कक्षा

में, खेल के मैदान में, समाज सेवा कार्य में, वन-भ्रमण में, वाद-विवाद में जो भी बालक अनुभव प्राप्त करता है वे सब उसके पाठ्यक्रम के ही अंग होते हैं।

हार्न महोदय के अनुसार - "पाठ्यक्रम अनुभवों का एक ऐसा बंडल है अथवा क्रियायें हैं जिनमें एक व्यक्ति व्यस्त रहता है या जीवन की समस्याओं की एक श्रृंखला है जो जीवन में समय-समय पर आती है।"

विस्तृत अर्थ में पाठ्यक्रम का महत्व बहुत अधिक है। बालक की शिक्षा का मुख्य साधन पाठ्यक्रम ही है। बिना पाठ्यक्रम की सहायता के अध्यापक के लिये अध्यापन कार्य करना कठिन है तथा विद्यार्थी के विकास में भी वह सहयोग नहीं दे सकता है।

आज से ८० साल पहले विष्णुद्वय ने संगीत-शिक्षा के लिये जिन पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की थी उसी पर आधारित मिलते जुलते पाठ्यक्रम शिक्षा संस्थाओं में चल रहे हैं। समय या परिस्थितियों की माँग के अनुसार उसमें कोई परिवर्तन नहीं किये गये हैं। इसके अतिरिक्त विष्णुद्वयों ने पाठ्यक्रम के साथ जिन तथ्यों को संगीत शिक्षा का अंग माना था उन्हें तो संगीत शिक्षा से बिलकुल ही काटकर फेंक दिया गया है।

"जैसे पंडितजी ने विद्यालय के कार्यक्षेत्र को विस्तृत करने के लिये पंडितजी को योग्य शिक्षकों की आवश्यकता थी और बाहरी संगीतज्ञों के द्वारा यह कार्य सुचारु रूप से नहीं चल सकता था। अतः पंडित जी ने कुछ चुने हुये शिष्यों को इसके लिये प्रशिक्षित किया इसके लिये उन्होंने कुछ ऐसे शिष्यों का चुनाव किया जो संगीत-सेवा के लिये पूर्ण रूप से समर्पित थे।"[1] इन्हें पंडितजी के पास नौ वर्ष तक रहना होता था। उनके सारे खर्चे पंडितजी उठाते थे तथा जब वे पूर्ण प्रशिक्षित हो जाते थे तो उनमें से कुछ प्राध्यापक के रूप में कला प्रदर्शन

---

1 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर, स्मृति ग्रंथ, पृ. 26

के लिये भेजे जाते तथा कुछ को देश के विभिन्न स्थानों पर गांधर्व महाविद्यालय की शाखायें खोलने भेजा जाता था।

इन विद्यार्थियों को नौ वर्ष पंडितजी के कड़े अनुशासन में रहना होता था। तथा विद्यालय से संबंधित विभिन्न छोटे-बड़े कामों को भी आयु के अनुसार करना पड़ता था। और इनकी संगीत-शिक्षा भी साथ-साथ चलती थी रात में भी पंडितजी इन्हें संगीत-शिक्षा देते थे अर्थात् इन शिक्षार्थियों के लिये पंडित जी की संगीत-शिक्षा संस्थागत-शिक्षा-पद्धति से होने के बाद उन्हें गुरुकुल का पूर्ण वातावरण प्राप्त था। अतः हम यहाँ पंडितजी द्वारा स्थापित संस्थागत तथा गुरुकुल शिक्षा पद्धति के समन्वय को देख सकते हैं।[1]

फिर पंडितजी ने महिलाओं और ऐसे संगीत सीखने वाले व्यक्तियों का वर्ग अलग बनाया था जो दूसरे कार्यों में लगे होने के बाद भी शौकिया संगीत सीखते थे। महिलाओं के लिये आपने समय का विशेष प्रबंध दोपहर से शाम सात बजे तक रखा था। बाकी विद्यार्थियों के लिये संगीत विद्यालय सुबह ६ से १० तथा शाम ५ से १० रखा गया था।[2]

आज भी हमें संगीत शिक्षा प्राप्त करने वालों के इसी प्रकार दो वर्ग बनाकर उनके लिये अलग पाठ्यक्रम तथा समय व्यवस्था का प्रबंध करना चाहिये। तब ही संगीत कला के स्तर में सुधार की संभावना हो सकती है। हमने पंडितजी की इस व्यवस्था को और सुव्यवस्थित रूप प्रदान करने के बजाय समाप्त ही कर दिया उसी का परिणाम हमें आज संगीत-शिक्षा-पद्धति की पंगुता के रूप में प्राप्त हो रहा है।

इसके अतिरिक्त पंडितजी ने विद्यालय में ही एक छपाई मशीन भी चलाई थी। छापेखाने का प्रबंध भी पंडित जी के शिष्य ही देखते थे। इसके अतिरिक्त पंडितजी ने 'संगीतामृत प्रवाह' हिन्दी में एक मासिक पत्रिका भी निकाली थी।[3]

---

१ विष्णुदिगम्बर पलुस्कर, स्मृति ग्रंथ, पृ. २८
२ " " , " " , पृ. ३६
३ " " , " " , पृ. ३३

पंडितजी ने बंबई में संगीत के वाद्यों के लिये मरम्मत के लिये एक कारखाना भी खोला। यहां से उन्होंने मराठी मासिक 'गांधर्व महाविद्यालय' का प्रकाशन भी आरंभ किया। इसके अतिरिक्त, पंडित जी संगीत समारोहों की सम्पूर्ण व्यवस्था का भार भी शिष्यों पर ही रखते थे ताकि उन्हें इस प्रकार के कार्यों को करने में दक्षता प्राप्त हो सके।[1]

आज भी विद्यार्थियों के लिये पाठ्यक्रम में इस प्रकार की गतिविधियों का होना आवश्यक है। साथ ही विद्यालयों में दो तरह का पाठ्यक्रम चलाया जाना चाहिये। 1 अल्पकालिक 2 दीर्घकालिक; ऐसे विद्यार्थी जो संगीत को ही अपनी आजीविका का माध्यम बनाना चाहते हैं उनके लिये दीर्घकालिक पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करनी चाहिये। इसके लिये प्रत्येक वाद्य की तकनीकी कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुये उनका अलग-अलग पाठ्यक्रम निर्धारित किया जाय। उनकी कक्षाओं का समय प्रतिदिन कम से कम 5 घंटे होना चाहिये जैसा कि अन्य विषयों के अध्ययन में होता है। उनका प्रत्येक विषय डेढ़ घंटे का होना चाहिये। रागों का प्रशिक्षण देते समय एक पीरियड में राग की बंदिश व आलप सिखलाना चाहिये तथा दूसरे पीरियड में राग में निबद्ध गात विभिन्न पलटों तथा अलंकारों का अभ्यास करवाया जाय। इस प्रकार एक राग का प्रशिक्षण कई दिनों तक चलना चाहिये। पाठ्यक्रम में कम ही राग निर्धारित करना चाहिये ताकि उन रागों के गायन-वादन पर विद्यार्थियों का अच्छा प्रभुत्व हो सके।

आज विद्यालय की समय सीमा को देखते हुये हम पाते हैं कि पाठ्यक्रम में बहुत अधिक अधिकता है। और इस असंतुलन के कारण पाठ्यक्रम विद्यार्थी द्वारा दक्षतापूर्वक पूर्ण करना तो दूर की बात है पाठ्यक्रम वर्ष भर में पूर्ण भी नहीं हो पाता है। अतः पाठ्यक्रम की इस कमी को दूर करना

---

1 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर, स्मृति ग्रंथ, पृ.३५

आवश्यक है।

ऊँची कक्षाओं के प्रत्येक छात्र के मंच प्रदर्शन का कार्यक्रम व्यक्तिगत रूप से प्रतिमाह होना चाहिये। उनके लिये प्रतिवर्ष कम से कम किसी एक अखिल भारतीय संगीत समारोह के कार्यक्रम को सुनकर उसका विवेचनात्मक प्रतिवेदन तैयार कराना अनिवार्य होना चाहिये। इन दोनों पर अंक निर्धारित होने चाहिये जिसे वार्षिक परीक्षा के साथ संयुक्त करना आवश्यक होगा। विद्यालयों में समय-समय पर विचार गोष्ठियों का आयोजन करके संगीत संबंधी सभी शंकाओं का समाधान ढूंढ निकालना चाहिये।

इसके साथ ही पाठ्यक्रम में किसी विशिष्ट सांगीतिक पक्ष का विशेष अध्ययन रखा जाना चाहिये। इस व्यवस्था से विद्यार्थी को उसकी रुचि और आवाज़ के धर्म के अनुसार गायन विधा तथा अन्य विषयों का चुनाव करने में आसानी रहेगी और उस विधा विशेष या विषय विशेष में उसे दक्षता प्राप्त हो सकेगी।

संगीत शिक्षा के पाठ्यक्रम को जीविकोपार्जन की समस्या दूर करने के आधार पर व्यावसायिक रूप देना अतिआवश्यक है आज यह हमारे पाठ्यक्रमों की बहुत बड़ी कमी है। भारतीय आद्य चिन्तकों ने जीवन के प्रत्येक क्रम व गति को 'व्यवसाय' ही कहा है। अर्थात जीवन का व्यवहार व्यवसाय से रहित नहीं है। जीवन संचालन के लिये व्यवसाय अनिवार्य है। सृष्टि की जड़ एवं चेतन सत्ता व्यवसाय के सहारे ही एक दूसरे से ग्रथित है। व्यवसाय का सूत्र ही सृष्टि क्रम को एकरूपता प्रदान किये है। समय, ज्ञान तथा वस्तु के आदान-प्रदान का नाम ही व्यवसाय है। व्यवसाय मनुष्य का कर्म है, इसलिये उसे कर्तव्य की संज्ञा दी जा सकती है। बिना व्यवसाय के मनुष्य जी नहीं सकता। हम जगत में जो कुछ भी कर्म करते हैं वह व्यवसाय ही है चाहे कला हो चाहे समाज सेवा हो, राजनीतिक क्रिया-कलाप हो या धनोपार्जन ये सब व्यवसाय के ही रूप हैं। बिना उद्योग अथवा व्यवसाय के प्राणी आध्यात्म की चरम सीमा

अवस्था - विमुक्त स्थिति को भी नहीं पा सकता। जीवन के निर्वाह के लिये व्यवसाय अपरिहार्य है। इस संदर्भ में भक्त कवि कबीर ने बहुत ही मार्मिक शब्दों में कहा है, 'भूखे भजन न होई गुपाला' मनुष्य चाहे कितना ही सिद्धांतवादी हो और उसका लक्ष्य कितना ही महान् क्यों न हो, बिना व्यवसाय के वह जी नहीं सकता। व्यवसाय जीवन की गति है अतः प्रत्येक व्यक्ति के साथ वह स्वाभाविक रूप से जुड़ा है। प्रयत्नपूर्वक भी उसे जीवन से विलग नहीं किया जा सकता। इसलिये यदि कोई कलाकार जीविकोपार्जन के लिये व्यवसाय करता है, तो वह अनुचित नहीं है। फिर आज के जटिल समस्याओं से पूर्ण युग में तो व्यवसाय का महत्व जीवन में और भी अधिक बढ़ जाता है। कलाकार चाहे संगीतकार हो अथवा समाजसेवी जीवन-संचालन हेतु उसे कुछ न कुछ व्यवस्था रखनी ही पड़ेगी, अन्यथा जीवन दुरूह हो जायेगा और जो कुछ वह करना चाहता है उससे भी वंचित होना पड़ेगा। ऐसी स्थिति में वह कुंठा और निराशा के भवँर में फँस जायेगा; और आज संगीत शिक्षार्थियों की यही दशा है। संगीत शिक्षा ग्रहण करने में अपना अमूल्य समय व धन व्यय करने के बाद जब कुछ करने का समय आता है तब उसके सामने कोई मार्ग नहीं होता। इस स्थिति का सामना करने के लिये पाठ्यक्रम में परिवर्तन करके उसे व्यावसायिक रूप प्रदान करना आवश्यक है।

व्यावसायिक दृष्टि से हमारे संगीत का क्षेत्र विस्तृत है। संगीत-शिक्षा पाने के बाद विद्यार्थी अपनी-अपनी पसंद के क्षेत्र में कार्य कर सकते हैं। संगीत के व्यावसायिक क्षेत्र से संबंधित शाखायें इस प्रकार हो सकती हैं।

(१) कलाकार - गायक, वादक, नर्तक
(२) संगीत शास्त्रकार
(३) संगीत शिक्षक
(४) समीक्षक
(५) संयोजक - संगीत के विविध कार्यक्रमों का संयोजन करने वाला

(६) संगीत दिग्दर्शक - वृंदवादन, वृंदगान, फिल्म, नाट्य आदि
(७) रचनाकार - स्वर रचना, काव्य रचना आदि
(८) शोधकर्ता
(९) वाद्यनिर्मित्तिकार - निर्माण, देख-रेख, रख-रखाव
(१०) निवेदक - उद्घोषक
(११) ग्रंथपाल - संगीत विषयक पुस्तकें, ग्रंथ, जर्नल्स, कैसेटस, रेकार्ड्स आदि को संभालने वाला।

उपरोक्त शाखाओं की शिक्षा अलग-अलग विद्यापीठों में दी जा सकती है। विशेष स्तर पर जो पाठ्य-क्रम होते हैं वे अगर भिन्न-भिन्न विश्वविद्यालयों में पढ़ाये जायें तो संगीत के विद्यार्थी के लिये लाभदायक होगा। संगीत की इन शाखाओं के अनुसार शिक्षा व्यवस्था की जानी अति आवश्यक है; ताकि हमारे संगीत की परंपरा उज्जवल रखी जा सके।

९ वर्तमान शिक्षा प्रणाली में गुरुकुल शिक्षा पद्धति का समावेश -

गुरुकुलीन शिक्षा क्या है इसकी विस्तृत विवेचना हम 'घराना शिक्षा पद्धति' अध्याय के अंतर्गत कर चुके हैं अतः यहाँ पुनः इनके विवेचन की आवश्यकता नहीं है; संस्था-गत शिक्षा पद्धति की विवेचना भी, 'संस्थागत शिक्षा पद्धति अध्याय के अंतर्गत हो चुकी है।

गुरुकुलीन-शिक्षा-पद्धति के स्थान पर संगीत-शिक्षा के लिये संस्थागत-शिक्षा-पद्धति को इसलिये चुना गया ताकि गुरुकुलीन-शिक्षा-पद्धति में उत्पन्न दोषों से छुटकारा पाकर संगीत-शिक्षा के नये आयाम खुल सकें।

इस व्यवस्था के कुछ लाभ हमें अवश्य मिले जैसे आधुनिक युग में विद्यालयीन शिक्षा के कारण अत्यधिक लाभ संगीत के रुचि सम्पन्न उन व्यक्तियों को हुआ जो कि आर्थिक कठिनाइयों के कारण व्यक्तिगत रूप से संगीत की शिक्षा नहीं प्राप्त कर सकते थे।

पाठ्यक्रम की समानता तथा विद्यालय के सुसभ्य वातावरण ने जहाँ एक ओर विद्यार्थियों में सद्भावना, प्रेम, प्रभृति आदि सद्गुणों का विकास किया, वहाँ दूसरी ओर संगीत कला के प्रति समाज के विषाक्त दृष्टिकोण को भी विशुद्ध बनाने की चेष्टा की है। फिर खानदानी व्यक्ति ही संगीतज्ञ हो सकता है इस संकुचित विचारधारा को विद्यालयीन संगीत शिक्षा ने मिथ्या सिद्ध कर दिया है।

पहले विद्यार्थी को प्रत्येक समय गुरु की रज़ामंदी पर अवलम्बित रहना पड़ता था। उनकी इच्छा पर ही उसकी संगीत-शिक्षा निर्भर रहती थी। गुरु जो भी कहे उसे करने के लिये विद्यार्थी को तैयार रहना पड़ता था। गुरु-गृह के सभी प्रकार के कार्यों को भी करने के लिये तैयार रहना होता था; किन्तु विद्यालयीन संगीत शिक्षण प्रणाली ने इन तमाम दिक्कतों को दूर कर आज के विद्यार्थियों के लिये अति सुगम, सर्व सुलभ मार्ग प्रस्तुत कर दिया। नियत पाठ्यक्रम नियत समय में व्यवस्थित रूप से तथा शुद्ध भाव से शिक्षक को अनिवार्यत: पढ़ाना ही पड़ता है। जबकि पहले गुरुकुल-शिक्षा-पद्धति में समय और पाठ्यक्रम का कोई बन्धन ही नहीं था। गुरु का जब जी चाहे जो सिखाये न चाहे तो कुछ भी न सिखाये। इससे विद्यार्थी के जीवन का एक अमूल्य भाग नष्ट होता था।

परंतु हमने गुरुकुलीन शिक्षा पद्धति के दोषों को त्यागने के बजाय उसके गुणों की भी उपेक्षा कर दी। परिणामस्वरूप आज संगीत की संस्थागत-शिक्षा-पद्धति भी अनेक दोषों से युक्त हो गई है। इन दोषों के अंधेरे सायों से संगीत कला को बचाने के लिये आज संगीत-जगत में सर्वत्र संस्थागत-संगीत-शिक्षा-पद्धति तथा गुरुकुलीन-शिक्षा-पद्धति के समन्वय किये जाने की सर्वत्र चर्चा है। इस समस्या पर प्रश्नावली प्रविधि द्वारा संगीत प्राध्यापकों तथा छात्रों के मत भी इसी पक्ष में अधिक हैं कि दोनों शिक्षा-पद्धतियों का समन्वय किया जाय।

इसके लिये इस अध्याय के अंतर्गत संस्थागत-शिक्षा-पद्धति में सुधार लाने के तमाम सुझावों

को अमल में लाने के बाद आज के उपस्नातक विद्यार्थी से ऊँचा स्तर बी.ए. के विद्यार्थी का होगा। इसके बाद प्रतिभाशाली योग्य विद्यार्थियों को जिनकी कलाकार बनने की दिशा में रुचि है उन्हें गुरुकुल-शिक्षा-पद्धति पर आधारित विश्वविद्यालयों में अच्छी छात्रवृत्ति देकर (जीविकोपार्जन की समस्या से मुक्त कर) गुरु की छत्रछाया में भलिभाँति शिक्षा दिलवायी जाय तब कोई कारण नहीं रहेगा कि छात्र कलाकार नहीं बन सकेगें। छात्रवृत्ति भी ऐसी देनी पड़ेगी कि वह छात्र के जीवन का पूर्ण भार वहन कर सके। आज की मंहगाई में ५००/- या ८००/- या हजार की छात्रवृत्ति से कोई लाभ नहीं होने वाला है। साथ ही जिन गुरुओं के पास इन छात्रों को शिक्षा दिलवानी है उन्हें भी सरकार को उचित पारिश्रमिक देना चाहिये। इस कार्य को सरकार, बीमा कम्पनियों तथा अन्य बड़ी-बड़ी कम्पनियों मिलकर आसानी से कर सकती हैं।

इसके लिये भी एक प्रारंभिक परीक्षा रखी जाय। वर्तमान शिक्षा पद्धति जो चल रही है इसमें एम.ए. पास विद्यार्थियों को उपरोक्त प्रारंभिक परीक्षा पास करने के बाद इस प्रकार के विभागों में प्रवेश और छात्रवृत्ति दी जाय। यदि विद्यालय के प्रारंभिक स्तर से संगीत अनिवार्य करने के बाद बी.ए. उत्तीर्ण विद्यार्थी को जब नौवीं कक्षा से संगीत अनिवार्य ऐच्छिक विषय बन जाये; उपरोक्त परीक्षा पास करने योग्य समझा जाय। इस प्रकार के गुरुकुलीन-शिक्षा-पद्धति पर आधारित विश्वविद्यालयों की व्यवस्था प्रत्येक प्रांत में हो। इससे जिनमें प्रतिभा और योग्यता होगी वे ही चुने हुये विद्यार्थी ही इस दिशा में अग्रसर होंगें; उनके सामने कलाकार बनने का लक्ष्य होगा और इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये वे परिश्रम, संघर्ष तथा साधना कर सकेगें। तब हमें परिश्रम के अनुपात में परिणाम कहीं अधिक प्राप्त होगा। इन विश्वविद्यालयों को शहर से काफी दूर शांत प्राकृतिक वातावरण में स्थापित किया जाय। ताकि विद्यार्थी शहरी वातावरण की चहल-पहल से आकर्षित होकर अपनी कला साधना से विमुख न हो सकें। इस व्यवस्था से गुरु के सानिन्ध्य

में रहने के कारण शिक्षार्थी के संगीत संस्कार पुष्ट होंगे।
इस व्यवस्था का प्रारंभ हमें सचेत होकर समय रहते करना होगा; क्योंकि अभी हमारे पास ऐसे गुरूजन मौजूद हैं जो गुरुकुलीन-शिक्षा-पद्धति द्वारा शिक्षा प्राप्त किये हुये हैं। उन लोगों ने संगीत-शिक्षा जिन चरणों को पार करके प्राप्त की है उन चरणों को पार कराते हुये शिष्य को शिक्षा देने का धैर्य उन्हीं लोगों में रह सकता है। आज विद्यालयीन शिक्षा प्राप्त किये शिक्षकों को स्वयं साधना के उन चरणों को पार नहीं करना पड़ा तब वे शिष्य को कैसे उस साधना पद्धति द्वारा शिक्षा दे सकते हैं। इस शिक्षा व्यवस्था में शिष्य के सारे गुण-दोष पूर्ण रूप से गुरु के सामने रहेंगे। तथा समय का बंधन न होने के कारण और छात्रों की संख्या कम होने के कारण गुरु शिष्य के दोषों को व्यक्तिगत रूप से ध्यान देकर ठीक कर सकेंगे। और अलग-अलग प्रत्येक शिष्य को उसके बौद्धिक स्तर के और ग्रहण-शक्ति के आधार पर शिक्षा देना संभव होगा। संगीत की इस शिक्षा व्यवस्था के अंतर्गत इस प्रकार की व्यवस्था भी की जा सकती है कि गुरु शिष्य को स्वयं अभ्यास करवा ले। गुरुकुलीन-शिक्षा-पद्धति के इस सिद्धांत को भी हमें पूर्णतः मानना होगा कि, 'एक साधे सब सधे सब सधे सब जायें'। जब चुने हुये शिष्य किसी लक्ष्य को जीवन समर्पित करके आगे आयेंगे तो उनसे कला साधना के लिये हर संघर्ष की आशा की जा सकती है। इस पद्धति से शिक्षा द्वारा शिष्यों को अपने विषय पर पूर्ण अधिकार हो जाता है। संगीत शिक्षा के सुदृढ़ आधार स्तम्भ के लिये शिष्यों को गुरु-शिष्य-शिक्षा-पद्धति के अनुशासन के महत्व को भी समझना होगा। अनुशासन के बिना इस कला की साधना असम्भव है। इन गुरु-गृहों में विद्यार्थियों को अनुकूल संगीत का वातावरण मिल सकेगा। जैसे गुरु का सानिध्य, गुरु-कला का श्रवण, अन्य साथी विद्यार्थियों के रियाज़ तथा तालीम सुनने के अवसर आदि।

केवल संस्थागत-शिक्षा-पद्धति से हमारे सभी उद्देश्यों की पूर्ति हो सकेगी यह असम्भव है। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये हमें समय-समय पर स्वयं प्रयास करने होंगे तभी यह संभव हो सकेगा। केवल किसी शिक्षा पद्धति विशेष को दोषी ठहराकर तो छुटकारा नहीं मिल सकेगा। दोष उस शिक्षा पद्धति विशेष में उत्पन्न होने से पहले स्वयं हमारे अंदर उत्पन्न होते हैं।

११ संगीत संस्थाओं को आर्थिक सहायता –

इस प्रश्न पर लिये गये, प्राध्यापकों के मतों की अधिकता कि संगीत संस्थाओं को आर्थिक सहायता का अभाव रहता है; स्पष्ट करती है कि संगीत विषय को अन्य विषयों की तुलना में निम्न स्थान प्राप्त है। यही कारण है कि आज अन्य विषयों में जो सुविधायें शिक्षा को प्राप्त हैं वे इसमें नहीं प्राप्त हैं। अनुदान पर्याप्त प्राप्त न होने के कारण संगीत शिक्षा के लिये उपयुक्त स्थान, पुस्तकालय, कैसट-लाइब्रेरी, शिक्षकों तथा तबला वादकों की उपयुक्त व्यवस्था तथा वाद्यों की उपयुक्त व्यवस्था नहीं हो पाती है। जिसके कारण संगीत शिक्षा की समुचित व्यवस्था भी नहीं हो पाती है। अन्य विषय के शिक्षकों तथा संगीत विषय के शिक्षकों की आय में भी पर्याप्त अंतर देखा जाता है। संगीत शिक्षकों की आय कम होती है। अन्य विद्यालयों को तो छोड़ ही दें केन्द्रीय विद्यालय के शिक्षकों की ही आय अन्य विषय के शिक्षकों से कम है।

इस संबंध में अनेक अधिकारी व्यक्तियों का यह कथन है कि जितना अनुदान आता है वह ही उपयोग में न लाकर वापस कर दिया जाता है। तब और अधिक अनुदान की बात कैसे की जा सकती है। जितनी छात्रवृत्तियाँ आती हैं यू.जी.सी. के द्वारा दी गयी प्रोजेक्ट राशी, पुस्तकालय के लिया गया अनुदान ही उपयोग में नहीं लिया जाता।

इस प्रकार किसी विषय विशेष के लिये ये दोनों ही प्रकार की लापरवाही उचित नहीं है इससे हानि उस विषय तथा उसके विद्यार्थियों को पहुँचती है।

११ पर्याप्त शिक्षण सहायताओं का प्रयोग –

आधुनिक युग में शिक्षण सहायताओं का प्रयोग शिक्षा का एक अंग माना गया है इनमें विषय से सम्बन्धित चार्ट, श्यामपट, माडल, टेली-फिल्में आदि आते हैं।

परंतु हमारी संस्थागत संगीत शिक्षा आज से ५० साल पहले जहाँ से आरंभ हुई थी वहीं है। आज भी इस प्रकार की शिक्षण-सहायताओं को प्रयोग को संगीत में कोई स्थान प्राप्त नहीं है। प्रश्नावली प्रविधि द्वारा प्राध्यापकों तथा छात्रों के शत-प्रतिशत मत इस प्रश्न के उत्तर में यह मानते हैं कि श्रव्य-दृश्यात्मक जैसे उपकरणों का प्रयोग संगीत शिक्षा के लिये किया जाना चाहिये। जैसे टेप-रेकार्डर, रेकार्ड्स, प्रोजेक्टर-फिल्में, वीडियो, टी.वी. आदि। इस संबंध में नृत्य कक्षाओं तथा वाद्य कक्षाओं के लिये दृश्यात्मक उपकरणों का प्रयोग काफी लाभप्रद होगा। गायन के लिये यह कहा जा सकता है कि केवल श्रव्यात्मक उपकरणों का प्रयोग ही फलदायी होगा; परंतु यदि दृश्यात्मक उपकरण भी हों तो गायन के लिये भी उनका प्रयोग प्रभावी रीति से किया जा सकता है। प्रत्यक्ष गाते हुये कलाकार को देखने से उसके व्यक्तित्व का प्रभाव भी विद्यार्थियों पर पड़ता है। यह प्रयोग कुछ हद तक महफिल गायन की कमी को भी पूर्णता प्रदान करेगा। गायकों के गुण-दोषों को प्रत्यक्ष दिखाकर छात्रों के मन पर उनकी स्पष्ट छाया अंकित की जा सकती है। ग्राफिंग के जरिये वाद्य-यंत्रों पर गलत तरीके से हाथ रखने से किस प्रकार आगे प्रगति नहीं होगी इसे भी दर्शाया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त कलाकारों की जीवनियों

पर आधारित टैली-फिल्में दिखाकर विद्यार्थियों को भविष्य के लिये प्रेरणा भी दी जा सकती है।

इसके साथ ही महाविद्यालयों में समय-समय पर संगीत गोष्ठियों व परिसम्वादों का आयोजन होना आवश्यक है इससे विद्यार्थियों के ज्ञान में वृद्धि होगी और वे विषय की गहराई तक पहुँचने की चेष्टा करेंगे। अच्छे कलाकारों को अनौपचारिक वार्ता के लिये बुलाया जाय।

युवा समारोह व अन्य कार्यक्रमों के लिये शिक्षक अपने निरीक्षण में स्वयं छात्रों से कार्यक्रम तैयार करवायें इससे कार्यक्रमों का आयोजन किस प्रकार होता है इसका ज्ञान छात्रों को हो सकेगा और भविष्य में इस प्रकार की जिम्मेदारी प्राप्त होने पर वे उसे निभा सकेगें। इस प्रकार की क्रियायें उन्हें विषय के ज्ञान में पूर्णरूपेण आत्मनिर्भर बना सकेगीं। इसके साथ ही समय-समय पर संगीत प्रतियोगिताओं का आयोजन करवाना भी विद्यार्थियों के लिये लाभदायक होगा। प्रतियोगिताओं में भाग लेने से उन्हें प्रेरणा मिलेगी और वे विषय की तैयारी में लगकर विषय में अधिक कुशलता प्राप्त कर सकेगें।

१२ वर्तमान परीक्षा पद्धति –

संस्थागत शिक्षण में, विद्यार्थी की सफलता उसके द्वारा शिक्षण-वर्ष के अंत में आयोजित की जाने वाली परीक्षाओं में सफलता से आंकी जाती है। संगीत में परीक्षा प्रणाली की यह विधि शिक्षा के अन्य विषयों में प्रचलित परीक्षा-विधि से ग्रहण की गयी है। इसके अंतर्गत शिक्षण-सत्र के अंत में एक वार्षिक परीक्षा तथा सत्र के मध्य में एक या दो तिमाही अथवा छः माही परीक्षायें आयोजित की जाती हैं। शिक्षा शास्त्रियों द्वारा शिक्षा के अन्य विषयों हेतु परीक्षा की इस प्रणाली को दोषपूर्ण स्वीकार किया जा चुका है। उनकी अनुशंसा के अनुसार शिक्षण, अध्ययन और परीक्षा का कार्य साथ-साथ चलना चाहिये। इस हेतु

सतत (आंतरिक मूल्यांकन) की विधि द्वारा प्रत्येक सप्ताह या पाठ की समाप्ति के उपरांत उसकी परीक्षा संबंधित शिक्षक द्वारा ही ली जानी चाहिये।

शिक्षण अध्ययन व मूल्यांकन में आंतरिक सम्बन्ध है। वास्तव में सतत मूल्यांकन इस त्रिकोण की अनिवार्य भुजा है। इसको महत्व प्राप्त होने का कारण यह है कि यह अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया को आवश्यक सहायता प्रदान करता है। इसके अलावा चूँकि अध्ययन और अध्यापन निरंतर चलते रहने वाली गतिविधि है अतः यह स्वाभाविक ही है कि मूल्यांकन भी सतत ही चलता रहे।

इस सतत आंतरिक मूल्यांकन को वार्षिक परीक्षा के परिणाम में पृथक दर्शाते हुये विद्यार्थी की श्रेणी निश्चित की जानी चाहिये। सतत आंतरिक मूल्यांकन की इस विधि को संगीत की परीक्षाओं हेतु अपनाया जाना बहुत उपयोगी होगा। विद्यार्थी की प्रतिदिन की प्रगति का जो अनुभव शिक्षक को होता है, वह वर्ष के अंत में बाहर से बुलाये गये परीक्षक को नहीं हो सकता।

शिक्षकों द्वारा उनके विद्यार्थियों के सतत आंतरिक मूल्यांकन के सम्बन्ध में सहज में समझा जा सकता है यदि हम संभावित अध्ययन परिणामों जैसे ज्ञान, समझ, इस्तेमाल, विश्लेषण, समन्वय, मूल्यांकन, यत्नों को प्रयोग में लाने की योग्यता, संचार, कौशल, रुचि, प्रशंसा तथा सर्जना की ओर ध्यान दें। यह स्पष्ट है कि इनमें से कुछ को केवल एक बाह्य परीक्षा द्वारा नहीं समझा जा सकता कि विद्यार्थी कितनी अच्छी तरह और कितनी गहराई से अध्ययन कर रहा है। सतत आंतरिक मूल्यांकन द्वारा ही विद्यार्थी महत्वपूर्ण कौशल तथा योग्यताओं जिन्हें बाह्य परीक्षा में सम्मिलित नहीं किया जाता, हासिल करने के लिये प्रेरित हो सकेगा। कभी-कभी अस्वस्थता एवं भय के कारण भी विद्यार्थी अंतिम परीक्षा में वह सब कुछ प्रस्तुत नहीं कर पाता जो कि उसे आता है। अतः उसका शिक्षक ही उसके प्रतिदिन के वास्तविक

मूल्यांकन को सूचित कर उसका परीक्षा परिणाम बनाने में सहायक हो सकता है। आंतरिक मूल्यांकन की इस विधि का व्यवहार ही लाभकारी है।

मंच प्रदर्शन -

संगीत एक प्रयोगशरण कला होने के नाते इसकी परीक्षाओं में, 'मंच प्रदर्शन' का अत्यधिक महत्व है। विधार्थी को अपनी कला का प्रदर्शन श्रोताओं के सम्मुख करना होता है। अतः आरंभ से ही उसमें निर्भिक होकर श्रोताओं के सम्मुख गायन-वादन प्रस्तुत करने की क्षमता का निर्माण होना चाहिये। इसलिये शिक्षण के साथ मंच-प्रदर्शन के अधिकाधिक आयोजनों से विधार्थी की झिझक दूर हो सकती है तथा वार्षिक परीक्षाओं में आयोजित किये गये, 'मंच-प्रदर्शन' में भी अच्छा परिणाम हो सकता है। 'मंच-प्रदर्शन' की यह परीक्षा प्रायः स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम यथा निपुण, अलंकार, एम. म्यूज़, एम. ए. के स्तर पर ही आयोजित की जाती है। संगीत की प्रायोगिक परीक्षाओं में यदि २०० पूर्णांक मौखिक परीक्षा के लिये रखे जाते हैं तो १०० पूर्णांक मंच प्रदर्शन हेतु। स्नातकोत्तर स्तर पर मौखिक परीक्षा में सिखाये गये प्रायोगिक पाठ्यक्रम पर प्रश्नोत्तर किये जाते हैं। तथा मंच प्रदर्शन में आमंत्रित श्रोताओं की उपस्थिति में विधार्थी को अपनी पसंद का राग कम से कम ३० मि. तक गाने या बजाने के लिये कहा जाता है।

इंदिरा कला संगीत विश्वविधालय खैरागढ़ में मंच प्रदर्शन की परीक्षा में विधार्थी द्वारा ३० मि. तक अपनी पसंद का राग गा लेने के बाद परीक्षक पाठ्यक्रम के अंतर्गत पाँच रागों को चुनकर उनमें से किसी एक राग को पुनः ३० मि. तक गाने के लिये परीक्षार्थी से कहता है।[1]

बनारस हिन्दू विश्वविधालय

---

1 इंदिरा कला संगीत विश्वविधालय, पाठ्यक्रम वर्ष ८९-९०, पृ. ५३-५७

में एम. म्यूज़ की प्रायोगिक परीक्षा में ४०० पूर्णांकों में से १५० पूर्णांक मंच प्रदर्शन के लिये निर्धारित हैं। इसमें परीक्षार्थी अपनी पसंद का एक राग ख्याल शैली में, एक ध्रुपद अंग की बंदिश, तथा एक ठुमरी, दादरा या भजन प्रस्तुत करता है। शेष २५० अंकों में पाठ्यक्रम के अन्य रागों तथा उसमें सीखी गयी बंदिशों एवं उसकी गायकी की मौखिक परीक्षा होती है।1

गांधर्व महाविद्यालय मंडल की संगीत विशारद (पूर्ण) परीक्षा के प्रायोगिक में ही मंच प्रदर्शन का प्रावधान किया गया है। प्रायोगिक हेतु निर्धारित २५० पूर्णांकों में से २०० पूर्णांक मौखिक परीक्षा हेतु तथा ५० पूर्णांक मंच प्रदर्शन हेतु रखे गये हैं। इस मंच प्रदर्शन की परीक्षा में विद्यार्थी अपनी इच्छानुसार २० से ३० मि. तक अपनी कला का प्रदर्शन श्रोताओं के सम्मुख करेगा। यहाँ के 'संगीत अलंकार' पाठ्यक्रम में 'संगीत क्रिया और प्रबंध' के प्रथम विभाग में प्रत्येक वर्ष की परीक्षा में एक मौखिक परीक्षा २०० पूर्णांकों की तथा एक मंच प्रदर्शन परीक्षा १०० पूर्णांकों की निश्चित है। इस पाठ्यक्रम के दूसरे एवं तीसरे विभाग में क्रियात्मक मौखिक परीक्षा प्रथम एवं द्वितीय वर्ष में १५०, १५० अंक की होगी तथा मंच प्रदर्शन की परीक्षा ५०, ५० अंक की होगी।2

बड़ौदा विश्वविद्यालय के एम. म्यूज़. के पाठ्यक्रम में पृथक मंच-प्रदर्शन की परीक्षा का कोई प्रावधान नहीं है।3

इसी प्रकार अनेक अन्य विश्वविद्यालयों की प्रायोगिक परीक्षाओं में भी प्रायोगिक हेतु दो परीक्षाओं का प्रावधान तो है, परंतु श्रोताओं की उपस्थिति में 'मंच प्रदर्शन' के रूप में वे आयोजित नहीं की जातीं। इससे श्रोताओं के सम्मुख विद्यार्थियों की मंच प्रदर्शन की प्रतिभा का विकास अवरुद्ध हो जाता है।

---

1 बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, पाठ्यक्रम, वर्ष १९६८-६९ पृ. ८७-९०
2 गांधर्व महाविद्यालय मंडल, पाठ्यक्रम, वर्ष १९८१ पृ. १५, २२, २६
3 बड़ौदा विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम के अनुसार

मौखिक परीक्षा -

स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में प्रायोगिक परीक्षा के अंतर्गत मौखिक परीक्षा हेतु पूर्णांकों का प्रतिशत अधिक होता है। कारण इस परीक्षा में सिखाये गये संपूर्ण प्रायोगिक पाठ्यक्रम पर प्रश्न किये जाते हैं। अभी तक अधिकांश स्थानों पर इस परीक्षा में परीक्षकों द्वारा स्वेच्छाचार किया जाता रहा है। किसी विद्यार्थी से पाठ्यक्रम पर किये जा सकने वाले अनेक प्रश्नों को पूछ लिया जाता है, तो किसी अन्य विद्यार्थी से एक आध प्रश्न पूछ लिया जाता है और उसे सहज ही छोड़ दिया जाता है, जिससे परीक्षार्थियों में असंतोष उत्पन्न होता है। इस अनियमितता को समाप्त करने के लिये बड़ौदा विश्वविद्यालय, इंदिरा कला विश्वविद्यालय, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर विश्वविद्यालय आदि कुछ संस्थाओं ने लिखित प्रश्नपत्र की ही भाँति प्रायोगिक परीक्षा के प्रश्नों को भी निश्चित कर पूर्णांकों को सभी प्रश्नों पर उनके भार के अनुसार विभक्त किया है।

इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ ने अपने प्रारंभिक पाठ्यक्रम 'प्रथमा' से लेकर एम. म्यूज. तथा एम. ए. की प्रायोगिक परीक्षाओं से लेकर 'अंक विभाजन प्रपत्र' तैयार किये हैं। इन प्रपत्रों में संपूर्ण पाठ्यक्रम पर जितने प्रश्न हो सकते हैं; उन सबको सम्मिलत कर, प्रत्येक प्रश्न हेतु अंक निश्चित कर दिये जाते हैं तथा प्रश्नों के दिये गये उत्तरों के अनुरूप परीक्षक द्वारा प्रदान किये गये अंकों के लिये स्थान तथा उन अंकों के अनुरूप उत्तम, मध्यम, साधारण तथा अधम श्रेणियों में से किसी एक पर टिक लगाने तथा अन्य को काट देने के लिये कहा जाता है। इस प्रकार पूछे गये प्रश्न के उत्तर के संबंध में परीक्षक की तात्कालीन प्रतिक्रिया को उसके द्वारा नोट कर लिया जाता है। परीक्षक अंक विभाजन प्रपत्र में रखे गये सभी प्रश्नों को पूछने एवं उसमें पृथक-पृथक अंक प्रदान करने के लिये बाध्य होता है। इन सभी प्रश्नों के उत्तरों हेतु प्रदान किये गये अंकों के योग को अंत में भरा जाता है। इस प्रकार सभी विद्यार्थियों की परीक्षा एक समान लिये जाने की

संभावना बहुत बढ़ जाती है।

अंक विभाजन पत्र में परीक्षक प्रश्न हेतु राग या ताल अपनी इच्छा से निर्धारित करता है। प्रश्नों में गीत प्रकारों को पूर्व निश्चित कर दिया जाता है। किसी प्रश्न के उत्तर में गाने या बजाने का समय उसकी इस प्रश्न की तैयारी व उत्पन्न किये गये प्रभाव पर निर्भर करता है। इस प्रकार सभी प्रश्नों के पूछे जाने पर भी विद्यार्थी अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार उसके उत्तर देते और समय लेते हैं।

प्रायः परीक्षक किसी एक विद्यार्थी की संपूर्ण परीक्षा समाप्त हो जाने के बाद विद्यार्थी द्वारा संपूर्ण परीक्षा में उत्पन्न किये प्रभाव के आधार पर मूल्यांकन करते हैं। इससे उचित मूल्यांकन बहुत कुछ प्रभावित होता रहा है। यह तभी समाप्त हो सकता है जब पूछे गये प्रश्न के उत्तर के समाप्त होते ही उस हेतु अंक प्रदान कर दिये जायें। सभी प्रश्नों को पूछ लेने के बाद सभी के लिये इकट्ठे अंक प्रदान करने में न्याय नहीं हो सकता। अतः इस दृष्टि से 'अंक विभाजन पत्र' के द्वारा प्रायोगिक परीक्षा लिये जाने से इस प्रकार की अनियमितता पर काफी रोक लग सकती है। उदाहरणार्थ बड़ौदा विश्वविद्यालय की 'बी म्यूज.' प्रायोगिक परीक्षा (प्रथम) हेतु 'अंक विभाजन पत्र' हेतु योजना निम्नानुसार है।[1]

बी. म्यूज. डिग्री प्रायोगिक प्रथम की परीक्षा योजना

गायन/ बेला / सितार

ख्याल गायकी – आलाप, बोलतान, लयकारी तथा तानें, ताल-पक्ष व प्रस्तुतीकरण पर सामान्य अधिकार –

	रखे गये अंक
(क) विलंबित तथा मध्यलय ख्याल गायन/वादन दुहराये जाने वाले रागों में से (परीक्षक की पसंद में)	२५
(ख) विलंबित तथा मध्यलय ख्याल गायन/वादन मुख्य रागों में से (विद्यार्थी की पसंद से)	३०

1 बड़ौदा विश्वविद्यालय, पाठ्यक्रम वर्ष ६८-६९, पृ. ५४

(ग) विलंबित तथा मध्यलय गायन/वादन मुख्य	उपलब्ध अंक
रागों में से (परीक्षक की पसंद से)	३५
(घ) तराना परीक्षक की पसंद से	१०
ख्याल में पाठ्यक्रम की तैयारी में ४ से ६ बंदिशें/गतें पूछी जायें ताकि विद्यार्थी की पूर्ण पाठ्यक्रम की तैयारी का पता चल सके	५०
	कुल १५०

प्रायोगिक परीक्षा हेतु 'अंक विभाजन प्रणाली का अनुकरण कुछ अन्य विश्वविद्यालयों जैसे इन्दौर, जयपुर विश्वविद्यालय ने भी किया है।[1] परंतु अधिकांश संस्थाओं में यह योजना पूर्णतः महत्व नहीं प्राप्त कर सकी है

शास्त्रीय लिखित परीक्षा में प्रश्न बैंक की योजना — परीक्षा प्रणाली में सुधार करने के प्रयासों में एक महत्वपूर्ण प्रयास लिखित परीक्षाओं के प्रश्न बैंक बनाकर उसमें से प्रश्न-पत्र हेतु प्रश्नों का चयन करना है। "Because of the pivotal position question occupy in university education, the availability of good quality question through question banking will have an all pervasive effect on various aspects of the educational process ---- Thus a question bank by providing pretested and refind question to every one concered with university education acquirs a versatility in educationdl improvement programmes."[2]

"चूंकि विश्वविद्यालयीन शिक्षण में प्रश्नों की एक अहं भूमिका है अतः प्रश्न बैंक के जरिये स्तरीय

---

1 इन्दौर वि. का एम. ए. संगीत पाठ्यक्रम, १९८९, पृ.६-२१। जयपुर वि. पाठ्यक्रम १९८२ पृ. ९

२ 'दि मेनेजमेंट आफ एग्जामिनेशन्स', डा. अमरीक सिंह, एच. एस. सिंह पृ. ६६

प्रश्न उपलब्ध कराये जाने पर शिक्षण के कार्यकलापों में एक व्यापक प्रभाव पड़ेगा —— इस प्रकार विश्वविद्यालय शिक्षा से जुड़े प्रत्येक व्यक्ति को प्रश्न-बैंक के द्वारा पूर्व परीक्षित एवं संशोधित प्रश्न उपलब्ध कराये जाने पर, शिक्षा सुधार कार्यक्रम में एक परिवर्तन आयेगा।"

इस प्रणाली में अनुभवी शिक्षकों से पाठ्यक्रम के विषयों के सभी पक्षों पर अधिकाधिक प्रश्नों को तैयार करवा कर, उनके भार के अनुसार उन्हें अंक प्रदान किये जाते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण पाठ्यक्रम पर यह प्रश्न बैंक तैयार हो जाने पर इसे शिक्षण सत्र के प्रारंभ से ही सभी विद्यार्थी अध्ययन करते समय इन आदर्श प्रश्नों के अनुसार अपने उत्तरों की तैयारी कर सकता है। यह भी अनुभव किया गया है कि इन आदर्श प्रश्नों के उत्तर भी विद्यार्थी को अनुभव कराये जायें।

"आदर्श प्रश्न बैंक" की यह योजना विश्वविद्यालय अनुदान आयोग दिल्ली द्वारा प्रचारित की गयी। तदनुसार देश के कतिपय विश्वविद्यालयों ने इसे अपने-अपने यहाँ क्रियान्वित भी करने के प्रयास किये हैं।

सिद्धांततः यह कहा जा सकता है कि अभी तक प्रचलित प्रणाली में यह एक महत्वपूर्ण सुधार है। इसके द्वारा शिक्षक और विद्यार्थी दोनों को अपने पाठ्यक्रम के संभावित सभी प्रश्नों का पूर्व ज्ञान रहता है तथा वे अपनी तैयारी तदनुरूप कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त किसी एक व्यक्ति द्वारा प्रश्न बना दिये जाने पर भी उसकी रचना के संबंध में अच्छी तरह से परख किये जा सकने की गुंजाइश रहती है। इसमें प्रश्न के वजन के अनुसार उसके अंक निर्धारित किये जा सकते हैं।

परंतु इसके साथ, इस विधि का एक बड़ा दोष यह है कि इसके सम्पूर्ण शिक्षण व अध्ययन, विषय के सभी पहलुओं पर केन्द्रित न होकर उसपर बनने वाले महत्वपूर्ण प्रश्नों पर ही केन्द्रित हो जाता है। इसके कारण

विषयों से संबंधित स्तरीय पाठ्यपुस्तकों की रचना न की जाकर प्रश्नोत्तर शैली में लिखी परीक्षोपयोगी पुस्तकों का प्रचलन ही बढ़ता है। अतः कम से कम किसी विषय की उच्च शिक्षा में इस विधि का लागू किया जाना उचित नहीं जान पड़ता। विषयों का अध्ययन उनकी समग्रता में कराया जाना ही अधिक आवश्यक है। जो भी हो, कम से कम प्रयोगात्मक स्तर पर इस विधि को लागू किया जा रहा है तथा संगीत के पाठ्यक्रम में भी इस प्रकार के प्रयोग की उपादेयता है।

ग्रेडिंग सिस्टम –

शिक्षा-शास्त्रियों ने परीक्षा प्रणाली में सुधार हेतु एक अन्य विधि 'ग्रेडिंग सिस्टम' की खोज कर विद्यार्थियों के मूल्यांकन को अधिक न्यायोचित एवं तर्कसंगत बनाने का प्रयास किया है। अभी तक मूल्यांकन हेतु अंकों को प्रदान किया जाता रहा है। ३३% अंक प्राप्त होने पर विद्यार्थी उत्तीर्ण, ४५% या ४८% अंक प्राप्त होने पर द्वितीय श्रेणी तथा ६०% अंक प्राप्त होने पर प्रथम श्रेणी एवं ६५% अंक प्राप्त होने पर विशेष योग्यता प्राप्त समझा जाता है। ३३% से ४४% अंक तक तृतीय श्रेणी, ४५% से ५९% अंक तक द्वितीय श्रेणी, ६०% से ६४% अंक तक प्रथम श्रेणी तथा ६५% से १००% अंक तक विशेष योग्यता का क्षेत्र है। अंकों के प्रदान करने की इस विधि में यह दोष है कि इसमें ३३% अंक पाने वाला भी तृतीय श्रेणी में समझा जाता है ४५% अंक तक तृतीय श्रेणी ही रहती है। इसी प्रकार द्वितीय श्रेणी, प्रथम श्रेणी और विशेष योग्यता के क्षेत्र में भी है। किसी प्रश्न के उत्तर में जो भी अंक दिये जाते हैं, परीक्षक की इच्छा पर ही निर्भर होते हैं। किसी प्रश्न को १० में २५ अंक, तो दूसरे को २६ या ३० अंक किस आधार पर दिये जा रहे हैं, इसका कोई समाधानकारक उत्तर नहीं दिया जा सकता। अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि ३५ से ३० अंक प्राप्त करने वाले का उत्तर ज्यादा अच्छा है। परंतु उसी परीक्षक द्वारा कभी-कभी इससे हलके उत्तर हेतु अधिक अंक भी प्रदान कर दिये जाते हैं।

'सेवन पॉइन्ट ग्रेडिंग' सिस्टम में श्रेणी (डिवीज़न) अथवा अंकों के स्थान पर केवल 'ग्रेड' प्रदान किये जाते हैं। उदाहरणार्थ O = out standing, A = very good, C = Average, D = below average, E = poor, F = very poor इन सात ग्रेडों में 'C' अथवा average प्राप्त होने पर उत्तीर्ण की कोटि प्रारंभ होती है। इस प्रकार किसी भी प्रश्न का मूल्यांकन एवं परीक्षार्थियों की श्रेणियाँ भी इन सात ग्रेडों में निश्चित की जा सकती हैं। परीक्षक किसी भी प्रश्न के उत्तर का स्तर साधारणतः इन ग्रेडों में से किसी एक को चुनकर निश्चित कर सकता है, उसे अंकों के रूप में न सोचकर 'ग्रेड' के रूप में सोचना होता है। अतः यहाँ दो एक अंक अधिक या कम देने का मनमानापन नहीं रहता जो उत्तर 'B' good या अच्छा समझा गया उसे सहज में न तो 'A' = very good या बहुत अच्छा समझा गया उसे सहज में न तो 'A' = very good या बहुत अच्छा कहा जा सकता है और न ही उसे अच्छे से घटिया अर्थात 'C' = Average या औसत कहकर श्रेणी च्युत ही किया जा सकता है। इस प्रकार केवल एक अंक प्राप्त होने से डिवीज़न बिगड़ जाने का भय इस ग्रेडिंग प्रणाली में नहीं रहता।

इस प्रकार ग्रेडिंग की यह प्रणाली अधिक विकसित, न्यायोचित और तर्क संगत सिद्ध हुई है। इस प्रणाली को लागू करने हेतु विश्वविद्यालयों से सिफारिश की जानी चाहिये। इसे यदि संगीत की सभी संस्थाओं द्वारा अपनाया जाय तो इससे परीक्षा प्रणाली में सुधार तथा विद्यार्थियों को उचित न्याय दिलाने में मदद हो सकती है।

1 निश्चितता — अंक मूल्यांकन प्रणाली शैक्षिक उपलब्धि का एक बहुत अपूर्ण मापदण्ड है ऐसा क्यों इस संबंध में कुछ कारण नीचे दिये जा रहे हैं —

(अ) परीक्षकों के स्तर में बहुत विभिन्नता होती है हम निश्चय ही यह चाहते हैं कि एक विद्यार्थी के अंक उसके उत्तर की गुणवत्ता से संबंधित हों, न कि इस बात पर कि कौन सा परीक्षक अंक प्रदान करेगा। यदि हम चाहते हैं कि अंक

मूल्यांकन प्रणाली बनी रहे और हम अपना ध्येय भी प्राप्त कर लें तो हमें परीक्षकों के अंकों का स्केल बदलना होगा।
(ब) परीक्षक प्राय: यह निर्णय करते हैं कि कौन उत्तीर्ण हो और कौन अनुत्तीर्ण। यदि उत्तीर्ण अंक ३५ हैं तो वे असामान्य रूप से ३५ अंक प्रदान करते हैं तथा बहुत कम (शायद कोई नहीं) ३४ या ३३। इसी प्रकार की ग्रंथि प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी के न्यूनतम अंकों में देखी जा सकती है।
(स) यह एक सामान्य अनुभव की बात है कि कुछ विषयों जैसे गणित में अधिकतम प्रदत्त अंक १०० हो सकते हैं तथा न्यूनतम ० या शून्य के पास। बहुत से अन्य विषयों में ऐसा कभी नहीं होता - उदाहरणार्थ अधिकतम अंक ६० तथा न्यूनतम २० हो सकते हैं। इस प्रकार १०० अंकों के प्रश्न पत्र में अंकों की वास्तविक परिधि ५० ही है जब विभिन्न प्रश्न पत्रों के अंक जोड़े जाते हैं, तब जिस विषय में अंकों की परिधि अधिक होती है, उनका कुल परिणाम पर असंतुलित प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ हम दो विषयों के अंक जैसे रसायनशास्त्र और गणित को मिलाते हैं; यदि रसायन शास्त्र के अंक की परिधि ३० से ६० के बीच में रहती तो गणित की परिधि ५ से ६५ तक परिवर्तित होती है। इसका परिणाम यह होगा कि गणित का भार रसायन शास्त्र की अपेक्षा तीन गुना होगा। परिणामत: हम विद्यार्थी के गणित में प्रदर्शन का मूल्यांकन करेंगे न कि रसायनशास्त्र का।

② **पहिचान** - प्रतिशत अंक प्रणाली के पक्ष में बहुत कुछ कहा जा सकता है। इसमें उस बारीकी की अपेक्षा की जाती है जो कभी प्राप्त नहीं होती। मूल्यांकन का स्केल अत्यधिक गुमराह करने वाला है। ऐसा लगता है कि अंक एक पूर्ण स्केल पर दिये जाते हैं, परंतु वास्तव में ऐसा नहीं होता कारण, ऐसा पूर्ण स्केल है ही नहीं।

③ **सरलता** - वर्तमान मूल्यांकन प्रणाली बड़ी सरल है, इतनी सरल

कि विभिन्न परीक्षकों के अंकों की तुलना की जाती है, जबकि यह तुलना संभव नहीं है। उनको स्केल नहीं किया जाता, जो किया जाना चाहिये। विभिन्न विषयों के योगों को जोड़ा जाता है, जो नहीं किया जाना चाहिये। वास्तव में यह अन्य सभी स्तरों की कीमत पर सरलता है। यदि हम अंकों के स्थान पर सही ग्रेडिंग प्रणाली को स्वीकार कर लें तो ऊपर कही गई अधिकांश बातों का समाधान हो जायेगा।

परीक्षकों की नियुक्ति —

संगीत संस्थाओं में प्रायोगिक परीक्षा प्रश्न बनाने हेतु परीक्षकों की नियुक्ति की जाती है। प्रायोगिक परीक्षकों हेतु संस्थाओं में एकरूपता नहीं है। कहीं-कहीं अपनी परीक्षाओं का उच्च स्तर प्रदर्शित करने के उत्साह में बड़े-बड़े उस्तादों को जिनका संस्थागत शिक्षण से कोई संबंध नहीं रहा, परीक्षक बना दिया जाता है। ये उस्ताद या तो अत्यधिक उदारता का परिचय देकर विद्यार्थियों को उनके साधारण प्रदर्शन पर भी बहुत अधिक अंक दे देते हैं। या फिर संगीत के गिरते हुये स्तर से चिन्तित होकर एकदम कृपण बन जाते हैं, जिसके कारण विद्यार्थी के साथ न्याय नहीं हो पाता।

अतः प्रायोगिक परीक्षाओं हेतु अनुभवी शिक्षकों की ही नियुक्ति होनी चाहिये ये शिक्षक संस्थागत शिक्षण की समस्याओं से परिचित होने के कारण एक संतुलित दृष्टिकोण से मूल्यांकन करने में अधिक सफल होते हैं।

कुछ संस्थाओं में एक ही परीक्षक से सभी विषयों - गायन, सितार, बेला, नृत्य आदि की परीक्षायें करवा ली जाती हैं। इसके कारण भी सही मूल्यांकन नहीं हो पाता, परीक्षक जिन विषयों का अच्छा ज्ञान नहीं रखता, उनमें अपने अज्ञान को छिपाने के लिये बहुत अधिक उदार हो जाता है और अंकों को लुटाता है अतः जहाँ तक संभव हो, परीक्षकों की नियुक्ति उनके सम्बन्धित विषयों में ही की जानी

कहीं-कहीं प्रायोगिक परीक्षाओं में आंतरिक परीक्षक जो प्रायः परीक्षार्थियों का कक्षा अध्यापक रहता है; ही नियुक्त किया जाता है। इस नियुक्ति का लाभ यह होता है कि वह अपने विद्यार्थियों के हितों की रक्षा करता है। कोई विद्यार्थी घबरा जाने या आवाज़ खराब हो जाने के कारण यदि परीक्षा के समय अपेक्षानुसार खरा नहीं उतरता तो आंतरिक परीक्षक इसके संबंध में बाह्य परीक्षक को समझा सकता है। परंतु इसके साथ ही जब आंतरिक परीक्षक अयोग्य विद्यार्थियों को भी उत्तीर्ण कराने या अधिक अंक प्रदान करने के संबंध में दबाव डालता है तब वह अनुचित हो जाता है। अतः जैसी कि इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय खैरागढ़ में प्रथा है, आंतरिक परीक्षक के रूप में परीक्षा के समय कक्षा-अध्यापक की उपस्थिति अवश्य रहती है तथा उसे बाह्य परीक्षक की हर तरह से सहायता करनी चाहिये, परंतु उसे मूल्यांकन में (अंकों को प्रदान करते समय) सम्मिलित नहीं किया जाता। जहाँ तक विद्यार्थी के के संबंध में शिक्षक की स्वयं की धारणा का प्रश्न है, वह आंतरिक मूल्यांकन के रूप में, परीक्षा परिणामों में सम्मिलित की ही जाती है।

शास्त्रीय प्रश्न पत्रों के परीक्षकों की नियुक्ति के संबंध में भी यह देखा जाता है कि कभी-कभी किसी विषय के उच्चकोटि के विद्वानों को प्रश्न पत्र बनाने एवं उत्तर पुस्तिकायें जाँचने हेतु भेज दिया है। परंतु इनका संबंध शिक्षण से न होने के कारण इनके प्रश्न व मूल्यांकन स्तर, पाठ्यक्रम स्तर के अनुरूप नहीं रह पाता। अतः इसका दुष्परिणाम परीक्षार्थियों पर पड़ता है। इसका अर्थ यह भी नहीं हो जाता कि एकदम साधारण व सामान्य स्तर के शिक्षकों को ही यह कार्य दिया जाये। यह कार्य उन्हीं अनुभवी शिक्षकों को दिया जाना चाहिये। जो संतुलित और निष्पक्ष मूल्यांकन करने में समर्थ हों। ऐसे व्यक्तियों का निष्पक्ष चयन कर पाना निश्चय ही कठिन कार्य है। इस संबंध में पंडित श्यामदास मिश्रा द्वारा दिये गये कुछ सुझाव भी उपयोगी हैं। —

"(१) किसी संस्था को चलाने मात्र पर किसी को परीक्षक जैसे महत्वपूर्ण पद पर आसीन न करें। इसके लिये एक आचार-संहिता और कमेटी बनायें, ताकि उन्हें परीक्षक बनाया जाय, उनकी विधिवत् जाँच-परीक्षा हो कि वे परीक्षक बनने की जानकारी रखते हैं या नहीं? क्रियात्मक के साथ शास्त्र की जानकारी रखने वाला ही कुशल परीक्षक हो सकता है।

(२) नशेबाज़ व्यक्तियों को परीक्षक कदापि न बनायें।

(३) सदाचारी ईमानदार और गुणी व्यक्ति को ही परीक्षक के रूप में नियुक्त करें।

(४) परीक्षक का चुनाव जिला-स्तर व राज्य-स्तर पर किया जाय; जैसे, यदि 'क' जिला के परीक्षक 'ख' जिले में जायें तो 'ख' जिले के परीक्षक अन्य जिलों में नियुक्त हों, 'क' जिले में नहीं। यदि राज्य स्तर पर चुनाव हो, तो बंगाल के परीक्षक 'बिहार' में जायें; बिहार के परीक्षक दूसरे राज्य में जायें बंगाल में नहीं। इससे परीक्षा स्थिति में काफी सुधार होगा। परीक्षक केन्द्र-व्यवस्थापकों की नाजायज बातें स्वीकार करने के लिये बाध्य नहीं होंगे।

आज धड़ाधड़ संगीत परीक्षा-केन्द्र खुलते जा रहे हैं और उतनी ही तेज़ी से मान्यतायें भी दी जा रही हैं। इससे भी संगीत अधःपतन की ओर अग्रसर हो रहा है। नये केन्द्र को मान्यता देने से पहले उसकी विधिवत् जाँच-पड़ताल हो; उसके उद्देश्य, पवित्रता तथा कार्य-प्रणाली का अवलोकन किया जाय। इसके लिये एक आचार संहिता हो जिसका पालन कठोरता से किया जाय। मैं स्वीकार करता हूँ कि सभी केन्द्र व्यवस्थापक, संस्था के प्राचार्य व अन्य अधिकारी गण एक से नहीं होते। फिर भी अधिकांश संस्थाओं में भारी अनियमिततायें होती हैं उनके लिये यहाँ कुछ सुझाव प्रस्तुत हैं —

१ आज जीवन के हर पहलू में राजनीति का बोलबाला है कोई विभाग इससे अछूता नहीं। पर संगीत के मंदिरों को तो राजनीति से दूर ही रखना चाहिये। संगीत पूजा है, इबादत है। यदि इसमें गंदी राजनीति का प्रवेश हो तो यह कहाँ तक न्यायोचित

होगा। प्रायः देखा जाता है कि केन्द्र व्यवस्थापक या प्राचार्यगण अपने खास शिष्यों को अथवा अपने विद्यालय में शिक्षा पा रहे विद्यार्थियों को अधिकाधिक नंबर दिलाने के लिये जी तोड़ पैरवी करते हैं। दूसरे विद्यालयों में सीख रहे विद्यार्थियों को फेल कराने या खराब डिविज़न दिलाने जैसी निंदनीय हरकतें करते हैं। इससे अच्छे विद्यार्थियों का मनोबल टूटता है।

(२) संस्था में विधिवत संगीत-वर्ग की व्यवस्था करवायें संगीत-संस्थाओं या विद्यालयों को पैसा कमाने की मशीन बनायें। उद्देश्य पवित्र होगा तो सफलता निश्चय ही मिलती है। विद्यालयों में अच्छे गुणी शिक्षकों द्वारा अच्छी शिक्षा की व्यवस्था होने से विद्यालय प्रगति की ओर बढ़ेगा। यश भी मिलेगा साथ ही परीक्षकों से भी नाजायज पैरवी की आवश्यकता नहीं पड़ेगी

(३) परीक्षकों की नियुक्ति होते ही उन्हें सहयोग दें तथा जल्दी-जल्दी परीक्षा सम्पन्न कराने की दिशा में पहल करें। इससे आप भी निश्चिंत होंगे और परीक्षाफल भी शीघ्र घोषित किया जा सकेगा। अक्सर देखा जाता है कि केन्द्रव्यवस्थापकगण परीक्षक को सहयोग नहीं देते। कई बार तो आये हुये परीक्षक को भी लौटा देते हैं। एक बार मैं एक केन्द्र पर परीक्षक के रूप में गया। केन्द्र व्यवस्थापक ने भीतर से कहला दिया- "जाकर कह दो, केन्द्र व्यवस्थापक पंजाब यात्रा पर गये हैं।" मुझे कुछ शक हुआ और मैं सामने की दुकान पर बैठ गया। लगभग दो घंटे बाद उसी मकान से एक सज्जन निकले। मैंने तत्काल दुकानदार से उक्त सज्जन की ओर इशारा करके पूछा, तो उसने उनको केन्द्र व्यवस्थापक बताया। मैंने लपककर केन्द्र व्यवस्थापक महोदय को अपना परिचय दिया। उस समय उसका चेहरा देखने लायक था।[१]" अस्तु परीक्षकों को धोखा न देकर सहयोग देना चाहिये, ताकि परीक्षायें निर्धारित तिथि के अंदर समाप्त हो सकें। इससे विद्यार्थी व अभिभावकों में भी विद्यालय के प्रति आस्था बढ़ेगी।

---

१ संगीत १९८४ मई, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में संगीत की परीक्षायें --- पृ. ४६

④ विद्यार्थी को संगीतशास्त्र संबंधी जानकारी भी देनी चाहिये, ताकि लिखित परीक्षाओं में विद्यार्थी प्रश्नपत्र स्वयं हल कर सके। अधिकांश केन्द्र-व्यवस्थापक लिखित परीक्षाओं में कुछ अधिक व्यस्त हो जाते हैं, अर्थात् स्वयं परीक्षार्थी को उत्तर बता देते हैं। ऐसे विद्यार्थीगण शास्त्र ज्ञान की तो आवश्यकता ही महसूस नहीं करते। वे पूर्णतया केन्द्र अधीक्षकों तथा प्राचार्यों पर ही निर्भर करते हैं और यह उनकी आदत ही बन जाती है। ऐसे परीक्षार्थी परीक्षक द्वारा शास्त्र संबंधी प्रश्न पूछे जाने पर घबरा जाते हैं तथा जवाब ही नहीं दे पाते।

'संगीत भास्कर' में 'मैट्रिक होल्डर' एक विद्यार्थी से जब पूछा झूमरा ताल की दुगुन बताओ तो वह जवाब नहीं दे सका और दुःख तब हुआ जब वह झूमरा ताल विभाग, ताली, खाली के बारे में भी नहीं बता सका।

⑤ केन्द्र-व्यवस्थापक द्वारा लिखित परीक्षाओं में या क्रियात्मक परीक्षाओं में गलत तरीके से नकल कराये जाने या पैरवी द्वारा पास कराये जाने पर कहाँ क्या हानियाँ होती हैं दृष्टव्य है-

(क) ऐसा परीक्षार्थी उन्हीं केन्द्र व्यवस्थापक के लिये बाद में सिरदर्द बन जाता है।

(ख) ऐसे परीक्षार्थी साक्षात्कार में बुरी तरह से फेल होते हैं या फिर वहाँ भी पैरवी का सहारा लेते हैं।

(ग) ऐसे परीक्षार्थी संगीत जगत में कुछ भी नहीं कर पाते तथा प्राप्त डिग्री पर भी उन्हें सफलता नहीं मिल पाती।

(घ) ऐसे परीक्षार्थी काम निकल जाने पर उन्हीं केन्द्र-व्यवस्थापकों की हँसी उड़ाते हैं तथा उन्हें सम्मान नहीं देते।

(च) ऐसे केन्द्र-व्यवस्थापक अपने विद्यालय की हँसी तो उड़वाते ही हैं साथ ही समाज में अपनी प्रतिष्ठा भी खो बैठते हैं।

(छ) ऐसे परीक्षार्थी यदि किसी तिकड़मवश सरकारी सेवा में आ जाते हैं, तो स्थिति और भी भयावह हो जाती है। क्योंकि उन्हें जो अधकचरा और अधूरा ज्ञान प्राप्त है, वह दूसरों को देते फिरते हैं और संगीत के पतन का कारण बनते हैं।

मान्य परीक्षकों को भी कुछ सुझाव यहाँ प्रस्तुत हैं —

① कोई पद पाना कठिन नहीं है अपितु उसका निर्वाह करना व मर्यादा बनाये रखना कठिन है। परीक्षक-पद का बड़ा ही महत्व है। परीक्षक को दूसरे शब्दों में विश्वास की संज्ञा दी जा सकती है। परीक्षक का कार्य अत्यन्त ही सावधानी पूर्वक निभाया जाना चाहिये, इसमें ज़रा भी त्रुटि नहीं बरतनी चाहिये। परीक्षक को अपनी गरिमा का हर समय ख्याल रखना चाहिये। परीक्षक की प्रतिष्ठा के साथ संबंधित केन्द्र, समीति बोर्ड आदि की प्रतिष्ठा जुड़ी होती है। परीक्षक की गलत हरकतों से समीतियों, केन्द्रों तथा बोर्डों की प्रतिष्ठा धूमिल होती है। परीक्षक को दूध का दूध पानी का पानी अलग करना चाहिये। जैसे परीक्षार्थी हों उसी के अनुसार मूल्यांकन करना चाहिये। इससे परीक्षकों की प्रतिष्ठा बढ़ती है।

② परीक्षकों को केन्द्र व्यवस्थापकों की पैरवी नहीं स्वीकार करनी चाहिये। इससे उनकी स्वयं की प्रतिष्ठा तो गिरती ही है, अच्छे परीक्षार्थियों को भी ठेस पहुँचती है

③ परीक्षक को रिश्वत किसी भी स्थिति में नहीं लेनी चाहिये। बाद में यह बात छिपी भी नहीं रहती और प्रतिष्ठा भी गिरती है। जो लेन-देन करते अर्थात् घूस देते हैं, बाद में वे इसका प्रचार भी करते हैं। इससे विद्यालयों, परीक्षकों, बोर्डों तथा समीतियों की जग हँसाई भी होती है।

④ परीक्षकों को अपना आचार-विचार सही रखना चाहिये। परीक्षकों को लोग ऊँची नज़रों से देखते हैं, उनके रहन-सहन, आचार-व्यवहार पर गौर करते हैं। उनको अपने आदर्श के रूप में देखना चाहते हैं और परीक्षक को वह आदर्श प्रस्तुत करना चाहिये। इसके लिये निम्नलिखित केन्द्र-बिन्दुओं पर निर्भर किया जा सकता है —

(क) परीक्षक को यथासंभव अपने खर्च से ही रहने की व्यवस्था

करनी चाहिये। यदि इसमें कठिनाई हो तो भोजनादि की व्यवस्था तो स्वयं के खर्च से ही करनी चाहिये।

(ख) परीक्षक को नशे पानी से सर्वथा बचना चाहिये।

(ग) परीक्षक को किसी भी हालत में परिक्षार्थी अथवा अभिभावकों द्वारा दी गयी भेंट स्वीकार नहीं करनी चाहिये।

(च) परीक्षक को निश्चित अवधि में ही परीक्षा सम्पन्न कर अनुशासन का माहौल बनाना चाहिये। इससे परीक्षार्थियों अभिभावकों तथा केन्द्राध्यक्षकों व परीक्षकों के प्रति सम्मान की भावना बढ़ती है

(छ) परीक्षक को केन्द्र व्यवस्थापकों से तुरंत संपर्क कर परीक्षा-तिथि निर्धारित करनी चाहिये तथा शीघ्र परीक्षा संपन्न कराने की दिशा में पहल करनी चाहिये। अनावश्यक देर करने से या टालमटोल की प्रक्रिया अपनाने से परीक्षार्थियों में असंतोष तो बढ़ता ही है, परीक्षा-फल भी शीघ्र घोषित नहीं हो पाता है।

(ज) परीक्षक बंधुओं को सदैव स्मरण रखना चाहिये कि वे अपनी कोई कमजोरी प्रदर्शित न करें। केन्द्रव्यवस्थापगण या केन्द्र के अन्य अधिकारीगण परीक्षकों की कमजोरी पकड़ने की चेष्टा करते हैं और उन्हीं कमजोरियों से फायदा उठाकर गलत कार्य संपादित कराते हैं।"[1]

मूल्यांकन —

प्रायोगिक परीक्षाओं में बाह्य परीक्षक को प्रभावित करने की अनेक संभावनायें रहती हैं। परीक्षार्थियों के नाम जाति इत्यादि ज्ञात न होने पर अथवा परिक्षार्थियों के शिक्षक के विषय में

---

1 संगीत, मई १९८४, वर्तमान परिवेश में संगीत परीक्षाओं की व्यवस्था, पृ. ४२

ज्ञात न होने पर या ज्ञात होने पर भी मूल्यांकन प्रभावित होता है। अतः संस्थाओं को चाहिये कि वे परीक्षार्थियों से संबंधित इन बातों को परीक्षकों को ज्ञात न होने दें। लिखित परीक्षा की भाँति प्रायोगिक परीक्षा में भी परीक्षक के सम्मुख परीक्षार्थी का केवल रोल नंबर ही आना चाहिये।

सामान्यतया उत्तर पुस्तिका के मूल्यांकन हेतु एक परीक्षक को उस प्रश्नपत्र से संबंधित सभी उत्तर पुस्तिका भेज दी जाती हैं। जब इन उत्तर पुस्तिकाओं की संख्या बहुत अधिक हो जाती है तो परीक्षक इनका सही मूल्यांकन नहीं कर पाता। एक दिन में अधिकाधिक उत्तर पुस्तिकायें जाँचने की जल्दी में परीक्षक उत्तर पुस्तिकाओं को सरसरी निगाहों से देखकर ही अंक दे देता है। कभी-कभी तो उत्तर को बिना पढ़े केवल उनकी पृष्ठ संख्या के आधार पर ही अंक दे दिये जाते हैं। शिक्षा प्रणाली में सुधार हेतु कुछ विश्वविद्यालयों में केन्द्रित मूल्यांकन व्यवस्था शुरू की गयी है। इसमें सभी परीक्षकों को संस्था में बुलाकर उनसे वहीं मूल्यांकन करवाया जाता है। परंतु वहाँ भी एक दिन में उत्तर-पुस्तिकाओं को जाँचने की अधिकतम संख्या निश्चित न होने के कारण भी एक दिन में परीक्षक अधिकाधिक उत्तर पुस्तिकायें जाँच कर कार्य समाप्त करने की जल्दी में रहते हैं। अतः जब तक एक सीमित संख्या में उत्तर पुस्तिकायें जाँचने का नियम नहीं बनाया जायेगा, इस प्रकार की अनियमितता एवं अनुचित प्रवृत्ति पनपती रहेगी। संगीत विषय में यद्यपि बहुत अधिक उत्तर पुस्तिकायें नहीं होतीं परंतु जहाँ अनेक केन्द्रों की परीक्षा एक साथ होती है, वहाँ यह संख्या अवश्य बढ़ जाती है। अतः संगीत संस्थाओं में भी इस संबंध में सावधानी की आवश्यकता है।

परीक्षा केन्द्र व्यवस्था –

परीक्षाओं को सुचारु रूप से सम्पन्न कराने के लिये यह भी आवश्यक होता है कि परीक्षा के केन्द्र

पर परीक्षायें संचालित करने के लिये समुचित व्यवस्था हो। एकमात्र संगीत शिक्षण प्रदान करने हेतु चलाये जाने वाले अनेक संगीत विद्यालयों में इस संबंध में अनेक कमियां देखने में आती हैं। ये संगीत विद्यालय अपने यहाँ विद्यार्थियों की अधिकाधिक संख्या बनाये रखने हेतु इन विद्यार्थियों के परीक्षा परिणामों को प्रभावित करने के तरह-तरह के प्रयत्न करते हैं। प्रायोगिक परीक्षक को प्रभावित करने के साथ ही (जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है) कभी-कभी लिखित परीक्षाओं में भी अनुचित बातों को बढ़ावा देते हैं। ऐसे अनेक प्रकरण सामने आये हैं कि जिसमें विद्यालय के शिक्षक ही प्रश्नपत्रों की गोपनीयता भंग कर, अपने विद्यार्थियों को आने वाले प्रश्नपत्र के प्रश्नों को बता देते हैं या फिर परीक्षार्थियों द्वारा परीक्षा भवन में अनुचित साधनों का प्रयोग किये जाने पर उसकी अनदेखी भी करते हैं। इस प्रकार के भ्रष्ट आचरणों पर रोक लगाने के लिये निम्नलिखित निश्चित कदम उठाये जाने चाहिये। जैसे किसी एक परीक्षा केन्द्र पर दूसरे महाविद्यालय के प्राचार्य की केन्द्र-अधीक्षक के रूप में नियुक्ति करना तथा उसके द्वारा प्रायोगिक परीक्षाओं का संचालन भी करवाना। इस व्यवस्था से प्रश्नपत्रों की गोपनीयता भंग होना कम से कम समाप्त हो गया। बाहरी केन्द्र अधीक्षक के परीक्षा भवन में रहने तक, विद्यार्थियों द्वारा अनुचित साधनों के प्रयोग करने पर भी अंकुश लगा। इंदिरा कला विश्वविद्यालय खैरागढ़ से संबंधित अनेक संगीत संस्थाओं में उपरोक्त प्रकार की व्यवस्था अपनायी गयी है।

इन संगीत विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में जितने अच्छे बड़े-बड़े कक्ष या सभागृह हैं, वहाँ लिखित परीक्षायें बड़े सभागृहों या कक्षों में आयोजित की जाने पर बाहरी केन्द्र अधीक्षक, इन परीक्षा-भवनों एवं कक्षों में चल रहे कार्य पर पूरी निगरानी रख सकता है। परंतु यदि यह परीक्षा कक्ष छोटे-छोटे अथवा दूर-दूर हैं तो उस स्थिति में इस बाहरी केन्द्र अधीक्षक के लिये भी सभी कक्षों को एक साथ देख सकना एवं उस पर नियंत्रण रख सकना संभव नहीं रहता।

इन संगीत विधालयों में लिखित परीक्षायें संचालित करने के लिये कक्षों के साथ फर्नीचर का भी अभाव रहता है। यह फर्नीचर अन्य संस्थाओं से मिल जाने पर तो ठीक-ठीक हो जाता है। परंतु जहाँ यह अन्य संस्थाओं से भी उपलब्ध नहीं हो पाता, वहाँ इसे किराये पर लाना होता है। किराये पर, ब्याह-शादियों में इस्तेमाल की जाने वाली बड़ी-बड़ी डाईनिंग टेबल एवं कुर्सियाँ उपलब्ध होती हैं। यदि इस प्रकार की एक टेबल पर परीक्षार्थी बैठें तो बहुत अधिक कक्षों या भवनों की आवश्यकता पड़ती है और यदि एक टेबल पर तीन-चार विद्यार्थी बैठा दिये जायें तब बातचीत करने व नकल करने में सुविधा होती है। लिखित परीक्षा संचालन की यह समस्यायें (फर्नीचर की) संगीत संस्थाओं में फर्नीचर की आवश्यकता न होने के कारण उत्पन्न होती हैं। अन्य शिक्षा संस्थाओं का सहयोग लेकर अथवा रविवार के दिन लिखित परीक्षा रखकर इस समस्या का हल किया जा सकता है। विशेषकर विश्वविधालयों से सम्बद्ध महाविधालयों में से अनेक में कक्षों की कमी व फर्नीचर का अभाव देखा जा सकता है। अतः ऐसी स्थिति में परीक्षाओं का सुचारु रूप से संचालन इन विधालयों के प्राचार्यगणों एवं शिक्षकों की निष्ठा एवं सावधानी पर ही निर्भर रहता है।

परीक्षा पद्धति में सुधार के लिये उपरोक्त सावधानियों के साथ; परीक्षा-पद्धति में व्याप्त अनियमितताओं, भ्रष्टाचार, उसके गिरते स्तर और संगीत-शिक्षा में उत्पन्न समस्याओं के निराकरण हेतु आचार्य भातखंडे की परीक्षा संबंधी नीतियों का पुनर्चिन्तन आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। आचार्य भातखण्डे ने ग्वालियर के तत्कालीन शासक के सहयोग से 'माधव संगीत महाविधालय' की स्थापना सन् १९१८ में की। महाविधालय की शैक्षणिक प्रगति, संचालन, निरीक्षण, परीक्षण आदि का संपूर्ण दायित्व आचार्य के कंधों पर था। वे प्रतिवर्ष महाविधालय के छात्रों की परीक्षा स्वयं लिया करते थे तथा परीक्षा प्रतिवेदन भी लिखा करते थे। वे बड़े निष्ठावान, अनुशासनप्रिय,

ईमानदार, पक्षपातहीन कुशल परीक्षक थे।

परीक्षा में अच्छी सफलता की प्राप्ति के लिये कक्षा में विद्यार्थियों की नियमित उपस्थिति अनिवार्य है। विद्यार्थियों की अनुपस्थिति से कक्षा अध्ययन में बाधा उत्पन्न होती है। यद्यपि परीक्षा में सम्मिलित होने के लिये आज भी ६५% उपस्थिति का नियम बनाया गया है, लेकिन इस नियम का कठोरता से पालन नहीं किया जाता। विद्यार्थियों की अनुपस्थिति से अभ्यास व परीक्षाफल पर पड़ने वाले कुप्रभाव के कारण आचार्य भातखण्डे ने २१ अप्रैल १९२५ के प्रतिवेदन में लिखा है - "विद्यार्थी शाला में नियमित रूप से उपस्थित नहीं रहते, ऐसी शिकायत शिक्षकों की ओर से हमेशा आती ही रहती है। इस विषय में अब विद्यार्थियों को धीरे-धीरे ताकीद देना उचित है। मैं ऐसी सूचना देता हूँ कि विद्यार्थी महीने में तीन से अधिक बार अनुपस्थित रहेगा, आगामी ६: माह तक बिना उचित कारण के जिनकी अठारह से अधिक अनुपस्थिति रहेगी उन्हें वार्षिक परीक्षा में बैठने की अनुमति न दी जाय।"[1]

अत: भातखण्डे जी विद्यार्थियों की उपस्थिति पर अधिक बल देते थे। परीक्षा के समय इसकी जाँच भी किया करते थे कि किसी विद्यार्थी की कम उपस्थिति होते हुये भी परीक्षा में सम्मिलित तो नहीं किया जा रहा। प्रत्येक कक्षा अध्यापक को विद्यार्थी का 'उपस्थिति पत्रक' परीक्षक के समक्ष रखना पड़ता था।

आज के परीक्षक को यह स्वतंत्रता नहीं है कि वह किसी विद्यार्थी का उपस्थिति-संबंधी लेखा-जोखा पूछ सके। परीक्षा-संचालक-संस्था अथवा विश्वविद्यालय ने किसी विद्यार्थी को प्रवेश-पत्र दिया है, इसका तात्पर्य यह है कि विद्यार्थी की उपस्थिति नियमानुसार है। विश्वविद्यालय द्वारा प्रवेश-पत्र जारी करने का आधार संस्था प्रमुख अथवा आचार्य द्वारा किया गया प्रमाणीकरण होता है। आचार्य उसे प्रमाणित करते हैं, विद्यार्थियों

---

१ भातखण्डे स्मृति ग्रंथ, पृ. ११८

की उपस्थिति-पंजी के आधार पर जिसे कक्षा अध्यापक प्रतिदिन भरते हैं। यह तो हुई नियम की बात। लेकिन नियम का पालन इस संबंध में कड़ाई से हो रहा है अथवा नहीं इसे संगीत अध्यापक जानता है। अतः आचार्य भातखण्डे जी ने संगीत-शिक्षा के लिये तत्काल विषम परिस्थिति में भी अनुपस्थिति पर कड़ा प्रतिबंध लगाया था। वर्तमान में संगीत शिक्षा ग्रहण करने वाले विद्यार्थी ढूंढने की आवश्यकता नहीं पड़ती। अब स्वयं प्रेरित होकर विद्यार्थी संगीत-महाविद्यालयों में प्रवेश लेते हैं, फिर भी इस नियम के पालन में शिथिलता दिखाई देती है। इस नियम की अवहेलना के कारण संगीत परीक्षा में विद्यार्थियों में स्वरहीनता-तालहीनता परिलक्षित होती है यह तथ्य कटु सत्य व चिन्तनीय है। आचार्य भातखण्डे ने इस संबंध में गहरी चिंता व्यक्त करते हुये लिखा है-" तीसरे, चौथे, तथा पांचवें वर्ष में लड़कों की अनुपस्थिति के कारण बहुत नुकसान हो रहा है। कभी-कभी तो शिक्षकों के किये हुये परिश्रम व्यर्थ ही जाते हैं।"[1] इसीलिये उन्होंने सन् १९२८ में छात्रों की अनुपस्थिति में कड़ा प्रतिबंध लगाने की सूचना जारी की।[2] परीक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने के लिये आचार्य के इन कथनों का महत्व समझना आवश्यक प्रतीत होता है।

परीक्षा में सम्मिलित करने के लिये विद्यार्थी की पात्रता का निर्धारण करना आचार्य भातखंडे की परीक्षा-पद्धति की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता है। प्रारंभ में मेडिकल और इन्जीनियरिंग कोर्स में भी प्रवेश देने के लिये हायर सेकेन्डरी में प्राप्त उच्चतम अंकों का आधार माना जाता था, परंतु बाद में जब इस शिक्षा के प्रति समय की माँग के अनुसार छात्रों की रुचि बढ़ी, तब पी. ई. टी. व पी. एम. टी. प्रतिस्पर्धी परीक्षा का नियम बनाया गया, उसी तरह भातखंडे जी

1 भातखण्डे स्मृति ग्रंथ, परीक्षा प्रतिवेदन सन् १९२५, पृ. ११८.
2 " " " , " " " १९२८, पृ. १२१

ने संगीत-विषय के प्रति बढ़ती हुई रुचि व आदर-भाव देखकर अंतिम कक्षा की परीक्षा में प्रवेश देने के लिये 'जाँच-परीक्षा' का बंधन लगाना आवश्यक समझा और परीक्षा प्रतिवेदन सन् १९२५ में इसका उल्लेख किया "चतुर्थ व पंचम कक्षाओं की चतुर्थ माह में एक जाँच परीक्षा लेने की प्रथा अब प्रारंभ की जाय। इस परीक्षा में जो विद्यार्थी सम्मिलित होंगे उन्हें उत्तीर्ण होने पर वार्षिक परीक्षा में सम्मिलित होने दिया जाय। अब लोगों में इस विषय के प्रति रुचि बढ़ रही है तथा शास्त्र के प्रति आदर भी बढ़ रहा है। अतः ऐसे कुछ निर्बंध लगाना आवश्यक होगा।"1 इस प्रकार का प्रतिबंध लगाने का कारण संगीत के प्रति बढ़ती हुई रुचि ही नहीं था। इसका दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष यह भी था कि वे एक अच्छे कलाकार, शास्त्रकार व कुशल संगीत अध्यापक तैयार करना चाहते थे।

विद्यार्थी का स्तर हमेशा ऊँचा रहे इसका ध्यान परीक्षा लेते समय आचार्य भातखंडे जी सदा रखते थे। पाठ्यक्रम की पूर्ण तैयारी होने के साथ-साथ विद्यार्थी का प्रदर्शन अच्छा हो, यह उनकी परीक्षा पद्धति का तीसरा व प्रमुख बिंदु था बिना पूर्ण तैयारी व गायकी के अच्छे प्रदर्शन के पंचम वर्ष के छात्रों को प्रमाण-पत्र देने की अनुमति नहीं देते थे। उनका कहना था-" उनके (फाइनल के छात्र) अच्छे बुरे गायन पर तथा तैयारी पर लोकमत बनने की संभावना है, अतः उन्हें फिलहाल प्रमाण पत्र देना उचित न होगा।"2

उनकी परीक्षा-पद्धति का स्वरूप 'सेमेस्टर' परीक्षा-पद्धति के तुल्य था, जिसमें पाठ्यक्रम की पूरी तैयारी करने के लिये अवसर प्रदान किया जाता है एवं पुनः परीक्षा देने का प्रावधान होता है। "वे जब तक विद्यार्थी से संतुष्ट नहीं होते थे तब तक प्रमाण-पत्र देने की अनुमति प्रदान करने के लिये छः माह का समय देते थे इस संबंध में सन् १९२१ के प्रतिवेदन

---

1 भातखंडे स्मृति ग्रंथ, परीक्षा प्रतिवेदन, २१ अप्रैल १९२५, पृ. ११६
२ " " " , " " , ३०.१२.१९२५, पृ. ११८

का अंश देखिये, "तृतीय वर्ष कक्षा के लड़कों द्वारा अपनी तैयारी उत्तम दिखाने पर छः मास बाद अगली कक्षा में भेज देने से कोई बाधा नहीं।"[1]

इतना ही नहीं वे बड़ी सूक्ष्मता से परीक्षा लेते थे। कोर्स पूरा होने के बाद भी विद्यार्थी के प्रदर्शन में खूबसूरती का होना अनिवार्य मानते थे। उदाहरणार्थ "इस कक्षा में --- नाम का विद्यार्थी है। उसका भी कोर्स पूरा होकर गायकी ३० रागों की हुई है। परीक्षा में ऐसा पाया गया कि उसके स्वर स्थानों में कुछ कमजोरी है तथा तान जितनी खूबसूरत होनी चाहिये वैसी नहीं है। बचे हुये पंद्रह राग तथा गला तैयार करने के लिये छः मास की अवधि चाहिये। आगामी निरीक्षणों के समय इन रागों की बड़ी परीक्षा लेकर यदि उसने अपनी सारी तैयारी बताई तथा तानें जलद साफ और सुरीली गायीं तो उसे जून अथवा जुलाई में सर्टिफिकेट दिया जाय।"[2]

आज तो विद्यार्थी ऐच्छिक राग गाकर तथा अनेक विकल्पों के सरल मार्गों से परीक्षा पास कर लेता है। अच्छे अंक प्राप्त कर अच्छी श्रेणी भी बना लेता है। एक बड़ा ख्याल, एक-दो रागों में छोटे ख्याल, एक ध्रुपद तथा तराना या सरगम-गीत अथवा लक्षण गीत गाकर अपनी नैया पार कर लेता है। इस प्रकार परीक्षा प्रणाली में कोर्स पूरा करने का औचित्य ही नहीं दिखाई पड़ता।

वास्तव में आचार्य भातखंडे द्वारा निर्मित पांच-वर्षीय पाठ्यक्रम में शिक्षा का स्वरूप प्रशिक्षण जैसा ही था। इसमें गायकी की प्रशिक्षण अवधि सामान्यतः पाँच वर्ष रखी गयी थी। यदि कोई विद्यार्थी पाँच वर्ष में पूर्ण नहीं कर सकता तो उसे पूरा करने में छः या सात वर्ष भी लग सकते थे। इसलिये परीक्षा के समय तक निर्धारित

---

1 भातखंडे स्मृति ग्रंथ, परीक्षा प्रतिवेदन सन १९२१, पृ. ११३
2 " " " , " " , ३०.१२.१९२५ पृ. १२५

पाठ्यक्रम की तैयारी पूर्ण न हो सकने की दशा में उसे पूरा करने का पुनः अवसर प्रदान किया जाता था। वर्तमान परीक्षा में प्रायः एकवर्षीय पाठ्यक्रम है और विद्यार्थी को उस परीक्षा के लिये निर्धारित पाठ्यक्रम ही पूरा करना पड़ता है। पिछले वर्षों के पाठों की पुनरावृत्ति अथवा उन पर आधारित प्रश्न अब नहीं पूछे जाते लेकिन आचार्य भातखंडे की परीक्षा नीति यह थी कि छात्र को पाँचवें वर्ष के पाठ्यक्रम की तैयारी के साथ-साथ विगत कक्षाओं के लिये निर्धारित पाठ्यक्रमों की तैयारी भी पूर्ण करनी होती थी। इसलिये अंतिम वर्ष की परीक्षा अत्यंत कड़ाई से ली जाती थी और ४५ रागों की पूर्ण गायकी-सहित उत्तम तैयारी के बिना न तो परीक्षा में विद्यार्थी को उत्तीर्ण घोषित किया जाता था और न प्रमाण पत्र ही दिया जाता था। आज जबकि एक वर्षीय पाठ्यक्रम पर ही परीक्षा होती है, फिर भी छात्रों की तैयारी पूर्ण नहीं रहती और वे फिर भी परीक्षा में सफल हो जाते हैं। इसलिये आज के डिग्रीधारी संगीत विद्यार्थियों में गुणवत्ता का अत्यधिक अभाव पाया जाता है।

प्रमाण-पत्र के संबंध में आचार्य भातखंडे वरिष्ठ अध्यापकों की सहमति का आदर करते थे। वे लिखते हैं— "परीक्षा उतीर्ण कर लेने पर भी ज्येष्ठ शिक्षकों की सहमति से प्रमाण पत्र दिये जायें।"[1]

अंतिम परीक्षा का परिणाम उत्तम हो इस तथ्य को ध्यान में रखते हुये आचार्य भातखण्डे ने परीक्षा पद्धति में कक्षा डिमोशन का भी प्रावधान रखा था। यह उनकी परीक्षा प्रणाली की चौथी विशेषता है। यह प्रावधान उन्होंने मंद बुद्धि तथा आलसी छात्रों के लिये किया था। "चतुर्थ वर्ष के लड़कों में स्वर-स्थान उत्तम होना चाहिये। छः माह बाद उस कक्षा में जो छात्र मंद बुद्धि व आलसी प्रतीत हों उन्हें पिछली अर्थात् तीसरी कक्षा में भेज देना चाहिये।"[2]

---

1 भातखंडे स्मृति ग्रंथ, परीक्षा प्रतिवेदन, नवंबर १९२५, पृ. १२४
2 " " ", " ", सन १९२१, पृ. ११४

संगीत अन्य कला विषयों जैसे राजनीति अर्थशास्त्रादि से भिन्न है, क्योंकि उनका अध्ययन व प्रयोग क्रियात्मक साधना पर ही पूर्ण रूप से आधारित है। कक्षा-अध्यापकों में अन्य विषयों के लिये एक घंटा अथवा पैंतालिस मिनट का कालखंड पर्याप्त हो सकता है, लेकिन संगीत के कक्षा-अध्यापन के लिये अपर्याप्त है। संगीत परीक्षार्थियों की स्वरहीनता का एक प्रमुख कारण यह भी है। संगीत महाविद्यालयों एवं अन्य कला-महाविद्यालयों (जहाँ संगीत निकाय है) में छात्रों को अभ्यास के लिये पर्याप्त समय नहीं मिल पाता। प्रारंभ में संगीत पूर्ण रूप से गुरुमुखी विधा है, इसलिये यह भी संभव नहीं हो पाता कि छात्र कक्षा में सीखे हुये पाठों को घर में दुहराकर तैयार कर लें। गुरु की अनुपस्थिति में अभ्यास करने से आवाज़ में अनेक प्रकार के दोष उत्पन्न होने की संभावना बनी रहती है। साथ ही स्वर, ताल आदि का भी अन्देशा नहीं होता। इसलिये स्वर-ताल आदि की सूझ-बूझ उत्पन्न करने के लिये अन्य विषयों की अपेक्षा संगीत-शिक्षा में अधिक समय लगता है। ऐसा कहा जा सकता है कि आचार्य भातखंडे ने इस समस्या के लिये 'कक्षा डिमोशन' का नियम बनाया, ताकि कमज़ोर विद्यार्थियों को अभ्यास करने का पर्याप्त समय मिल सके और उनकी कमज़ोरी दूर की जा सके। यद्यपि वर्तमान परीक्षा-प्रणाली में इस नियम के लिये कोई स्थान नहीं है, तथापि यह नियम आवश्यक है कि छात्र में यदि कक्षा-स्तर की योग्यता का विकास नहीं हुआ है तो उसे उत्तीर्ण ही न करें।

संगीत विषय में परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिये अन्य विषयों की तरह प्राप्तांक ३३% का नियम परीक्षक के लिये ऐसा सरलतम रास्ता है, जिसमें से संगीत परीक्षाओं को निकाल दिया जाता है। आचार्य भातखंडे ने संगीत-परीक्षाओं के स्तर को उच्चतम बनाये रखने के लिये केवल दो श्रेणियों का सुझाव दिया था – " आगामी वर्ष से फाइनल परीक्षा उत्तीर्ण विद्यार्थियों की प्रथम व द्वितीय इस प्रकार की श्रेणियां घोषित की जायें। सभी लड़के समान स्तर के

हैं ऐसा कहने का अवसर नहीं रहेगा। ऐसी श्रेणियाँ बी. ए., एम. ए. आदि परीक्षाओं में होती हैं। यही व्यवस्था संगीत में भी की जाय।"[1]

आज संगीत परीक्षाओं में निम्नतम श्रेणी का प्रावधान होने से उनका महत्व घट रहा है। इसीलिये संगीत परीक्षा के संबंध में विधार्थियों की व अन्यों की यह धारणा बन चुकी है कि संगीत विषय में पास होना आसान है, इसमें तो कोई विधार्थी फेल ही नहीं होता। संगीत परीक्षाओं की कृपालुता व परीक्षा नियम की शिथिलता संगीत-विधार्थियों के कल्याण में कितनी साधक है तथा अन्य विषयों की तरह कक्षा-अध्यापन के लिये कालखंड निर्धारण संगीत-शिक्षा के गुणात्मक विकास में कितना पोषक है, ये दोनों बातें आचार्य भातखंडे के उपर्युक्त कथन के संदर्भ में विचारणीय हैं।

सिद्धांत व प्रयोग का समन्वय भातखंडेजी की परीक्षा-पद्धति की पाँचवीं विशेषता है। सिद्धांत और प्रयोग का अन्योन्याश्रित संबंध है। सिद्धांतहीन प्रयोग लँगड़ा और और प्रयोगहीन सिद्धांत अंधा है। पुराने उस्तादों के संगीत शास्त्र संबंधी ज्ञान शून्यता ने प्रयोग व सिद्धांत के मध्य इतनी गहरी और विस्तृत खाई पैदा कर दी थी कि हमारे संगीत शास्त्र के अध्ययन की परंपरा लुप्तप्राय होकर छिन्न-भिन्न हो चुकी थी। जिसका ग्रंथन करने में आचार्य-भातखंडे को अधिक परिश्रम करना पड़ा। आचार्य भातखंडे द्वारा प्रचलित शिक्षा प्रणाली का यह प्रमुख अंग रहा है कि संगीत के क्रियात्मक ज्ञान के साथ-साथ उसका शास्त्रीय ज्ञान भी आवश्यक समझा गया। इसलिये वे इस दिशा में अत्यन्त सजग थे वे जानते थे कि चिंतन के बिना परंपरागत क्रिया का मात्र मौखिक अंधानुकरण संगीत कला के विकास में बाधक है। अतः उन्होंने अपनी परीक्षा पद्धति में शास्त्र चिंतन को पुनः जीवन प्रदान करने के लिये लिखित परीक्षा का प्रावधान किया। प्रारंभ में उन्होंने केवल

---

1 भातखंडे स्मृति ग्रंथ, पृ. १३१

मौखिक परीक्षा का नियम बनाया था, लेकिन बाद में जब उन्हें महसूस हुआ कि संगीत संबंधी शास्त्रीय सिद्धांतों की मात्र मौखिक शिक्षा देने से विद्यार्थियों का ज्ञान पक्का नहीं होगा, तब उन्होंने यह सुझाव दिया - "इस वर्ष की परीक्षा में निम्न बातें ध्यान में आई हैं। लड़कों ने थ्योरी का महत्व अभी भी ठीक प्रकार से नहीं समझा है। इसकी ओर विशेष ध्यान देना आवश्यक है पिछले दो वर्षों का काम भूलते जा रहे हैं। यह तो अत्यंत असंतोषकारक सिद्ध होगा।"[1]

"मैं अब ऐसी योजना करने वाला हूं कि फिलहाल केवल उच्च तीन कक्षाओं में थ्योरी की परीक्षा लिखित रूप से हो। इस योजना से लड़कों का ज्ञान पक्का तथा वे इस विषय पर लिख भी सकेंगे।"[2]

वर्तमान परीक्षा-प्रणाली में लिखित परीक्षा का प्रावधान अवश्य है, लेकिन संगीत-परीक्षार्थियों की उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन करने से साफ जाहिर होता है कि उनमें सैद्धांतिक अध्ययन के प्रति रुचि का अभाव है, जिसका कुप्रभाव उनके परीक्षाफल में भी परिलक्षित होता है। प्रायोगिक परीक्षा के समय भी यह तथ्य सामने आया है कि जिस लक्षणगीत को छात्रगण गाते हैं, उसमें प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों व निरूपित सिद्धांतों का वे अर्थ या भाव स्पष्ट करने में असमर्थ होते हैं। यह अत्यंत शोचनीय है। अतः इस संबंध में आचार्य भातखंडे के विचार चिंतन करने योग्य हैं।

आचार्य भातखंडे जी परीक्षा संबंधी नीतियाँ, वर्तमान-परीक्षा-प्रणाली में व्याप्त दोषों को दूर करने में आज भी हमारे लिये निर्देशक सिद्धांत हैं। संगीत-शिक्षा में गुणात्मक सुधार व परीक्षा के स्तर को ऊंचा उठाने हेतु इन निर्देशक सिद्धांतों के आधार पर कुछ कड़े प्रतिबंधों का नियमन करना अब आवश्यक है। परीक्षा-पद्धति में इन कठोर प्रतिबंधों को लागू

---

1 भातखंडे स्मृति ग्रंथ, परीक्षा प्रतिवेदन, सन् १९२१
२ " " " , " " , सन् २९-४-१९२६, पृ. १३४

किये जाने के संबंध में प्राध्यापकों व छात्रों के भी बहुसंख्यक मत प्राप्त हुये हैं।

आज इस बात की नितांत आवश्यकता है कि संगीत के स्तर में सुधार हो और यह सिर्फ कल्पना का विषय नहीं है, बल्कि विचार करके अभियान के रूप में इसे कार्यान्वित करना होगा। और इस कार्य के लिये आज की युवा पीढ़ी को आगे आना होगा। कुछ वर्ष पूर्व संगीत के अच्छे कलाकार अधिक पढ़े-लिखे नहीं मिलते थे। आज शिक्षित कलाकारों की संख्या बढ़ी है; अनेक शोधकार्य हो रहे हैं। लोग वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने लगे हैं। ऐसे समय में संगीत के प्रचार-प्रसार के नाम पर अनियमिततायें नहीं बरतनी चाहियें, बल्कि अधिक मेहनत कर अच्छे कलाकारों का निर्माण करना है ताकि पूर्वजों की इस अमूल्य धरोहर की रक्षा की जा सके। संगीत शिक्षा का ध्येय केवल डिग्रियाँ हासिल करना न हो, बल्कि अच्छे कलाकार के रूप में विद्यार्थीगण उभरें यह हो। स्वर, लयहीन व्यक्तियों को संगीत की डिग्रियाँ नहीं दिलानी चाहिये। इससे आने वाली पीढ़ियों का भारी नुक्सान होगा। ऐसे व्यक्ति मंच पर भले ही सफलता न पा सकें पर शिक्षक, व्याख्याता अवश्य बन बैठते हैं। आज ऐसे शिक्षकों प्रोफेसरों की भरमार होती जा रही है, जिन्हें स्वर, लय, ताल, भाव, रस, काकु, ताल, लयकारी, मींड, गमक आदि की ज़रा भी जानकारी नहीं है। जिन्हें स्वयं ज्ञान नहीं वे दूसरों को क्या तैयार करेंगे। अतः इस दिशा में शीघ्रातिशीघ्र उपरोक्त सुधारात्मक उपायों का अपनाया जाना आवश्यक है। यदि श्री ज्योतिन भट्टाचार्या के शब्दों में कहें तो वे इस प्रकार हैं- "आज जीवन के मध्याह्न में समस्त कलाकारों और संगीत-शिक्षण संस्थाओं से यह आग्रह करता हूँ कि नये सिरे से सोचें, नये दृष्टिकोण को अपनायें, नई पद्धतियाँ लागू करें, अन्यथा संगीत की चिन्मयी प्रतिमा खंडित होने का भय है। यद्यपि देर तो हो चुकी है पर अभी सर्वनाश नहीं हुआ है।"[1]

---

1 संगीत, १९८६ जनवरी-फरवरी, पं. ज्योतिन भट्टाचार्य, पृ. 63

(ब) शास्त्रीय संगीत का प्रस्तुतिकरण

शास्त्र पर जो संगीत आधारित है वही शास्त्रीय संगीत कहलाता है। अब हमें देखना यह है कि आखिर ऐसा शास्त्रीय संगीत जो देश की संस्कृति का अविभाज्य अंग है; लोकप्रिय क्यों नहीं? हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि जब कोई शास्त्रीय संगीत का आयोजन होता है तब श्रोता या तो आपसी बातों में मशगूल होते हैं, या बीच कार्यक्रम में ही उठकर जाने लगते हैं। मुश्किल से पाँच प्रतिशत श्रोता ध्यान से सुनते पाये जाते हैं। इस स्थिति का मुख्य कारण कहा जाता है कि जनता की शास्त्रीय संगीत के प्रति अज्ञानता है, किन्तु कहावत है कि गुड़ तो गूँगे को भी मीठा लगता है। इस कहावत के अनुसार यदि संगीत में रंजकता है तो निश्चय ही श्रोतागण ध्यानावस्थित होकर सुनेंगे भले ही वे कलाकार के कौशल को न समझें।

इस संबंध में अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित हैं जैसे गायकों के गाने से हरिण आ जाते थे, दीपक राग का तानसेन द्वारा गाया जाने पर अग्नि प्रज्वलित होना तथा उनकी पुत्रि द्वारा मेघ राग गाकर जलवृष्टि द्वारा उनकी प्राण-रक्षा होना, 'टप्पा' गीत की गायकी का प्रचार करने वाले गुलामनबी के पिता गुलामरसूल के गायन के समय बुलबुल पक्षियों का उनके आसपास एकत्रित हो जाना। इसका उत्तर तो यही है कि आज हमारे संगीत में इतना प्रभाव नहीं रहा है। संगीत में उस प्रभाव के अभाव के अनेक कारण हैं जिनका अध्ययन हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं। उनमें से एक बड़ा कारण है, 'शास्त्रीय संगीत के प्रस्तुतिकरण का उचित रीति से न होना।'

आज मनुष्य का जीवन बहुत व्यस्त बन चुका है। मशीनीकरण के इस युग में मानव जीवन भी यांत्रिक बनकर रह गया है। फिर भी मानवीय भावनायें तो शेष रहती ही हैं जिनके कारण वह मात्र मशीन नहीं बन सकता। अतः आज इस परिवर्तित वातावरण के अनुरूप ही लोग कम समय में

अधिक से अधिक मनोरंजन चाहते हैं। यही कारण है कि हम देखते हैं कि साहित्य में प्रबंध काव्य का स्थान फुटकर कविता ने, नाटक का स्थान एकांकी ने और उपन्यास का स्थान कहानी ने ले लिया है। इसी प्रकार चित्रकला में माडर्न आर्ट ने जन्म लिया है। जिसका उद्देश्य संक्षिप्त में अधिक भावनाओं की अभिव्यक्ति करना है। अतः समयानुसार शास्त्रीय संगीत के माधुर्यपूर्ण प्रस्तुतिकरण के अनेक मुद्दों पर ध्यान देना आज कलाकार के लिये अतिआवश्यक हो गया है; तभी उसकी कला और वह प्रशंसा के भागी हो सकेंगे।

समयानुसार शास्त्रीय संगीत की शैलियों में सदैव परिवर्तन होता रहा है। ख्याल गायन जो कि आज पक्का गाना, रागदारी-संगीत या शास्त्रीय-संगीत कहा जाता है लगभग डेढ़ सौ वर्षों से प्रचार में आया है; इसके पूर्व ध्रुवपद गायन का प्रचार था अतः शास्त्रीय संगीत को लोकप्रिय बनाने लिये गायन में ख्याल गायकी के साथ ठुमरी, टप्पा, होरी, गज़ल, भजन व गीत आदि शैलियों को भी पर्याप्त स्थान देने की आवश्यकता है। इसके पीछे उद्देश्य यह है कि सर्वप्रथम जिन श्रोताओं के लिये कार्यक्रम करना है उनकी कार्यक्रम सुनने की क्षमता ध्यान में रखनी चाहिये आज कई श्रोता ऐसे हैं जो शास्त्रीय संगीत सुनने की समझ नहीं रखते फिर भी उत्सुकता व प्रतिष्ठा के लिये ऐसे जलसों में जाते हैं। इसलिये उसे यदि वहाँ सुरीलापन, ताल व लय में सम्बद्धता मिले, तो वह उस जलसे में बैठ सकता है। रसिक श्रोताओं में यदि शास्त्रीय संगीत समझने वाले अल्प संख्या में उपस्थित होते हैं तो उनके सामने केवल शास्त्रीय संगीत का कार्यक्रम सफल नहीं होगा। ऐसे कार्यक्रमों में थोड़ा शास्त्रीय संगीत, थोड़ा उप-शास्त्रीय संगीत, कुछ भजन, गज़ल, गीत इस प्रकार के भिन्न गीत प्रकारों को प्रस्तुत करना आवश्यक है। ठुमरी, गीत, गज़ल श्रोता को इसलिये कर्णप्रिय लगते हैं कि उसमें स्वर, ताल, लय के उत्कृष्ट मिश्रण के साथ साहित्य का सम्मिश्रण उसे और आनंददायी बनाता है। इन गीत प्रकारों के माध्यम से

इन साधारण श्रोताओं की रुचि कलाकार शनैः-शनैः शास्त्रीय संगीत की ओर मोड़ सकता है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हम आज और आज से ५० साल पहले के शास्त्रीय संगीत के श्रोताओं की संख्या के अंतर द्वारा लगा सकते हैं। दूसरा उदाहरण महाराष्ट्र में प्रचलित नाट्य गीतों से प्राप्त होता है। इन नाट्य गीतों द्वारा आज महाराष्ट्र की जनता में अन्य राज्यों की अपेक्षा शास्त्रीय संगीत के प्रति रुचि व समझ अधिक दिखाई पड़ती है। कलाकार श्रोता को शास्त्रीय संगीत की समझ न होने के कारण बेवकूफ न समझे। इस संबंध में स्वयं अमीरखान का कथन उल्लेखनीय है, "जिस प्रकार कोई भी व्यक्ति स्वादिष्ट भोजन का आनंद बिना पाकशास्त्र की शिक्षा के तथा सुन्दरता का मज़ा बिना सौन्दर्य मर्मज्ञ हुये ले सकता है; उसी प्रकार सुमधुर और संयत संगीत का आनंद भी बगैर शास्त्रज्ञ हुये लिया जा सकता है।"[1] उच्च कोटि के कलाकार अपनी कला में ऐसे तत्वों का समावेश करते हैं जिनका नैसर्गिक आनंद कोई भी व्यक्ति पंचेन्द्रियों द्वारा ले सके। 'कला' समझने की वस्तु तो कला मर्मज्ञ के लिये ही है। रसिक श्रोता के लिये तो वह विशुद्ध आनंद की वस्तु है। जो बगैर समझ के भी आनंददायी होनी चाहिये। जिस सभा में शास्त्रीय संगीत के सच्चे रसिक अधिक प्रमाण में उपस्थित हैं उस सभा में कलाकार ने अपने शास्त्रीय संगीत का पूर्ण कला भंडार खोल देना चाहिये। कलाकार की सच्ची कदर ऐसे ही कार्यक्रमों में हो सकती है।

ललित कलाओं का उद्देश्य होता है सौन्दर्य की एक अनोखी सृष्टि निर्माण करके रसिकों के मन में निरपेक्ष आनंद की निर्मिति करना। सौन्दर्य की मूलभूत प्रेरणा तो प्रत्येक मनुष्य के हृदय में स्वाभाविक रीति से होती है। परंतु प्रत्येक मनुष्य को किसी कला-माध्यम द्वारा सौन्दर्यानुभूति

---

1 संगीत, १९८५ अगस्त, 'संगीत कलाकार व कला आस्वादक' पृ. ५-६

प्रकट करने की क्षमता नहीं होती; यह कार्य सृजनशील तथा सिद्ध कलाकार ही कर सकता है। कलाकार के हृदय में सौंदर्य उदय होता पलता और पुष्ट होता है और अपने रुचि के कलामाध्यम द्वारा अभिव्यक्त होता है। जब सृजनशील कलाकार चित्र, शिल्प, शब्द अथवा संगीत द्वारा अपनी सौन्दर्य कलाकृति रसिकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है तब संवेदनशील रसिकों को भी निरपेक्ष आनंद की प्राप्ति होती है। चित्र, शिल्प, वास्तुकलायें दृश्य हैं और ये तैयार होने के पश्चात् भी हमेशा के लिये जीवित रह सकती हैं। इन कलाओं के प्रदर्शन के लिये भी कलाकार की प्रत्यक्ष उपस्थिति की भी आवश्यकता नहीं होती है। परंतु संगीत श्राव्य कला है और कला-प्रदर्शन समाप्त होते ही कलावस्तु हमेशा के लिये समाप्त हो जाती है; अतः संगीत ही एक ऐसी कला है जिसमें कलाकार को अपनी कला की अभिव्यक्ति रसिकों के सम्मुख ही करनी पड़ती है। इसमें कला की अभिव्यक्ति के लिये कलाकार और रसिक दोनों की ही उपस्थिति अनिवार्य है अतः संगीत कला का प्रस्तुतिकरण अत्यन्त महत्वपूर्ण है। बिना प्रस्तुतिकरण के न रसिकों को कलाकार की कला का परिचय होगा और न कलाकार को अपनी कला का रसिकों पर क्या प्रभाव पड़ता है इसका पता लगेगा। अतः ये प्रस्तुतिकरण ही कलाकार को कला की ऊँचाइयों के शिखर पर पहुँचाते हैं यदि वह इनके प्रति पूर्णतः सचेष्ट हो।

उस्ताद अमीर खान कि, "संगीत में आज सुकून नहीं मिलता तो हम संगीत में गलती नहीं निकाल सकते। क्योंकि हम लोग संगीत तो वही गा रहे हैं जो हमारे बुजुर्ग गाते थे। मगर इसके पेश करने के तरीकों और रियाज़ करने के तरीकों में अहम फर्क आ गया है। नतीज़न आज संगीत नीरस हो गया है।"[1] उस्ताद अमीर खान भी मानते हैं कि संगीत में असर पैदा करने के लिये उचित रीति से रियाज़ के

---

1 संगीत, १९६० नवम्बर, 'उस्ताद अमीर खाँ' पृ. 16

पश्चात् उसे पेश करने के तौर-तरीकों पर भी कलाकार का ध्यान देना आवश्यक है तभी उसका सरस संगीत रसिक श्रोताओं को रस से सराबोर कर सकेगा।

अतः शास्त्रीय संगीत भविष्य में अपना उन्नत स्थान बना सके उसके लिये संगीत का प्रस्तुतिकरण कहाँ? किस तरह के श्रोताओं में, किस प्रकार हो इन तथ्यों का महत्वपूर्ण योगदान है।

मुगल काल में संगीत कला के प्रस्तुतिकरण के लिये महफिलों का आयोजन होता था। महफिल का शाब्दिक अर्थ है :- 'जलसा', 'समाज' या नाचने व गाने बजाने की जगह। लेकिन महफिल का अर्थ उससे कई गुना अधिक व्यापक था। महफिल जैसी लगाई जाती थी, जिस तरह के श्रोता एकत्रित होते थे और गायन-वादन के प्रतिमान जिस तरह से निश्चित किये जाते थे। वह सब महफिल का एक अविभाज्य अंग बन गया था। यहीं पर नये तथा पुराने गायकों अथवा वादकों का आपसी मुकाबला होता था। घरानेदार विशिष्ट उस्तादों का हुनर तथा रागों की शुद्धता की परख भी इन्हीं महफिलों में हुआ करती थी। तथा कलापारखी गुणी लोग सही गाने-बजाने वालों पर अपनी प्रशंसा की मुहर लगाकर उन्हें संगीत समाज में मान्य करते थे।

वक्त के साथ महफिल के स्वरूप में बदलाव आता गया। रजवाड़े खत्म हुये और उनकी बैठकों के बजाय रेडियो और संगीत अकादमी के, 'कंसर्ट' होने लगे। अमीर-उमरा के स्थान पर गुणीजनों के समाज ने कितने ही म्यूज़िक सर्कल चलाये। संगीत संस्थायें बनीं इन्होंने सार्वजनिक संगीत सम्मेलनों की शुरुआत की। इस बदलाव में संगीत महफिलों की उपयोगिता एकदम खत्म हो गई हो ऐसा नहीं है; वह चाहे म्यूज़िक सर्कल हो अथवा गुणीजनों की बैठकें - महफिल के ही अनेक रूप उभरते रहे और कई स्तरों पर श्रोता और संगीतज्ञ का आपसी रिश्ता फिर से बनाने की कोशिशें

भी चलती रही। महफिलों में जहाँ एक तरफ व्यक्तिगत मनोरंजन या रसग्रहण की प्रक्रिया अपने-अपने स्तर पर चलती है वहीं इन महफिलों का सार्वजनीन महत्व भी बन रहा था। सामान्य व्यक्ति का इन महफिलों में शामिल होना तब भी समाज में एक अलग ढंग की प्रतिष्ठा दिलाता था और अब भी; ये दूसरा मुद्दा है कि तब साधारण व्यक्ति इन महफिलों के इतने करीब नहीं था जितना आज।

परंतु महफिलों की पुरानी गरिमा जैसे-जैसे नष्ट हुई उनकी रंगत उखड़ने लगी। इसमें आदमी का बहुधंधी होना, रोजी-रोटी की फिक्र, और समय का अभाव, साथ ही संगीत को सिर्फ मनोरंजन और वह भी व्यावसायिक कसौटियों पर परखे जाने के कारण महफिलों में 'रसास्वादन' की प्रक्रिया शनैः-शनैः धीमी पड़ रही है। संगीत की बड़ी कानफ्रेन्सों में जाने वाला श्रोता अपनी ऊँची हैसियत दिखाने या कलाप्रेमी का टप्पा प्राप्त करने के लिये एकत्रित होता है। गायक-वादक के साथ उसकी किसी प्रकार की साझेदारी नहीं बन पाती है। और कला की उत्कृष्टता के लिये श्रोता की प्रतिक्रिया बहुत महत्वपूर्ण होती है। वहीं या तो संगीतकार को उबार लेती है या डुबा देती है; अतः इस प्रकार प्रतिक्रियाहीन अथवा अनाड़ी श्रोता कलाकार को आगे बढ़ने में कतई मददगार नहीं होता। फिर भी कलाकार अपने प्रस्तुतिकरण के प्रभाव के फलस्वरूप अनाड़ी श्रोता की रुचि भी कला प्रेम की ओर मोड़ सकता है। इस कलाप्रेम के फलस्वरूप धीरे-धीरे अनाड़ी में भी महफिलों में निरन्तर उपस्थिति से कलाकारों को सुनते-सुनते राग की समझ, लय-ताल का सही अंदाज, ध्रुपद, धमार, टप्पा, ठुमरी की विभिन्न गायन शैलियों का मजा, बंदिशों का आनंद आने लगे यह तब ही संभव है जब कलाकार अपनी कला को हर दृष्टि से परिष्कृत करने के बाद उसका प्रस्तुतिकरण भी उचित रीति से करे। अतः महफिलें न जमने के पीछे गायक अथवा वादक का भी हाथ रहता है जो बिना महफिल का मन समझे हुये अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं। इसके लिये कलाकार का प्रदर्शन पूर्वनियोजित

होना आवश्यक है। इसके लिये उसे कुछ मुद्दों पर ध्यान देना आवश्यक होगा इसके साथ ही कलाकार की अपनी सही समझ और महफिलों का अनुभव भी किसी महफिल को जमाने में बड़ा जरूरी है। इस संबंध में डा. प्रभा अत्रे का विचार उल्लेखनीय है, "महफिल गायन में ऐसा प्रयत्न रहता है कि जानकार की बुद्धि का आवाहन किया जाय और साधारण रसिकों के अंतःकरण में आन्दोलन निर्माण हो।"[1]

इस प्रकार का प्रभाव श्रोता पर यदि शास्त्रीय संगीत के श्रवण से पड़ेगा तो निश्चय ही वह युग एक बार फिर शास्त्रीय संगीत के उत्थान का स्वर्णयुग होगा। और इसके लिये कलाकार को शास्त्रीय संगीत के उचित रीति से सम्पन्न होने के बाद स्वयं की कला के प्रस्तुतिकरण के संबंध में कुछ बातों का विचार करके प्रदर्शन करना होगा वे तथ्य इस प्रकार हैं —

1 समय सीमा की निश्चितता —

किसी भी कलाकार को अधिक से अधिक समय तक अपनी कला का प्रदर्शन करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये। जो कलाकार कला प्रदर्शन के लिये जितना अधिक समय लेता है, वह उतना ही उत्कृष्ट माना जाता है यह भावना पूर्णतया निर्मूल है। उत्कृष्ट प्रदर्शन वही है जहाँ जनता कलाकार के कला प्रदर्शन की समाप्ति तक उसकी ओर निस्तब्ध आकर्षित रहे और वास्तविक संगीत का आनंद उठाती रहे यही प्रदर्शन की सुनिश्चित समय सीमा होगी। इसके लिये कलाकार को पहले से ही अपनी अभिव्यंजना शैली पर विचार कर लेना चाहिये। राग के सुंदर स्वर समुदायों को चुनकर जनता के सामने प्रस्तुत करना आवश्यक होगा। पर ध्यान रहे उसकी अभिव्यक्ति शैली से ऐसा न मालुम हो कि अमुक कलाकार का गायन रुका हुआ है, अथवा उसे बहुत जल्दी है थोड़े ही समय में सब करामात दिखाकर कार्यक्रम समाप्त करना चाहता है। कार्यक्रम पूर्वनियोजित होने के बाद भी उसकी नैसर्गिकता नष्ट न हो।

1 सं. क. वि. १९८६, जनवरी, 'मेरी महफिल मेरा कलाविचार' पृ. ६

२ राग चयन —

महफिल की सफलता के लिये कलाकार को राग के चयन पर भी ध्यान देना होगा। गायक कलाकार को राग चयन करते समय मुख्यतया अपने स्वभाव तथा कंठधर्म का ध्यान रखना होगा। इसके लिये कलाकार को अपने अनुरूप ऐसा राग चुनना चाहिये जिस पर विशेष नियंत्रण व रुचि हो इसके अतिरिक्त श्रोता वर्ग की रुचि का ध्यान भी राग चयन करते वक्त कलाकार को रखना होगा। कुछ प्रचलित राग चंचल प्रकृति के होते हैं और शीघ्र ही जनता पर प्रभाव डालने वाले होते हैं जैसे खमाज, पीलू, भैरवी, मांड, तिलक कामोद, आदि इस प्रकार के रागों में कलाकार को उपशास्त्रीय बंदिशों, भजन गज़ल, ठुमरी आदि तैयार रखनी चाहिये। ताकि श्रोताओं की पसंद के अनुरूप वह उनका प्रयोग कर सके।

३ कला प्रदर्शन में कलात्मकता तथा भावात्मकता का संतुलित समावेश हो —

किसी भी कलाकार की कला का मूल्यांकन केवल भाव-पक्ष अथवा केवल कला-पक्ष की दृष्टि से नहीं किया जाता वरन् दोनों के संतुलित व उत्कृष्ट समावेश से किया जाता है। इसलिये कलात्मक चमत्कार में पड़कर भावात्मक-पक्ष की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। कला के सैद्धांतिक कला पक्ष को वे श्रोता समझ सकेंगे जो उसके ज्ञाता हैं। इसके विपरीत साधारण जनता कला-पक्ष के बजाय कला के भाव-पक्ष से अधिक प्रभावित होती है। अतः कलाकार को कला के कला-पक्ष पर ध्यान देते हुये कला के भाव-पक्ष को अधिक से अधिक शक्तिशाली बनाना चाहिये।

भाव जिसमें हों भरे सजीव।
करो ऐसे गीतों का गान।। हरिऔध

मानव की अंतर्वृत्ति में भावना और बुद्धि का क्षेत्र समान होता है। मस्तिष्क बुद्धि का चमत्कार है और और हृदय भावनाओं का क्रीड़ास्थल। शास्त्रीय संगीत में हृदय बुद्धि और मस्तिष्क का ही विकास होना चाहिये। परंतु देखा

अधिकतर यह जाता है कि बुद्धि पक्ष को ही लोग अधिक अपनाते हैं। इस चमत्कारपूर्ण गायन का तब तक अधिक महत्व नहीं है जब तक हम उसे भावों से परिपूर्ण नहीं कर देते। श्रेष्ठ गायक में दोनों ही बातों का सुंदर समन्वय दृष्टिगोचर होना आवश्यक है। भावनाओं की इसी महत्ता के कारण प्राचीन आचार्यों ने स्वरों के साथ नव रसों का संबंध स्थापित किया था। नौ रस क्रमशः इस प्रकार हैं – १श्रृंगार २ हास्य ३ करुण ४ रौद्र ५ वीर ६ भयानक ७ वीभत्स ८ अद्‌भुत ९ शांत। एक प्राचीन श्लोक में नौ रसों के संबंध में इस प्रकार कहा जाता है –

"सा रे वीरेऽद्‌भुते रौद्रे ध वीभत्से भयानके।
कार्यौ ग नि तु करुणे हास्य श्रृंगारयोर्म प चौ।"

अर्थात् सा और रे का प्रयोग वीर अद्‌भुत और करुण में ग नि तथा म और प का हास्य एवं श्रृंगार में प्रयोग करना चाहिये। इस प्रकार हमारे संगीत में स्वरों का उपरोक्त भावों पर आधारित रस विभाजन तथा रागों का काल आधारित विभाजन भी रसों व भावों के आधार पर ही अत्यंत वैज्ञानिक है।

बंदिशें हमारे भारतीय शास्त्रीय संगीत में अधिकतर श्रृंगार रस प्रधान ही मिलती हैं; रीतिकालीन युग की संगीत पर गहरी छाप पड़ने का यह परिणाम है। 'अब हूँ मैका लालन' इत्यादि बंदिशें बहुत ही हृदयग्राही हैं। भावनाओं को सजीव बनाने में विप्रलम्भ श्रृंगार ने संगीत की बहुत अधिक सहायता दी है; तभी तो हमारे कवियों ने भी श्रृंगाररस में विप्रलम्भ श्रृंगार को ही अधिक अपनाया है। इसी वियोग श्रृंगार में भावना का वेग होने के कारण फिल्म-जगत का संगीत अपनी उन्नति कर सका है। खमाज थाट, काफी थाट, तथा कल्याण के रात्रिगेय राग प्रायः श्रृंगार रस प्रधान ही होते हैं। अब शांत रस को ही लीजिये। भारतीय संगीत में संधिप्रकाश रागों का संबंध शांत रस से बहुत अधिक है। प्रकृति की शोभा सायंकाल सूर्यास्त और प्रातःकाल सूर्योदय के समय कुछ निराली ही होती है वातावरण शांत होता है। चिड़ियाँ चहकने लगती हैं, पल्लव डोलने लगते हैं,

और कोयल कूकने लगती है। इन्हीं सब के साथ मानों अखिल विश्व शांत रस के वातावरण में निमग्न हो जाता है। गायक का हृदय इस प्रकृति की छटा को देखकर उद्वेलित हो उठता है, और वह शांत वातावरण में तल्लीन हो जाता है। इसलिये संधिप्रकाश रागों में ईश्वर भक्ति और प्राकृतिक सौन्दर्य का भाव बड़ा भला मालुम होता है। कोमल 'रे ध' लगाने वाले राग करुण रस के ही परिचायक होते हैं।

इन रसों के कारण ही हमारा संगीत भावना प्रधान बन सका है। भावना की तीव्रता हमारी आवाज़ से शीघ्र व्यक्त हो जाती है। क्रोध के आवेश में हमारी आवाज़ कुछ और ही हो जाती है। प्रेम के आवेश में मानव कभी-कभी अस्फुट कंठ से भी बोलने लगता है और कभी-कभी तो भावना रूपी समुद्र इतनी तीव्रता से बहने लगता है कि, हम उसमें बह जाते हैं। जैसे हमारा कंठ स्वर हमारे स्वभाव परिवर्तन के साथ बदलता रहता है उसी प्रकार हमें गाते समय आवाज़ को भावनानुसार बदलते रहना चाहिये। कोमल भावों में आवाज़ कुछ मीठी और धीमी हो जाती है। यदि गाने में गंभीर भावों का समावेश है तो आवाज़ भी गंभीर हो जानी चाहिये। तात्पर्य यह कि जहाँ जैसा भाव गाने में आया तो वहाँ हमें आवाज़ में भी उनको व्यक्त करने की क्षमता होनी चाहिये, जिससे हमारा संगीत श्रोताओं को आनंद विभोर कर सके। वह संगीत ही किस काम का जिसमें भावों का उद्रेक न हो, जो हृदय वीणा के तारों को एक बार झनझना न दे। शास्त्रीय संगीत में आज लोग उन भावनाओं की कमी पाते हैं जो आज इस संगीत की एक बड़ी कमी बन गयी है। फलत: भाव से भाव का सामंजस्य न हो पाने के कारण शास्त्रीय संगीत अपने प्रभाव में त्रुटिपूर्ण रह जाता है।

और इसके लिये शास्त्रीय संगीतज्ञ ये तथ्य प्रस्तुत करते हैं कि यदि कोई हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की मधुरता का पान नहीं कर पाता तो दोष संगीतज्ञों का नहीं वरन् श्रोताओं का है। जहाँ तक श्रोताओं से संबंध है, संगीतास्वादन के

के लिये संगीत साधना की आवश्यकता होती है; मेरे विचार से जो इस प्रकार का तर्क करते हैं वे साधना सिद्ध नहीं कर पाये। इस तर्क के लिये 'नाच न आये आंगन टेढ़' की युक्ति उपयुक्त है। जब 'संगीत विश्व भाषा है।' ऐसा माना गया है तो संगीत सुधा को छोटे से लेकर बड़े तक सब पर समान रूप से मोहनी डालनी चाहिये। यदि यह भी संभव नहीं तो कम से कम हमारे शिक्षित समाज के लिये जो किसी भी वस्तु के भले-बुरे में भेद समझ सकता है, हमारा संगीत अवश्य कुछ गम्य ग्राह्य होना चाहिये, जब वह उनकी भी शक्ति से बाहर है तो यह सिद्ध हो जाता है कि सचमुच हमारे शास्त्रीय संगीत में कोई न कोई भारी दोष, विकार अथवा विषमता विधमान है। इस विषमता के होते निश्चित है कि हमारा संगीत केवल कुछ गिने-चुने जानकारों के निमित्त ही सुरक्षित है; दूसरों से उसका कोई संबंध नहीं।

संगीत प्रेमियों को संगीत कला के शास्त्रीय बंधनों ने किस प्रकार जकड़ रखा है यह हमारे सम्मुख निम्नलिखित तीन उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है एक कार्यक्रम में ऐसे गायक ने गाया जिन्हें अनयत्र सर्व श्रेष्ठ गायक की ख्याति प्राप्त हो चुकी थी, एक राग गाया। उनकी गायकी के सम्बन्ध में निपुण विद्वानों का कथन था जहाँ तक शास्त्र मर्यादा का प्रश्न है वह उनके कला प्रदर्शन में सर्वोत्तम अर्थात् प्रथम श्रेणी का था परंतु राग के गर्भ में विधमान भावनाओं की सफलता का जहाँ तक प्रश्न था वह प्रदर्शन में निपट निःसत्व व निस्तेज था। श्रोताओं में एक ऐसे सज्जन भी थे जो शास्त्रीय संगीत के आश्रयदाता होने के साथ-साथ कुछ हद तक संगीत सीख भी चुके थे। उन्होंने उस गुणी संगीतज्ञ पर प्रशंसा के पुष्पों की वृष्टि करते हुये कहा," कितना अद्वितीय था यह गायन राग में शास्त्रीय महत्व के अनेक मार्मिक अंश एवं स्वरालंकारों की कैसी कठिनतम उलट-पुलट थी। संगीत सभाओं में हम यही तो सुनने आते हैं न कि हलका-फुलका (तुच्छ) कोरा भावनायुक्त संगीत।"

एक और संगीत सभा में किसी सर्वश्रेष्ठ गायक ने बड़ा ख्याल गाया और जब वे शास्त्रीय तत्वों का कड़ा पालन कर रहे थे तभी उन्होंने उसमें भावों का पूरा-पूरा सम्मिश्रण कर दिया। जब पूरी महफिल में उनकी प्रशंसा हुई तब उनमें कुछ ऐसे भी श्रोता थे जिन्हें शास्त्रीय संगीत की कुछ अधिक जानकारी नहीं थी। तब कुछ जानकारों का कथन था कि क्या यह ख्याल गायन था? इसमें तो ठुमरी के अंग विधमान थे। ख्याल का संबंध तो दिमाग से है दिल से नहीं जैसा कि ठुमरी में है।

एक और संगीत की महफिल में गायक कठिन राग गाने बैठे। वे बारम्बार अपना स्वर तार सप्तक तक ले जाने का प्रयास करने लगे स्वभावतः स्वर बेसुरा हुये बिना न रहा और उनके गले से चीख सी निकलने लगी। उन्होंने दो-तीन बार और प्रयत्न किया किन्तु प्रत्येक प्रयास पर एक चीख सी निकलती थी। अस्तु इस प्रकार के गायन की भी कल्पना की जा सकती है।

अतः आज हमारे गायक तथा शास्त्रीय संगीत के अभ्यस्त श्रोताओं के लिये रीति-नियम पालन ही एकमात्र महत्वास्पद तथ्य संगीत कला की प्रस्तुति में रह गया है भावाभिव्यक्ति का कोई मूल्य उनके समक्ष नहीं है। यद्यपि यह निर्विवाद है कि रीतिनियमों के पालन से राग सुगठित, सुदृढ़ तथा सुनिर्मित होते हैं। घुमाव आदि के रीति प्रयोगों द्वारा राग में सुन्दरता तथा कलापूर्णता का समावेश होता है इस दृष्टि से गान क्रिया में उनका उचित प्रयोग न केवल अपेक्षित बल्कि अनिवार्य भी है। प्रत्येक कला का अपना एक सिद्धांत, शास्त्र अथवा विज्ञान है इसीके निर्देशन में उसकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहती है। अतः कोरी भावुकता से भी काम नहीं चलता। हृदय की भावुकता संगीत के ताल, स्वर, नियम के सहारे ही होती है। संगीत क्रियात्मक विधा है अतः केवल सैद्धांतिक अध्ययन से काम नहीं चलता। दोनों का सामंजस्य अनिवार्य है; यदि एक गति देता है तो दूसरा दिशा। संगीत का

आधार क्षेत्र बुद्धि की अपेक्षा हृदय अधिक है। बुद्धि भावनाओं को अधिक गहरा, सुसंस्कृत व पुष्ट करती है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि बुद्धि क्षेत्र पर आवश्यकता से अधिक भार डाला जाय क्योंकि इससे गायक की आत्माभिव्यक्ति दब सी जाती है। जिससे उसके संगीत में न तो अनुभूतियों की गहराई होती है और न मनोभावों की सच्ची अभिव्यक्ति। वस्तुतः जीवन की गहराई की अनुभूति के कुछ ही क्षण होते हैं वर्ष नहीं। ये क्षण ही इतने व्यापक होते हैं जो हमारे जीवन को ढक लेते हैं और सम्वेदना को बढ़ाते हैं। आत्मा का विकास इन्हीं मृदु-क्षणों में होता है। कला में भावाभिव्यक्ति के इसी महत्व को देखते हुये स्वामी विवेकानंदजी का वक्तव्य यहाँ उल्लिखित करना आवश्यक है। उनका मत संगीत पर भावाभिव्यक्ति पर अधिक बल देते हुये इस प्रकार था - "ध्रुपद ख्याल आदि में शास्त्र है, परंतु जिसमें 'मधुर', 'विरह' आदि रचनायें अंतर्भूत हैं ऐसे 'कीर्तन' प्रकार में सच्चा संगीत है; क्योंकि यह भावपूर्ण होता है। भाव ही सभी बातों की आत्मा व रहस्य हैं। जनसाधारण जो गाने गाते हैं उन लोकगीतों में अधिक संगीत रहता है। इन लोकगीतों को एकत्र करना चाहिये। ध्रुपद आदि के शास्त्र का यदि कीर्तन संगीत में प्रयोग किया जाय तो उससे संगीत का पूर्ण स्वरूप प्रगट होगा।" अतः संगीत कला में भावाभिव्यक्ति के महत्व को समझकर संगीत कला के प्रस्तुतिकरण करने वाले कलाकारों को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। हर समय उनका मुख्य ध्येय यह होना चाहिये कि ताल और स्वरों के साँचे में स्वरों को भी ढाल दें। जो शब्द निकलें हृदय के रस से ऐसे सिक्त हों कि सुनने वाले के हृदय में उन्हीं भावनाओं को जाग्रत करा सकें, जिनसे प्रेरित होकर गायक ने उनका निर्माण किया था। आज शास्त्रीय संगीत के प्रस्तुतिकरण में उसके कला-पक्ष व भाव-पक्ष का उचित सामंजस्य आवश्यक है। तभी यह कला कलाविज्ञों तथा साधारण जन दोनों में अपना स्थान बना सकेगी।

४ बंदिशों का चयन —

वस्तुतः बंदिशों की रचना भारतीय संगीत की नितांत निजी व अनूठी इकाई है। इन बंदिशों में जिन्हें गायकों की भाषा में 'चीजें' भी कहा जाता है-जहाँ राग व उसके स्वर-प्रबंध की अद्वितीय रचना हुई है। वहीं उस राग या स्वर-प्रबंध को वहन करने के लिये अनुरूप शब्दों की एक काव्य रचना भी बाँधी गयी है। यह काव्य रचना सामान्यतः राग के अर्थ को श्रोता तक बोधगम्य ढंग से ले जाती है। और उस राग की मूल कल्पना को सहज बना देती है। संगीत को आत्मसात् करने के तीन अलग सोपान समझे गये हैं। इनमें श्रेष्ठतम और दुष्कर तो केवल नाद, संगीत है। इस प्रकार के संगीत में केवल स्वर ही शीर्ष पर रहता है। इसमें शब्द या अन्य उपकरण अपनी अर्थवत्ता खो देते हैं। उसके साथ दूसरा सोपान है लय संगीत जो ताल के माध्यम से चलता है और अंततः नाद संगीत में ही तिरोहित होता है। ताल की लय पर कीर्तन करना लय संगीत का अच्छा उदाहरण है। तीसरा सोपान शब्द संगीत का है जो अर्थ पर भी पराश्रयी रहता है - यह चाहे भजन हो, चाहे गीत हो अथवा गज़ल हो।

स्वर, लय और शब्द की कुशल कारीगरी ने ही बंदिशों को जन्म दिया। गान के दो भेद 'निबद्ध गान' तथा 'अनिबद्ध गान' बताये गये हैं। बंदिश 'निबद्ध गान' के अंतर्गत आती है। 'बंदिश' राग की आकृति का दर्पण है, जिसमें राग के स्वरूप और चलन को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। ध्रुपद अथवा धमार की गायकी में इन बंदिशों ने अपने गायकों के लिये बड़ा चौखटा बनाया जिसमें वे स्वर लय अथवा शब्दों की अलग- अलग क्षमताओं से जूझते हुये संगीत का संपूर्ण रसत्व श्रोता तक पहुँचाने का यत्न करते थे। इन बंदिशों में जहाँ कवित्व प्रमुख हुआ वहाँ शब्दों के अनुकूल रागों का चयन करते और उन्हें विशेष मात्रिक छंदों में बिठाकर गेय बनाते। और जहाँ संगीतज्ञ प्रमुख हुआ वहाँ वे प्रायः रागों की प्रकृति के अनुरूप शब्दों का चयन करते थे।

ध्रुपद से ही अपना स्वरूप ग्रहण करती हुई ख्याल गायकी अपनी प्रकृति के अनुरूप नयी बंदिशों की तलाश में चल पड़ी। गायकों का वर्चस्व होने के कारण राग की चैनदारी और स्वर शुद्धि का ध्यान तो अवश्य रहा किंतु शब्दों में विकृति आती चली गयी; इसके अनेक हास्यास्पद उदाहरण मिलते हैं। संगीत की महफिल जमी हुई थी गायक महोदय झूम-झूमकर गा रहे थे, 'हिरन ने सींग मार्यो' श्रोता चकित थे इस बंदिश अथवा शब्द रचना का मंतव्य क्या निकल सकता है। किसी का ध्यान भी नहीं जा सकता था कि गायक महोदय बिना समझे हुये नरसिंह अवतार की स्तुति की बंदिश गा रहे थे जिसके सही शब्द होते - 'हिरणकश्यपु नृसिंह मार्यो' यह अकेला उदाहरण नहीं है। 'लंगर तुरक जिन धुओ' (लंगर टू कर जिन धुओ), 'सब सखिअनमिलि मंगल गाओ (सब सखियन मिली मंगल गाओ) इसी तरह हजरत तेरे कमान पर बलि-बलि जाऊँ को तो अब पकड़ पाना भी मुश्किल है। तमाम अशिक्षित तथा अर्धशिक्षित वर्ग के हाथों में गाना-बजाना चले जाने का परिणाम यह होना निश्चित ही है। इन गवयों का बंदिश की भाषा से सीधा सरोकार न था इसीलिये ब्रजभाषा में बंधी तमाम बंदिशें अर्थ का अनर्थ करने लगीं। ख्याल गायकी का अगला विकास महाराष्ट्र में हुआ भाषा व बंदिशों के अर्थ को पकड़ने, उन्हें विकसित करने या संवार कर नये अर्थ भरने का काम मराठी गायक वर्ग भी न कर सका। यद्यपि गायकी शुद्ध रही पर बंदिशों से छूट जाने के कारण अधिकांश गायक केवल संगीत का व्याकरण ही रटते रह गये। तमाम पंक्तियाँ गायकों के बीच रूढ़ हो गयीं जिनका किसी भी राग या बंदिश में इस्तेमाल धड़ल्ले से होने लगा जैसे -

'जब से गये मोरी सुधहुन लीन्हीं।'
या 'जाग रही मोरी सास ननदिया।'
या 'दादुर मोर पपीहा बोले।'

गायकों के बड़े वर्ग ने काव्यमयी पुरानी बंदिशों से छुटकारा पाने के लिये और अपने चेलों के लिये जिन

कामचलाऊ बंदिशों की रचना की उनकी पद्यरचना बिलकुल ही घटिया थी।

यद्यपि ठुमरियों अथवा दादरों की लोकप्रियता मूलत: अपनी शृंगारिक काव्य रचना के आधार पर ही हुई थी किंतु धीरे-धीरे प्रसिद्ध ठुमरियों भी निरर्थक शब्दों का भंडार बन गयीं।

बंदिशें बनाने वालों की एक लंबी परंपरा भारतीय संगीत में अब हो चुकी है। इसमें सदारंग-अदारंग तो प्रसिद्ध हैं ही किन्तु मनरंग, हररंग, दिलरंग, प्रेमरंग, सुररंग आदि अनेक रचनाकार रंग परंपरा के भीतर चलते रहे। पिछले कई दशकों में पिया का उपसर्ग लगाकर बंदिशकारों ने रचना की जैसे - सनदपिया, दरसपिया, कदरपिया, ललनपिया, प्रानपिया। पुस्तकों से अधिक यह रचनायें मौखिक परंपरा में गायकों के बीच प्रचलित हुईं। गुरु-शिष्य परंपरा में इन बंदिशों का अधिक प्रचार हुआ जहाँ किसी भी शिष्य को इन बंदिशों को सही करने या उनका अर्थ पकड़ने का साहस करना अक्षम्य अपराध था।

इस दुष्चक्र से बंदिशों को मुक्त कराने उन्हें प्रामाणिक व सारगर्भित बनाने का पहला काम पंडित विष्णूनारायण भातखण्डे ने किया। सर्वप्रथम उन्होंने पूरे देश का भ्रमण करके यहाँ के मूर्धन्य गायकों से उनकी घरानेदारी की चीजों का संकलन किया, उन्हें शुद्ध किया, उन्हें अर्थसंगति दी, और उन्हें स्वरलीपि के साथ पुस्तकाकार किया। उन्होंने गायकों में बंदिशों की एक नयी समझ पैदा की, उन्होंने कई रागों में अनेक बंदिशें बनायीं। तथा 'लक्षण गीत' के नाम से राग की मूल कल्पना को श्रोता तक पहुँचाने के लिये बंदिश की एक नयी परंपरा की शुरुआत की। 'लक्षणगीत' में राग का नाम उसका स्वरूप, आरोह-अवरोह तथा उसकी विशेषतायें समाहित थीं। संगीत के विद्यार्थी के लिये तो लक्षणगीत महत्वपूर्ण थे ही; गाने-बजाने वाले उस्तादों के लिये भी ये उस समय एक खास जानकारी की चीज़ थे। कालांतर में अनेक पढ़े-लिखे लोगों ने बंदिशों के सुधार के लिये उल्लेखनीय कार्य किया। कुछ संगीत शिक्षकों

तथा कुछ भाव साधना करने वाले संगीत साधकों के मिले-जुले प्रयासों से बंदिशों का एक नया दौर संगीत-जगत में प्रचलित हुआ। भाव साधना करने वाले (गुजरात के) महारणा जयवंत सिंहजी रणमलसिंहजी जो प्रायः बापूजी के नाम से जाने जाते हैं अपनी भावपूर्ण भक्तिपरक रचनाओं के लिये अत्यंत प्रसिद्ध हुये। उनकी रचनायें पंडित जसराज अथवा उसी परंपरा के गायकों के लिये आज भी प्राणशक्ति हैं। जालंधर के प्रो. शंकरलाल मिश्र ने, 'सुमरंग' के नाम से लगभग डेढ़ सौ बंदिशों की रचनायें कीं। दरभंगा के गायक पं. रामाक्षय झा ने 'रामरंग' नाम से अनेक सशक्त बंदिशों की रचनायें की हैं जिन्हें आज भी अनेक नये पुराने गायक गाते रहते हैं। इस दिशा में प्रो. देवधर तथा रातान्जनकर जी का कार्य भी उल्लेखनीय है। कुमार गंधर्व इस रचनात्मक प्रक्रिया में शामिल हुये हैं परंतु उनकी रचनायें अभी उनसे आगे नहीं जा सकी हैं।

वस्तुतः बंदिशों की रचनायें स्वरों का गहरा अध्ययन माँगती हैं। गायक और कवि का समन्वय हो जाये तो ये रचनायें अलौकिक प्रभाव उत्पन्न करती हैं - वे चाहे कर्नाटक में त्यागराज की कृतियाँ हों या सूर, मीरा, तुलसी के पद। गायक अपनी भावनाओं का तादादम्य उस शब्द रचना के माध्यम से करता है; यदि वे शब्द गायक के स्वर से जुड़कर अनुभव का एक नया संस्कार खोलते हैं तो श्रोता को भी उन बंदिशों के सहारे संगीत के उस अनुभव को स्पर्शकर पाना अधिक सुलभ हो जाता है। शब्द की स्थूल लौकिकता धीरे-धीरे स्वर की सूक्ष्मता और अलौकिकता में तिरोहित हो जाती है। किंतु वहाँ तक पहुँचने के लिये सार्थक शब्दों का विन्यास - जो राग के सहायक उपकरण के रूप में इस्तेमाल किये जा सकेगें - गायक और श्रोता की तीन चौथाई मंज़िल तय करने के लिये अनिवार्य है।

इस संबंध में कुमार गंधर्व जी की उक्ति उल्लेखनीय है, "अरे आप अक्षरों को स्वरों से दूर क्यों करते हैं? भाषा को संगीत से दूर मत ले जाइये। भाषा भावाभिव्यक्ति का साधन है। भाषा का जैसा चाहें वैसा प्रयोग करें। थोड़े शब्दों को

लेकर गा सकते हैं अथवा ज्यादा शब्दों की पंक्ति को भी हम ले सकते हैं। केवल ध्यान इस बात का रखें कि भाव पूर्ण स्पष्ट हों। तीन सप्तकों में गाने वाला कलाकार ही महान नहीं होता। वह क्या गाता है यह महत्वपूर्ण है। कृपया अक्षरों को इतना निकृष्ट न मानें।[1] इस पड़ाव तक पहुंचने के लिये समर्थ गायक को सही सार्थक और गहरी अनुभूतियों वाली नयी बंदिशों की खोज जारी ही रखनी चाहिये।

बंदिश में सही शब्दों के उच्चारण की समस्या आज शिक्षा के प्रभाव के कारण एक सीमा तक हल हो चुकी है पर कुछ और ध्यान देने योग्य बातें हैं जो अभी इस क्षेत्र में अछूती हैं। उस्तादों ने विलंबित और द्रुत बंदिशों के भाव वैषम्य की ओर ध्यान नहीं दिया। एक बंदिश भक्ति पर गा रहे होते हैं - करीम नाम तेरो (मियाँ मल्हार) उसी के छोटे ख्याल में 'बोल रे पपीहरा' गाकर रसभंग करना सामान्य बात है। आज भी कुछ अपवादों को छोड़कर विलंबित और द्रुत बंदिशें एक ही भाव का पोषण कर रही हों ऐसा सुयोग मिलना कठिन ही है। विलंबित और द्रुत का जहाँ साम्य मिल जाता है, उसमें गायक एक लय से दूसरी लय में बड़ी सहजता से तैरता हुआ चला जाता है। श्रोता को न तो लय टूटने का झटका लगता है न रसपरिपाक में बाधा पहुंचती है। अतः यहाँ स्वर और लय का तादात्म्य आसानी से होने लगता है।

शब्द के अलावा बंदिश में तालों का नये ढंग से रचनात्मक उपयोग किसी विशेष प्रभाव को जागृत करने के लिये किया जाय यह भी दुष्प्राप्य है। प्रायः बड़ा ख्याल एक ताल में व छोटा ख्याल तीनताल में गाना - बजाना अब रूढ़ हो गया है।

इसके अतिरिक्त गीत अथवा बंदिश के बोल सब व्यक्तियों के लिये सरल अथवा सुबोध होने चाहिये जिससे जनता के हृदय में रसोद्रेक संभव हो सके। साथ ही साथ अगर गीत तत्कालीन पर्व, ऋतु अथवा उत्सव से सम्बन्धित हो तो गायक को अपनी कला के प्रदर्शन में अधिक सफलता मिलेगी

1 सं. क. वि. १९८९, जुलाई पृ. ३६२, कुमार गंधर्व

५ संतुलित साथ संगत की उपयुक्तता —

गाने की महफिल में गायक प्रमुख माना जाता है फिर भी गायन अथवा अन्य कार्यक्रम में साथ-संगत करने वाले का भी अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान होता है। साथ-संगत करने वालों में तानपूरा छेड़ने वाले, सारंगी-वादक, तबला-वादक आते हैं। इन सभी कलाकारों को चाहिये कि अपने वाद्य वे मंच पर पहुँचने से पहले ही मिलाकर जायें। इसके लिये सभाघर के पास एक छोटा कमरा होना चाहिये जिसमें इसकी सुविधा हो। सबसे पहले गायक को तानपूरे अपने स्वर में मिलाने चाहिये। फिर सारंगी वादक को उसके आधार पर अपनी सारंगी और फिर तबला वादक को तबला मिलाना चाहिये। जब तक वाद्य मिलाने का कार्य हो रहा है तब तक दूसरों को पूर्ण शांति रखना चाहिये अन्यथा वाद्य ठीक ढंग से नहीं मिल सकेंगे। फिर मंच पर पहुँचकर भी कार्यक्रम शुरू होने से पहले अपने वाद्यों की एक बार फिर परीक्षा कर लेनी चाहिये; कि वे कहीं उतर तो नहीं गये हैं। इस प्रकार की सतर्कता से समय की बचत होगी तथा श्रोता भी वाद्य मिलाने के समय में जो बोरियत महसूस करते हैं नहीं करेंगें।

सारंगी या तंतु वाद्य के साथ तानपूरे के स्वर मिल जाने के पश्चात तबला मिलाना चाहिये तानपूरे की तरह तबला भी अच्छी जाति का होना चाहिये। तबला मध्यम षड्ज में तथा डग्गा खर्ज में लगाना चाहिये। ऐसा करने से स्वर की दृष्टि से तबले डग्गे का साथ अच्छा होगा। आज कल कुछ तबला-वादक बराबर के स्वर में तबला न लेकर पंचम या तार षड्ज का तबला लेना पसंद करते हैं; ऊँचे स्वर का तबला बजाने में मेहनत कम पड़ती है, साथ ही आवाज़ में ठनक ज्यादा रहती है। स्वतंत्र तबला वादन के लिये यह ठीक है, किंतु साथ के लिये उचित नहीं है। बराबर स्वर वाले तबले के साथ स्वर भरते समय, स्वर में स्वर मिल जाते हैं किन्तु पंचम या तार षड्ज वाले तबले में

यह संभव नहीं हो पाता। क्योंकि वह टन्-टन् करता रहता है इस कारण आंस में गंभीरता व निखार नहीं आ पाता। गायक के साथ के लिये आदर्श तबला उसके स्वर का ही होना चाहिये। इस प्रकार गायक के कंठ और साथीदारों के वाद्यों से गुंजरित होने वाला मधुर संगीत, जिनके स्वरों में एक ही आत्मा प्रस्फुटित होती रहती है, श्रोताओं पर बिना प्रभाव डाले नहीं रह सकता।

वाद्य मिलाने के पश्चात् गायक, उन वाद्यों से झंकृत होने वाली स्वर लहरियों में आवाज़ मिलाकर गाना शुरू करता है। सर्व-प्रथम स्वर-विस्तार के द्वारा शांतिपूर्वक राग का स्वरूप निर्माण किया जाता है। सारंगीवादक को चाहिये कि उस समय गायक के ढंग से ही राग की छाया उत्पन्न करे। जल्दबाज़ी उस समय नहीं करनी चाहिये। आवाज़ पर काबू पा लेने के बाद राग-विस्तार समाप्त हो जाने पर गायक, तबलची को स्थाई (बड़ा ख्याल) ठेका बताकर गायन प्रारंभ करता है। शुरू करते समय गायक को चाहिये कि वह ठेके की लय हाथ से इशारा करके बता दे। ऐसा न करने पर दोनों की लय में फर्क पड़ जाने की संभावना रहती है। लय का अंदाज़ बिगड़ जाने पर गाने में तल्लीनता नहीं रह जाती, क्रम टूट जाता है। कुछ स्वाभिमानी गायक लय बिगड़ जाने पर अनायास ही तबले वाले पर आँखें लाल-पीली करने लगते हैं, यह उचित नहीं है। वास्तव में इसमें बिचारे तबले वाले का कोई दोष नहीं होता क्योंकि हरएक गायक की लय भिन्न होती है। इस परिस्थिति में वह जब तक अपने हाथ से लय की गति नहीं बतायेगा, तबलेवाला संभव है लय कम ज्यादा कर दे।

तबलची प्रारंभ से ही चीज़ का अंदाज लेकर एक छोटे से टुकड़े के साथ यदि सम पर आ जाता है तो श्रोताओं को बड़ा अच्छा लगता है। इसके लिये प्रोग्राम से पहले उस राग का रियाज़ तबले वाले के साथ कर लेना चाहिये। उसके बाद वजनदार ठेका शुरू हो जाना चाहिये। तबले

उंगली पर बोल के ठीक-ठीक अक्षर तथा विभाग, आवश्यकतानुसार कम या अधिक ज़ोर देकर बजाना चाहिये। हमें यह बात कभी भूलनी नहीं चाहिये कि वजन और लय के साथ ठेके के बोल बंधे रहते हैं। किन्तु कुछ तबला बजाने वाले इस बात का ध्यान न रखकर मनमाने बोल बजाते हैं। उदाहरणार्थ एकताल का ठेका बजाते समय जहाँ, 'धीं' का बोल बजना है वहाँ 'धा' भी बजता है, 'क्त' के बदले 'ती ती' कभी तिरकिट की जगह 'ती ती' या 'धीं धीं' भी बजने लगता है; तात्पर्य यह है कि लय तो ठीक चलती है किन्तु बोल जहाँ जो निकलने चाहिये नहीं निकलते। ऐसी हालत में ठेके के बोल गायक समझ नहीं पाता। कुछ तबलची इसी को अपनी विशेषता समझ बैठते हैं कि उनके बोल किसी की समझ में नहीं आते। उन्हें यदि बोल सही-सही बजाने के लिये कहा जाय तो झट जवाब देते हैं कि, "ताल की मात्रायें गिन लीजिये, गलत निकल जायें तो शिकायत कीजिये।" सिर्फ ताल की मात्राओं पर ही यदि कलाकार गाता रहे तो फिर बोल बांधने की आवश्यकता ही क्या रहे? एक-एक अक्षर वाले बोलों से भी काम चलाया जा सकता है। गायक को हर तरफ से संभालना पड़ता है। ताल के साफ़-साफ़ बोल यदि वह सुनता रहेगा तो उसके आधार पर उसे सरलतापूर्वक नयी-नयी कल्पनायें सूझती रहेंगी।

यूँ तो लयदार गायक एक बार गाने के लिये बैठ जाने पर हर तबलची से निपट सकता है, किन्तु उस गायन में कल्पना और सूझ न होकर गणित अधिक रहता है। इसलिये तबलावादक को कभी ऐसा प्रयत्न नहीं करना चाहिये जिसके कारण गायक भ्रम में पड़ जाय। आनंद प्राप्त करने के लिये ही गायन-वादन किया जाता है; क्षुद्र भावनाओं को इसमें कोई स्थान नहीं दिया जाना चाहिये। गायक तथा तबलावादक को एक रंग में डूबकर ही अपनी-अपनी प्रतिभा दिखानी चाहिये। गायक को भी तबलावादक के प्रति अनादर नहीं दिखाना चाहिये, अहंकारयुक्त अपशब्दों का उपयोग करना गायक की शान के

खिलाफ हैं। वे दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों के प्रयत्नों से ही रंगदेवता प्रसन्न होते हैं और संगीत का समा बँधता है।

तबला-वादक को वही ठेका देना चाहिये जो ठेका गायक को पसंद हो। एक ही ठेके के अनेक प्रकार होते हैं जैसे तिलवाड़ा तीन प्रकार से बजाया जाता है तथा आड़ा-चौताल दो प्रकार से। गंभीर लय के साथ केवल वजनदार ठेका देने से काम चलता है। अलबत्ता सम पर आ जाने के एक मात्रा पहले एक मात्रा का टुकड़ा बजा देने से गाने को उठाव मिलता है। यदि गायक के साथ निभ जाय तो चार मात्रा तक के बोल बजाये जा सकते हैं, इससे अधिक लम्बा टुकड़ा नहीं होना चाहिये। हर सम के पहले टुकड़ा लगाया जाना भी आवश्यक नहीं है। लगातार बोल बजाने से भी गायक की तन्मयता नष्ट होती है। अतः तबला-वादक को चाहिये कि वह गायक की मनःस्थिति को ध्यान में रखकर ही तबला बजाये, इसी में उसकी कला की सच्ची परख है।

जलद की चीज शुरू करने पर गायक को चाहिये कि तबलची को बोल बजाने का अवसर दे; उस समय भी तबलची को संयम रखना चाहिये। गाने के पदचिन्हों पर ही तबला बजाना आवश्यक है। दोनों की गतियों में समानता आवश्यक है। गाने में साथ के लिये वास्तव में दुगुन, चौगुन आदि सरल लय वाले बोल ही पोषक होते हैं। पांच, सात, या नौ गुन लय वाले बोल, कला कौशल की दृष्टि से भले ही सराहनीय हों किंतु गाने में कठिनाई उत्पन्न कर देते हैं। तबला-वादन का स्वतंत्र कार्यक्रम देने वाले कलाकार अधिकांशतया साथ के लिये अच्छे साबित नहीं होते। सारांश यह है कि तबले वाले को गाने की समझ तथा गाने वाले को तबले का ज्ञान रखना आवश्यक है। यदि वादक थोड़ा गा सके, और गायक थोड़ा तबला बजा सके या बोल व कायदे ज़बानी याद रख सके तो बहुत अच्छा है। दोनों को एक दूसरे का मर्म समझना चाहिये। अक्सर देखा जाता है कि गायक महाशय इधर आलाप ही ले रहे हैं और तबलची साहब ने इधर बोल भरने भी

शुरू कर दिये या गायक आड़ी लय से जा रहा है और तबला दुगुन चौगुन में बज रहा है या जिस समय गाने वाला लय में बोल फेंककर बोलतान खींचने लगता है तो तबलानवाज़ साहब सिर्फ सीधा ठेका ही देते रहते हैं। इस प्रकार बेमेल तबला बजाने के कारण ही आजकल कभी-कभी गायक बेचारा मजबूरन कह देता है सीधा-सीधा ठेका बजाओ बेकार के बोल भरने से सीधा ठेका गायक के लिये अधिक सुविधाजनक होता है। अच्छी हरकतें लेने पर एक दूसरे की तारीफ करनी चाहिये। दोनों को प्रोत्साहन मिलने पर कार्यक्रम अधिक रंगीन होता जायेगा।

तंतुवाद्य के साथीदार को भी गायन में उठाव लाने का प्रयत्न करना चाहिये। गाने का प्रवाह न तोड़ते हुये सारंगीवादक को चाहिये कि वह गायक को बीच-बीच में विश्राम देता रहे। गायक को ध्यान रखना चाहिये कि जब स्वर लम्बा होने लगे तो फौरन ही उस स्वर को वाद्य के साथ जोड़ देना चाहिये। वास्तव में कोई भी साथ देने वाला तंतुवाद्य गाने के पीछे रहता है किन्तु कुछ लोग इतनी चतुराई से सारंगी बजाते हैं कि ऐसा प्रतीत होता है कि गाना और बजाना दोनों साथ ही चल रहा है। गाने की अपेक्षा अधिक बजाना ठीक नहीं, बहुधा सारंगी-वादक अपनी कला प्रदर्शन के चक्कर में आवश्यकता से अधिक बजाने लगते हैं। गायक के विश्रांति के समय में अलबत्ता अधिक बजाने में हर्ज नहीं है। गाने के बीच में ही अधिक कलाचातुर्य दिखाने से सारा कार्यक्रम ही कभी-कभी बदरंग हो जाता है। कभी-कभी सारंगी वादक गानेवाले से आगे बढ़ जाने की कोशिश करते हैं यह बुरी आदत है। गायक यदि गंधार तक आलाप ले रहा है तो सारंगिये को मध्यम तक नहीं पहुँचना चाहिये। गाने वाले की आवाज़ यदि तार गंधार तक ही सीमित है तो बजाने वाले को उसके आगे कभी नहीं बढ़ना चाहिये; बजाने वाले को क्या वह तो किसी भी स्वर तक चक्कर लगाकर लौट आता है परंतु गायक के लिये यह संभव नहीं है। गाने के अंग के साथ चलने वाला ही स्वतंत्र तथा आदर्श वादक कहलाता

है। स्वतंत्र कार्यक्रम में चाहे जो बजाइये किन्तु साथ करने में आलाप के समय आलाप, तानों के समय तानें, तथा लय के समय लयकारी का काम ही किया जाना चाहिये। इन नियमों का पालन हर साथीदार को करना चाहिये।

गाकर साथ करने वाले तम्बूरा वादक अधिकतर उस गायक के शिष्य हुआ करते हैं। बीच-बीच में गाकर गुरु को आराम देना ही उनका कर्तव्य है। गुरु के आदेशानुसार उसी धाराप्रवाह में शिष्यों को गाना चाहिये ताकि गायन का सूत्र टूट न जाये। गुरु के विपरीत कभी नहीं गाना चाहिये। तंबूरा बजाने वाला शिष्य, सारंगीवादक और तबलची यदि अपनी सीमाओं में रहकर अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक रहेंगे तो गाने की सुंदरता में चार चाँद लग जायेंगे।

६ व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति –

कलाकार को कला-प्रस्तुतिकरण के संदर्भ में अपने कलाकार व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति की भी रक्षा करनी होगी। व्यक्तित्व से मतलब यह कि वह उसके समसामयिक कलाकारों से कहाँ भिन्न है, इसकी प्रतीति श्रोता को अवश्य मिलनी चाहिये। आज कितने ही कलाकार (रेडियो और रिकार्ड सुनसुनकर) अपने से अधिक लोकप्रिय कलाकारों की अनुकृति करते रह जाते हैं। उसमें जो प्रशंसा मिलती है वह उनकी नहीं किसी बड़े कलाकार के हिस्से की होती है जिसकी नकल वे कर रहे होते हैं। अक्सर वे महफिलें जमाने के चक्कर में सस्ती गजलों और फिल्मी गानों को भी गाते हैं – इससे वे महफिल की बनावट को नष्ट कर देते हैं। महफिलों में गाने के लिये यदि कलाकार के पास सुरुचिपूर्ण शब्दमयी बंदिशें हैं तो श्रोता तक उस शब्दावली की रसानुभूति को पहुँचाने की भी उसकी अतिरिक्त जिम्मेदारी है; कलाकार जितनी दूर तक इस जिम्मेदारी को सक्षम ढंग से उठा पाता है उतना ही उसे संगीत क्षेत्र में नये कीर्तिमान बनाने का सुयश मिलता है। उसका नयापन ही श्रोता के मन पर उसकी छाप छोड़ता है; उसका बासीपन अथवा नकलचीपन नहीं। यह नयापन निरंतर कैसे बना

रहे यही कलाकार की अपनी साधना और समझ की परख है।

6 महफिलों की प्राचीन परंपरा व गरिमा के पुर्नजीवन की आवश्यकता —

किसी स्तर पर महफिलों की पुरानी परंपरा और गरिमा को पुर्नजीवित करने की आवश्यकता है। संगीत की समझ को अपने दैनिक जीवन का अंश बनाने के लिये महफिलों की 'बदनामी' और उसके 'ओछेपन' को समाप्त करने के लिये हर नगर का जागरूक श्रोता एक बार फिर आंदोलन छेड़े तो बात कुछ बन सकती है। इस आंदोलन को सफल करने के लिये संगीत के कलाकारों को भी जूझना पड़ेगा- केवल पैसे के लिये गाना-बजाना कहाँ तक करना है इस पर रोक लगाये। हर गुणी श्रोता के पास वे कैसे पहुँचे - यह उनकी भी जिम्मेदारी है। उनकी गायकी में स्थानीय रंगत की चीजें कैसे सम्मान पाती हैं, इस पर वे अभ्यास करें। ऐसी सरल व विशिष्ट बंदिशों का चुनाव किया जाय जो आम श्रोता के कंठ में गुनगुनाने के लिये बस जाय। रचनाकार की सृजन करने की क्षमता का विश्वास श्रोता को प्रत्यक्षतः मिलना ही चाहिये। यही विश्वास रचनाकार की प्रामाणिकता सिद्ध करता है और संगीत की व्यापक प्रक्रिया में आस्था पैदा करता है। महफिलों की निरंतरता संगीत का जीवंत माहौल बना सकती है।

पहले महफिलों में श्रोता और कलाकार का निकट का संबंध गायक या वादक को अपना खोटा या खरापन बताने के लिये अच्छा साधन था। श्रोता के लिये यह निकटता उसकी अनुभूति को गहरे स्तर पर उतार कर उसके भीतर राग की विश्वसनीयता, समझ पैदा करती थी। ताल और लय का सही अंदाज केवल महफिलों में बैठने से ही आता था। ध्रुपद, ख्याल, टप्पा, ठुमरी की विभिन्न गायन शैलियों-घरानों की खासियत, बंदिशों का मजा - यह सब कुछ महफिलों में निरंतर उपस्थिति से ही मिल पाता था। रसज्ञ श्रोता जितना इन विविध पक्षों के भीतर गहरा पैठा था कला परंपरा समृद्ध होती थी।

इन महफिलों में मिली हुई मान्यतायें देश में स्वतः फैलती थीं; इससे गायक वादक को नित्य 'नया काम' कर दिखाने की बेताबी बनी रहती थी। इसी कारण महफिल के 'श्रोता' की दाद बहुत मायने रखती थी। इस प्रकार के श्रोताओं की उपस्थिति में महफिलें जमती थीं - वे संगीत के सौन्दर्यबोध का नया माहौल पैदा करती थीं। श्रोता अपनी दृष्टि को साफ़ और वज़नदार बनाने के लिये संगीत के विभिन्न पक्षों को सीखने की कोशिश करता था। इसीलिये वह एक तटस्थ दृष्टा नहीं रहता था; वह उस संगीत प्रक्रिया का सजग अंग था। अतः महफिलों की पुर्नप्रतिष्ठा आज भी संगीत की समझदारी में एक नया अध्याय खोल देगी।

२ मंच व्यवस्था —

महफिल में मंच का विशेष स्थान है। मंच ही कलाकार और श्रोता की अलग-अलग पहचान बनाता है। कलाकार को श्रोता के भीतर पहले मंच ही प्रतिष्ठ करता है। वस्तुतः मंच एक दूरी स्थापित कर देता है। कलाकार और श्रोता अपनी रस प्रक्रिया से इस दूरी को निरंतर घटाते जाते हैं। यह प्रक्रिया जितनी सघन होती है उतनी ही मंच की सार्थकता बनती है। इसी कारण मंच की पूर्ण सज्जा ऐसी होनी चाहिये जो आयोजन के सौन्दर्यबोध में क्रमशः घुल जाये। यह न तो ऐसी हो कि कलाकार को ही छिपा दे न ऐसी हो कि कलाकार को भोंडी या हास्यस्पद प्रतीति दे। अति उत्साह में मंच सज्जा करने वाले संगीत आयोजनों में मंच को 'नाटकीय' बनाने का प्रयत्न करते हैं यह 'नाटकीयता' बाधक होती है। आँखें कान को सहायता दें यह ठीक है किंतु वे यदि कान पर हावी हो गयीं तो महफिल केवल देखने की चीज़ बन जायेगी। फिर श्रोता व कलाकार की दूरी ज्यों की त्यों रह जायेगी।

(स) शास्त्रीय संगीत का प्रसारण

यह बीसवीं सदी सम्पर्क माध्यमों के चलते आज प्रचार तथा प्रसार की सदी मानी जाती है। इसमें संदेह नहीं कि संपर्क माध्यमों की विविधता, उनका प्रसारण उनकी गति के कारण सदी का यह नामकरण सार्थक हो गया है। भारत और भारतीय संगीत पर भी इन माध्यमों का असर किस प्रकार हुआ है और किन सावधानियों के प्रयोग से इन प्रसार माध्यमों द्वारा हमारा संगीत उन्नति की ओर अग्रसर हो सकता है; क्योंकि ये जन सम्पर्क माध्यम संपूर्ण जनरुचि पर प्रभाव डालते हैं और उसे परिष्कृत अथवा दुष्कृत करने की शक्ति रखते हैं। अतः इनका सुव्यवस्थित व संगत प्रयोग हमारे संगीत के भविष्य को उज्वल करने की शक्ति रखते हैं। इस बात का ध्यान रखकर, संगीत पर प्रत्यक्षतया असर करने वाले माध्यम के नाते आकाशवाणी, दूरचित्रवाणी, ध्वनि मुद्रण, चित्रपट, पत्र-पत्रिकाओं आदि का आज विशिष्ट विचार है।

जनरुचि को प्रभावित करने के अतिरिक्त ये सम्पर्क माध्यम संगीत और संगीतकार के आर्थिक और सामाजिक स्थान और महत्व को बदल देने वाले उद्योग के नाते से भी आज जाने जाते हैं। ये संपर्क माध्यम संगीत निर्माण, उसका प्रयोग उसका ग्रहण तथा शिक्षा इन चार पहलुओं को प्रभावित करते हैं।

सभी संपर्क माध्यमों की अपनी एक खास विशेषता है और उनमें से हरेक का संगीत पर होनेवाला परिणाम भी खास रहता है फिर भी सभी के कुछ, समान परिणाम भी होते हैं; पहले ऐसे ही कुछ परिणामों को देखेंगे। सभी माध्यमों ने भारतीय संगीतकार के कला-विषयक ज्ञान व समझ पर विशेष प्रभाव डाला है। माध्यमों के आगमन के पश्चात् तथा उनके प्रभाव के कारण हमारे

संगीताविष्कार का कालिक एकक (यूनिट) अधिकाधिक निश्चित होता जा रहा है। पुराने ज़माने की तरह अब व्यवहारिक तथा सांगीतिक इस प्रकार दोनों स्तरों पर काल-तत्व को नियंत्रित नहीं किया जाता। संगीतकार का ध्यान उस व्यावहारिक काल पर ही केन्द्रित होने लगा है; जिस पर उसका नियंत्रण नहीं रहता। ध्वनि मुद्रण के जो प्रचलित कालिक एकक होते हैं (जैसे $3\frac{1}{2}$ मि. ३ मि.) उनमें और संगीताविष्कार में कोई नाता नहीं होता इस बात को हर एक संगीतकार अनुभव करता है फिर भी इन ध्वनि मुद्रण के कालिक एककों का महत्व जनरुचि को शास्त्रीय संगीत की दृष्टि से बहुत अधिक संवर्धित, परिवर्धित तथा परिष्कृत करने में है। अतः इनकी उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता।

इन माध्यमों से संगीत निर्माण पर भी प्रभाव हुआ है। अब ऐसा नहीं दिखाई देता है कि सांगीतिक आविष्कारबंध आराम से बनाये जा रहे हैं। अब कलाविष्कार में एक प्रकार की व्यापार की प्रवृत्ति दिखाई पड़ने लगी है। इस प्रवृत्ति पर जाँच कमेटी या सेन्सर द्वारा नियमों का कड़ाई से पालन करवा कर बहुत कुछ विजय पायी जा सकती है।

प्रत्यक्ष कार्यक्रम की तुलना में देखें तो ध्वनि मुद्रित अथवा प्रक्षेपित (आकाशवाणी आदि) संगीत की एक विशेष अंतिमता होती है। इस अंतिमता के दो पहलू होते हैं। एक तो आविष्कार के लिये उपलब्ध समय सीमित होने से कलाकार को वही पेश करना पड़ता है जो उसकी कला में उत्तम है तथा उत्तम होने के कारण ही ग्रहण किया जाता है। ऐसा करने से चूके तो वह उसी भाग को उसी कार्यक्रम में फिर से प्रयत्न करके भी प्रस्तुत नहीं कर सकता। फिर भी वह ऐसा करने लगे तो संकलित आविष्कारों में से अन्य किसी हिस्से को अथवा दूसरे अंग को छोड़ना अनिवार्य हो जाता है। इसके विपरीत प्रत्यक्ष कार्यक्रम में भूल गये, छूट गये हिस्से को बिना किसी अन्य

अंग को अथवा दूसरे हिस्से को छोड़ना अनिवार्य हो जाता है। इसके विपरीत प्रत्यक्ष कार्यक्रम में भूल गये, छूट गये हिस्से को बिना किसी अन्य अंग को छोड़े उसे दुरुस्त करना हो तो कर सकता है; क्योंकि तब उस पर समय का बंधन नहीं होता। पुर्नमुद्रण भी सम्पूर्ण आविष्कार का होता है। अतः मध्यमसंबद्ध आविष्कार की अंतिमता अनिवार्य रहती है।

प्रत्यक्ष कार्यक्रम में श्रोता और कलाकार का लेन-देन चलता है। श्रोता का कलाकार पर प्रभाव रहता है; इतना ही नहीं श्रोता के द्वारा कलाकार नियंत्रित भी हो जाता है। कुछ भी हो श्रोता की दृष्टि से देखा जाय तो आविष्कार में सहभागी होना प्रत्यक्ष कार्यक्रम में सहज संभाव्य होता है। माध्यम संबद्ध आविष्कार एकतरफा व्यवहार होता है। भारतीय संगीत की भारतीय बैठक और दाद देना आदि बातों को देखा जाय तो ध्यान में आ जायेगा कि माध्यम संबद्ध आविष्कार कुछ लँगड़ा-सा हो जाता है। भारतीय संगीत के संदर्भ में श्रोतृवृंद केवल ग्राहक नहीं होता। वह अल्प मात्रा में क्यों न हो प्रत्यक्ष में कलाकार का सहयोगी रहता है।

माध्यम संबद्ध आविष्कार की जो उपरोक्त विशेषतायें हैं उन सभी का एक संकुल परिणाम यह होता है कि प्रत्यक्ष आविष्कार में जो दो अवस्थायें बड़े आकर्षक ढंग से अभिन्न रहती हैं वे अलग-अलग बन जाती हैं। उनमें बड़ी खाई निर्माण हो जाती है। रचना करना और उन पर अमल करना ये ही वे दो अवस्थायें हैं किसी भी माध्यम संबद्ध आविष्कार में प्रयोगकर्ता पर कई दबाव रहते हैं। नियत समय में अपनी उत्तमोउत्तम चीजों की अपरिवर्तनीय ग्रहण क्रिया के सामने श्रोता दर्शकों के सामने रखने पड़ते हैं। तत्काल स्फूर्त रचना करना अथवा उत्स्फूर्त कल्पनाओं को अजमा लेना आदि साहसपूर्ण बातें वह कर नहीं सकता। इसका परिणाम यह हो जाता है कि क्या गाना है अथवा क्या बजाना है इसका निर्णय पहले से करने की ओर प्रवृत्त होता है। प्रस्तुति प्रणाली-

घटक को दिया जाने वाला कम अधिक महत्व आदि बातों की जन्मपत्रिका बहुत पहले और स्पष्ट रूप से बनायी जाती है। इतनी सारी बातें होने के बाद इतने सारे निर्णय करने के पश्चात् शेष रह जाती है; केवल ईमानदारी, सफाई और कार्यक्षमता के साथ अमल करने की बात। इस प्रकार कहा जा सकता है कि हम तत्कालस्फूर्त संगीत से पूर्व परिचित संगीत की ओर मुड़ने लगे हैं। साधारण तौर पर हमारी कलाकृति का 'संविधान' अलिखित होता है जो आसानी से नहीं बदला जा सकता ऐसा कलाकार का विश्वास होता है। माध्यम संबद्ध आविष्कार में सांत्वना का पूर्णरूपेण अभाव सा रहता है।

माध्यम संबद्ध आविष्कार की एक और विशेषता यह होती है कि संगीताविष्कार के कुल चेतक सब उपलब्ध होते हैं उनमें से कुछ चुनकर उन्हीं पर ग्राहक के ध्यान को केन्द्रित करने में माध्यम को सफलता मिलती है। दृश्य, स्पर्श, गतिसम्बद्ध, श्राव्य आदि कई प्रकार के चेतक किसी भी संगीताविष्कार में एक ही समय कार्यरत होते हैं और इन सब का ग्रहण हम अपनी अभिरुचि व पसंद के अनुसार करते हैं कि कौन से चेतक हममें निर्माण हों। ध्वनिमुद्रण, आकाशवाणी जैसे माध्यमों में हम दृश्य चेतकों से वंचित रह जाते हैं। मुद्दा यह कि ग्राहक इस बात का निर्णय ही नहीं कर पाता कि क्यों लें? रेडियो, टी. वी., में टोन कंट्रल जैसी सुविधा करने की इच्छा यह दर्शाती है कि माध्यम ऐसी बातों में ग्राहक से स्वतंत्रता को छीन लेता है।

संगीताविष्कार के स्वाभाविक गुणों में माध्यम के कारण किस प्रकार सर्वांग परिवर्तन होता है इसका अनुभव कार्यक्रम में ग्राहक के उलझाव से मिलता है। प्रत्यक्ष आविष्कार का अर्थ है कि मान्य और स्वीकार्य मार्ग से ग्राहक का होने वाला उलझाव। पसंद कब कैसे और कितनी मात्रा में प्रकट करें यहाँ से लेकर कैसे बैठें किस प्रकार बोलें इस सब का उसे भान होता है यह किसी धार्मिक कर्मकांड में

सम्मिलित होने की तैयारी मानसिक और शारीरिक रूप से होती है। परंतु माध्यम संबद्ध आविष्कार में श्रोता की इस प्रकार की सहभागिता नहीं हो पाती है। और इस गहरी सहभागिता के न होने का ही यह परिणाम है कि सारा दिन आस-पास संगीत के गरजते रहने पर भी ग्राहक पर किसी प्रकार का संस्कार नहीं होता है।

उसके बाद भी यदि ग्राह्य माध्यम के द्वारा ही संगीत ग्रहण करने लगे तो जल्दबाज़ी करने से उसकी ग्रहण क्रिया में कलाविष्कार के उत्कर्ष बिंदु तक पहुँचने की खिंचाव का ग्रहण लग जाता है। प्रत्यक्ष आविष्कार में कलाकार उत्कर्ष बिंदु और धीरे-धीरे, क्रम-क्रम से सीढ़ी दर सीढ़ी पहुँचाता है और उससे उलझा हुआ ग्राहक भी उसी प्रकार, आविष्कार के साथ ही बढ़ता जाता है। माध्यम संबद्ध आविष्कार में समय की पूर्व निश्चित और अपरिवर्तनीय सीमा के कारण कलाकार अपने संभाव्य आविष्कार का गणितीय संपादन निश्चित रूप से करना चाहता है। अमुक समय, अमुक जगह तिहाई, अमुक तान और आलाप किस प्रकार की हरकतें आदि बातों का पूर्व निश्चय कर रखता है। और श्रोता भी प्रदर्शन की इसी कृत्रिमता से बंधकर संतुष्ट रहने लगता है। और कलाकार भी संगीत सिद्धि के बजाय उसकी परिणामकारकता पर अधिक बल देने लगता है। इन स्थितियों के परिणामस्वरूप जो कलाकृति जन्म लेती है उसमें केवल मनोरंजन का स्थान होता है। हमारी कला विशेषता आध्यात्मिकता का प्रभाव समाप्त हो जाता है।

इसमें और एक बात यह है कि माध्यम जनसंपर्क के होते हैं। अतः जनता की आवश्यकताओं, आकांक्षाओं, अभिरुचियों का प्रतिबिंब उनके कार्यों में किसी न किसी प्रकार दिखाई देना आवश्यक है। ताकि ग्राहक की ओर से किसी न किसी प्रकार फीड-बैक आता रहे। विशेषकर विकासशील राष्ट्रों में शैक्षणिक स्तर को सर्वत्र समान करने के लिये माध्यमों का उपयोग करने की प्रवृत्ति रहती है।

सांगीतिक कार्यक्रम के संदर्भ में यह एक क्रिया अनेक ढंगों से होती रहती है; गायक-वादक के 'कैमरा योग्य' होने पर बल देना, निवेदन तथा टीका-टिप्पणी में भव्य परंपरा, प्रतिभा संपन्न गायकों का असाधारणत्व और चिकने चुपड़े भावावेश से भरकर गाने का वर्णन करना आदि बातें इस संदर्भ में नमूने के तौर पर प्रस्तुत की जा सकती हैं। सांस्कृतिक जनशासन की भ्रमपूर्ण, राजनीतिक प्रेरणा से प्रभावित होने वाली कल्पना और विलक्षण सौंदर्य कल्पनाओं से प्रेरित सांस्कृतिक विवेक में विकसनशील राष्ट्रों में हमेशा संघर्ष रहता है। इसीलिये माध्यम के द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले कार्यक्रम सम्मिश्र गुणों के रहते हैं।

जिन कार्यक्रमों से फीड-बैक मिले उन्हीं की ओर झुकाव रखना माध्यमों की प्रवृत्ति रहती है। इसका परिणाम उसके तांत्रिक पहलुओं पर हुये बिना भी नहीं रहता फिर श्रवण संबद्ध माध्यम स्थूल नाद तरंगों पर भी हुये बिना नहीं रहता तथा दृश्य-संबद्ध माध्यम दृश्य भाग पर बल देने लगते हैं। किसी भी श्री-मधुर लगने वाली आवाज़ की ओर श्रवण-संबद्ध-माध्यम आकर्षित होने लगते हैं। संगीतिक आवश्यकताओं का विचार किये बिना साधारण तौर पर यंत्र सामग्री उपयोग की जाती है; लक्ष्य रहता है ध्वनि मुद्रण करने का न कि संगीत मुद्रण करने का। फिर दूरदर्शन में भी कोई खास बात नहीं रहती चिकने-चुपड़े वही चेहरे, हावभाव, अभिनय और हरकतें आदि में दिखायी देने वाला फिल्मीपन ही शेष रह जाता है। इस समस्या का हल किया जा सकता है माध्यमों के स्तरीकरण की उच्चता को एक सीमा तक बढ़ा कर। तथा माध्यमों के प्रसतुत्य विषयों में नयापन, आकर्षण, कला-श्रेष्ठता आदि के समावेश से भी इस समस्या का निराकरण बहुत कुछ संभव है। इसके लिये मेहनत, दिमागी सूझबूझ तथा कुछ चातुर्य की आवश्यकता है।

तांत्रिक पहलुओं का प्रभाव ध्वनिमुद्रण की प्रणालियों पर भी पड़ता है। जब से ध्वनिमुद्रण की खोज हुई

है तबसे ध्वनिमुद्रित होने वाले वाद्य और आवाज़ में किस प्रकार संतुलन रखा जाय इसका भान सूक्ष्म रूप से बदलता गया है। ध्वनिमुद्रण को अच्छा बनाने वाले वाद्य, ऐसी ही आवाज और ऐसी ही रचनायें, रचना में प्रस्तुत किये जाते हैं। इस प्रकार का प्रभाव उत्पन्न करने वाले वाद्यों में इलेक्ट्रानिक वाद्यों का स्थान उच्च होने से उनका प्रयोग अधिक होता है। इस प्रकार एक तरह से स्थूल हार्मनी का प्रयोग हमारे यहाँ भी होने लगा है।

जो भी है आज के युग में इन संपर्क माध्यमों को हमें उनके गुण-दोषों के साथ स्वीकार करना ही होगा। इनके बिना हम चल नहीं सकते। जहाँ तक प्रयत्नों द्वारा उनके दोषों से मुक्ति पाते हुये उनके गुणों द्वारा होने वाले लाभों को प्राप्त करना चाहिये।

(१) आकाशवाणी

भारतवर्ष में रेडियो-प्रसारण का पदार्पण इस शताब्दी के तीसरे दशक में हुआ।[१] मद्रास प्रेसीडेन्सी क्लब में रेडियो द्वारा सर्वप्रथम १९२४ में प्रसारण प्रारंभ होकर कुछ समय बाद १९२७ में इन्डियन ब्राडकॉस्टिंग कम्पनी ने प्रसारण किया।[२] इस समय बम्बई व कलकत्ता में दो ही केन्द्र थे। दिल्ली केन्द्र से नियमित प्रसारण सन् १९३४ से प्रारंभ किया गया। सन् १९३९ में शार्ट वेव प्रसारण प्रारंभ कर छः (लखनऊ, तिरुचिरापल्ली, बड़ौदा, हैदराबाद, औरंगाबाद, त्रिवेन्द्रम) अन्य केन्द्र भी प्रारंभ हुये। लगभग इसी समय आकाशवाणी का नामकरण ऑल इन्डिया रेडियो (A.I.R.) हुआ। सन् १९४२ तक का समय देश में अत्यधिक अव्यवस्था का समय था और स्वतंत्रता प्राप्ति तक देश में केवल ११ केन्द्र ही स्थापित हो सके थे।

---

१ रेडियो लेखन, मधुकर गंगाधर, पृ.१५
२ Chandra Committee Radio Report १९६६

योजना बद्ध विकास हेतु पंचवर्षीय योजनायें प्रारंभ होने के बाद से रेडियो के विकास संबन्धी योजनायें भी बनने लगीं पिछले तीन दशकों में योजनाबद्ध विकास के अंर्तगत रेडियो प्रसारण एवं केन्द्रों में लगभग तीन गुना से भी अधिक वृद्धि ने संगीत के क्षेत्र में हलचल मचा दी। इन चार दशकों में रेडियो के विकास से संबंधित कुछ तथ्य निम्नलिखित तालिका में प्रस्तुत हैं।[1]—

क्र.	इकाई	वर्ष १९५०	वर्ष १९८२
१ केन्द्र	संख्या	२५	८३
२ जनसंख्या	प्रतिशत में	२१	८९
३ क्षेत्र तक प्रभाव	" "	१२	६८
४ समय	वर्ष में कुछ घंटों का प्रसारण	६०,०००	३,९१,०००

इस तालिका से स्पष्ट है कि आकाशवाणी का विकास पिछले तीन दशकों में अत्यन्त तीव्र गति से हुआ। १९५० में २५ केन्द्रों से बढ़कर यह संख्या १९८२ में कुल ८३ हो गई। १९५० में देश की केवल २१ प्रतिशत जनता ही रेडियो कार्यक्रमों को सुन सकती थी। १९८२ में लगभग ९० प्रतिशत जनसंख्या तक आकाशवाणी का प्रभाव है। अर्थात् लगभग देश के प्रत्येक १० में से ९ व्यक्ति आकाशवाणी द्वारा प्रसारित कार्यक्रमों को सुन सकते हैं। इसी प्रकार पिछले तीन दशकों में हुये विकास के परिणामस्वरूप देश के प्रत्येक कोने में और दूर-दूर तक के स्थानों तक आकाशवाणी कार्यक्रम पहुंच चुका है। केन्द्रों की संख्या में वृद्धि के साथ-साथ प्रसारण के समय में भी तीव्र गति से वृद्धि हुई है। सन् १९५० के वर्ष में कुल मिलाकर प्रसारण का समय केवल ६० हज़ार घंटे था। यह बढ़कर १९८२ में ३९१ हज़ार

1 आकाशवाणी वार्षिक रिपोर्ट विभिन्न वर्षों पर आधारित

घंटे हो गया था; अर्थात् प्रसारण समय में तीन दशकों में छः गुना से भी अधिक वृद्धि हुई।

रेडियो प्रसारण में शास्त्रीय संगीत का स्थान-

रेडियो प्रसारण के कार्यक्रमों में संगीत को विशिष्ट स्थान देने का श्रेय स्वर्गीय डा. बी. वी. केसकर को दिया जाना चाहिये, जिन्होंने १९५२ में अपने मंत्री काल में संगीत प्रसारण संबंधी एक चेतनाशील नीति बनाई। इस नीति के छः निम्नलिखित तत्व थे।[१]

१ स्वर परीक्षण प्रणाली।
२ शास्त्रीय संगीत को लोकप्रिय बनाना।
३ शास्त्रीय संगीत का राष्ट्रीय प्रसारण प्रारंभ करना।
४ शास्त्रीय वाद्य-वृंद
५ रेडियो संगीत सम्मेलन, संगीत-शास्त्रियों द्वारा संगीत के विभिन्न विषयों से संबंधित विषयों पर विचार।
६ सुगम संगीत का प्रचार एवं उनके गायकों के रेकार्ड को सुरक्षित रखने की व्यवस्था करना।

यह नीति सन् १९५० के दशक में संगीत के प्रसारण के लिये प्रभावशाली रही। शास्त्रीय संगीत के वर्तमान स्वरूप का आधार यही माना जाना चाहिये। १९५२-५३में 'शास्त्रीय संगीत को लोकप्रिय बनाओ' का नारा चल पड़ा था। जिसके अंतर्गत आकाशवाणी के सभी केन्द्रों को यह निर्देश दिये गये थे कि वे इस संबंध में की गयी गतिविधियों का समय-समय ब्योरा दें।[२] परिणाम स्वरुप, विभिन्न केन्द्रों ने शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रमों का समय बहुत तेज़ी से बढ़ा दिया। परंतु पिछले दशकों से संबंधित तथ्यों से यह सिद्ध नहीं होता कि शास्त्रीय संगीत के प्रसारण समय में अनुपातिक वृद्धि हुई है यधपि संगीत प्रसारन

---

१ 'Broadcasting in India', G.C. Awasthi, page ८०

२ " " " , " " , " ८१

के समय में अनुपातिक वृद्धि हुई है। लेकिन कुल प्रसारण समय की वृद्धि की तुलना में इसमें वृद्धि हुई है। संगीत संबंधी प्रसारण के समय के आँकड़े १९६५ के पूर्व के उपलब्ध न होने के कारण निम्नलिखित तालिका में १९६५ एवं १९८० में विभिन्न कार्यक्रमों को दिये गये समयों का विवरण प्रस्तुत है —१

प्रसारण कार्यक्रम और समय

कार्यक्रम	वर्ष १९६५ समय घंटों में	कुल प्रसारण समय प्रतिशतता में	वर्ष १९८० समय घंटों में	कुल प्रसारण समय प्रतिशता में
१ शा. संगीत	३३१४९	१८.४	४६४०६	१२.१२
२ लोक "	४२६३	२.४	१५३९९	३.९४
३ सुगम "	२२०१२	१२.१	३२४६६	८.२९
४ भक्ति "	९९६२	५.५	१९८२०	५.०६
५ फिल्म "	६४८२	५.१	२६६६८	६.८४
६ पाश्चात्य "	४०६९	२.२	१६९८२	४.३४
कुल संगीत समय	८१३१६	४५.६	१५८,८४२	४०.६०
अन्य कार्यक्रमों का समय	१००,८३०	५४.३	२३२,४०४	५९.२०
कुल प्रसारण समय	१८१,६४६	१००.०	३९१,२४६	१००.००

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि संगीत संबंधी कार्यक्रमों के प्रसारण समय में १५ वर्षों में लगभग दो गुना वृद्धि हुई। १९६५ में संगीत कार्यक्रमों का प्रसारण समय ८१,३१६ घंटों से बढ़कर १९८० में १५८,८४२ घंटे हो गया। परंतु यह वृद्धि कुल प्रसारण की वृद्धि से कम होने के परिणामस्वरूप संगीत कार्यक्रमों का प्रतिशत समय १९६५ में ४५.६ से घटकर १९८० में ४०.६ रह गया। इससे अधिक निराशाजनक बात यह है कि यह

१ 'This is all India Radio', U.L. Borua, page ४६

कमी शास्त्रीय संगीत के प्रतिशत में कमी के कारण हुई है। जो कि १९६५ में १२·८ से घटकर १९८३ में १२·१२ प्रतिशत रह गया। इसके विपरीत लोक-संगीत, फिल्म-संगीत, पाश्चात्य-संगीत के प्रतिशत में वृद्धि हुई है।

आकाशवाणी के संगीत प्रसारण में यह सन् १९५०-१९६० का दशक विशेष महत्वपूर्ण रहा है। वस्तुतः इसी काल में प्रसारण में नियमितता आई है। श्री जी. सी. अवस्थी के अनुसार सन् १९५२ में डा. वी. वी. केसकर के सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के मंत्रीपद ग्रहण करने पर शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रमों की विभिन्न रूपरेखायें बनीं। उसके साथ-साथ छठे एवं सातवें दशक में जिन कार्यक्रमों का विकास हुआ, उन सभी का विवरण निम्न वर्गीकरण के अनुसार दिया जा रहा है।

(अ) १ शास्त्रीय संगीत
२ संगीत का राष्ट्रीय प्रसारण
३ रेडियो संगीत सम्मेलन
४ शास्त्रीय संगीत का नियमित प्रसारण
५ शास्त्रीय संगीत की रविवारीय प्रातःकालीन सभा
६ सोमवारीय रात्रिकालीन सभा
7 बुधवारीय रात्रिकालीन सभा
८ मंगलवारीय रात्रिकालीन सभा
९ शुक्रवारीय रात्रिकालीन सभा
१० चयन ११ महफिल १२ पत्रिका १३ युव-वाणी

(ब) सुबद्ध संगीत

(स) सुगम संगीत - १ राष्ट्रीय प्रसारण २ नियमित प्रसारण ३ समूह गान ४ प्रसार गीत

(द) फिल्म संगीत (य) वाद्य-वृंद (ध) लोक संगीत (ज) राष्ट्रीय प्रसारण (झ) नियमित प्रसारण (क) पाश्चात्य संगीत

उपर्युक्त वर्गीकरण के अनुसार पहले इन सभी कार्यक्रमों का परिचय तथा उसके पश्चात् इन कार्यक्रमों

का हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत पर पड़ने वाले प्रभावों का विवेचन किया जायेगा।

(अ) १ शास्त्रीय संगीत का राष्ट्रीय कार्यक्रम –

शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रम में संगीत का राष्ट्रीय प्रसारण सबसे महत्वपूर्ण एवं विशिष्ट कार्यक्रम है। इस विशिष्ट कार्यक्रम का प्रसारण सन् १९५२ से प्रारंभ किया गया था। राष्ट्रीय प्रसारण में प्रत्येक शनीवार को ९० मि: की अवधि का कार्यक्रम उच्च-वर्ग के कलाकारों को दिया जाता है। कलारुचि रखने वाले वर्ग में इस कार्यक्रम को विशेष रुचि से सुना जाता है। संगीत के राष्ट्रीय प्रसारण को आकाशवाणी संग्रहालय में टेप करके सुरक्षित रखने की व्यवस्था है। शास्त्रीय संगीत के राष्ट्रीय प्रसारण में संगीत के महान् कलाकारों का गायन-वादन प्रसारित किया जा चुका है।

२ रेडियो संगीत सम्मेलन –

शास्त्रीय संगीत के प्रचार के लिये 'रेडियो संगीत सम्मेलन' कार्यक्रम वर्ष में एक बार आकाशवाणी द्वारा आयोजित किया जाता है। इस कार्यक्रम में आकाशवाणी के प्रमुख केन्द्रों द्वारा आयोजित गायक एवं वादकों के शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रम रखे जाते हैं। रेडियो संगीत सम्मेलन का आयोजन २३ अक्टूबर १९५४ से आरंभ हुआ था।[१] इसे वार्षिक संगीत सम्मेलन भी कहा जाता है। रेडियो संगीत सम्मेलन का आयोजन वर्तमान में भी वार्षिक स्तर पर ही किया जाता है। यह कार्यक्रम अनेक कलाकारों को नियोजित करके विभिन्न संगीत सभाओं के अंतर्गत किया जाता है।

३ शास्त्रीय संगीत का नियमित प्रसारण –

आकाशवाणी का यह दैनिक प्रसारित कार्यक्रम है। आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से शास्त्रीय

---

१ 'Broadcasting in India', G.C. Awasthi, page ४९

संगीत का प्रसारण नियमित रूप से प्रातः, दोपहर, सांय एवं रात्रिकालीन सभाओं द्वारा होता है। प्रारंभ में कुछ प्रमुख केन्द्र ही शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रम प्रसारित करते थे। परंतु धीरे-धीरे इन केन्द्रों की संख्या में वृद्धि होकर, वर्तमान (१९८४) में आकाशवाणी के लगभग ८६ केन्द्र हिन्दुस्तानी व कर्नाटक शास्त्रीय संगीत प्रसारित कर रहे हैं।[1] शास्त्रीय संगीत के नियमित कार्यक्रम में अधिक संख्या में कलाकार भाग ले रहे हैं।

४ प्रातः कालीन रविवारीय संगीत सभा —

आकाशवाणी के प्रातःकालीन रविवारीय संगीत सभा का आयोजन शास्त्रीय संगीत के प्रातःकालीन रागों के प्रसारण को प्रमुख अवसर दिये जाने के उद्देश्य से प्रारंभ किया गया। सूचना और प्रसारण मंत्रालय की रिपोर्ट के अनुसार सन् १९५६ से आकाशवाणी की प्रातःकालीन सभा का आयोजन प्रारंभ हुआ।[2] वर्तमान में भी इस सभा द्वारा प्रातःकालीन रागों का प्रसारण नियमित रूप से किया जा रहा है।

५ सोमवारीय रात्रिकालीन सभा —

शास्त्रीय संगीत के विशेष प्रसारण के लिये सोमवारीय रात्रिकालीन सभा का आयोजन किया गया है। शास्त्रीय संगीत का नियमित प्रसारण देने वाले कलाकारों में से कुछ विशेष कलाकारों को सोमवारीय रात्रिकालीन सभा में विशेष प्रसारण का अवसर दिया जाता है। यह एक साप्ताहिक कार्यक्रम है। इस सभा में ६० मि॰ का कार्यक्रम रात्रि (१०.०० - ११.००) प्रसारित किया जाता है।

६ बुधवारीय रात्रिकालीन संगीत सभा — सोमवार की संगीत सभा

---

1 आकाशवाणी संगीत पत्रिका, १९८४ अगस्त,

2 वार्षिक रिपोर्ट सूचना व प्रसारण मंत्रालय, १९६४-६५, पृ. १५१

के समान ही यह विशेष सभा कहलाती है। शास्त्रीय संगीत के नियमित प्रसारण करने वाले कलाकारों में से ही चयन करके कुछ विशिष्ट कलाकारों को उसमें प्रसारण का अवसर दिया जाता है। यह सभा साप्ताहिकी रूप से आयोजित की जाती है। सोमवारीय संगीत-सभा के ही समान इस कार्यक्रम को रात्रि में (१० से ११) ६० मि० की अवधि के लिये रखा गया है। सोमवारीय और बुधवारीय संगीत सभाओं द्वारा कलाकारों को विशेष सभा में प्रसारण का अवसर दिया जाता है। संगीत के राष्ट्रीय प्रसारण के अतिरिक्त आकाशवाणी केवल कुछ ही कलाकारों को ही नहीं अपितु अधिक से अधिक संख्या में विशेष प्रसारण का अवसर प्रदान करता है। आकाशवाणी द्वारा इन विशेष सभाओं के आयोजन का कार्य विशेष प्रशंसनीय है। बुधवार की शास्त्रीय-संगीत-सभा में से मास की एक सभा में श्रोताओं की पसंद पर शास्त्रीय संगीत का कार्यक्रम प्रसारित किया जाता है।

6 मंगलवारीय संगीत सभा –

आकाशवाणी ने शास्त्रीय-संगीत की युवा प्रतिभाओं को कार्यक्रम प्रसारण का विशेष अवसर प्रदान किया है, मंगलवारीय संगीत सभा का आयोजन करके। युवा कलाकारों में जो नियमित रूप से आकाशवाणी से शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रम प्रसारित कर रहे हैं; कुछ विशेष कलाकारों को चुनकर इस विशिष्ट सभा में प्रसारण का अवसर दिया जाता है। सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार यह विशेष सभा (मंगलवारीय रात्रि कालीन सभा) सन १९६४ से प्रारंभ की गयी।[1] इस सभा में भी ६० मि० का समय १०.०० से ११.०० रात्रि में कलाकार को दिया जाता है।

८ शुक्रवारीय संगीत सभा – शुक्रवारीय संगीत-सभा कर्नाटक

---

1 सूचना व प्रसारण मंत्रालय, वार्षिक रिपोर्ट १९६५-६६,

(दक्षिण) संगीत के युवा कलाकारों को विशेष अवसर प्रदान करती है। इसमें भी ६० मि. का समय १०.०० से ११.०० रात्रि में कलाकार को दिया जाता है। आकाशवाणी द्वारा मंगलवारीय और शुक्रवारीय शास्त्रीय संगीत के उत्तर-भारतीय एवं दक्षिण-भारतीय युवा कलाकारों को विशेष अवसर प्रदान करने का कार्य विशेष सराहनीय है।

९ चयन – आकाशवाणी संग्रहालय द्वारा 'चयन' कार्यक्रम के अंतर्गत शास्त्रीय संगीत के महान् कलाकारों के गायन एवं वादन के टेप इस कार्यक्रम के अंतर्गत बजाये जाते हैं। श्रोता अपनी रुचि के कलाकार को सुनने के लिये आकाशवाणी विभाग से पत्रव्यवहार भी कर सकते हैं तथा अपनी रुचि या पसंद के कलाकार के टेप को इस कार्यक्रम में सुन भी सकते हैं। यह कार्यक्रम नियमित रूप से प्रत्येक रविवार रात्रि १०.०० से ११.०० बजे साप्ताहिक कार्यक्रम के अंतर्गत रखा गया है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य पुराने संगीतकारों के टेप आधुनिक संगीतकारों को सुनवाकर उनमें प्रेरणा स्फूर्ति का संचार करना है। इसके अतिरिक्त पुराने गायक-वादकों की गायन-वादन प्रणाली से उन्हें अवगत कराना भी है। आकाशवाणी संग्रहालय में एकत्रित दुर्लभ संगीतकारों के पूर्व रेकार्ड किये गये कार्यक्रमों को आकाशवाणी इस कार्यक्रम के अंतर्गत प्रसारित कर विशेष प्रशंसनीय कार्य कर रही है। इन कार्यक्रमों द्वारा दुर्लभ संगीतज्ञोंकी संगीत की उपलब्धियों को आकाशवाणी द्वारा सुना जा सकता है।

१० महफिल – शास्त्रीय-संगीत के कलाकारों की विशेष उपलब्धियों से संबंधित चर्चा कार्यक्रम 'महफिल' में होती है। यह ३० मि. रात्रि ९.३० से १० बजे की अवधि का रविवारीय (साप्ताहिक) प्रसारित होने वाला कार्यक्रम है। महफिल कार्यक्रम में अतिथि के रूप में संगीतकार को आमंत्रित करके उनके क्रियात्मक संगीत के विषय में उनकी गायन वादन शैलियों की चर्चा की जाती

है। अतिथि कलाकार से उनकी संगीत-शिक्षा उपलब्धियों आदि की चर्चा करके उनके संगीत के कुछ अंश भी इस कार्यक्रम में प्रसारित किये जाते हैं। कलाकारों को सम्मान देने तथा उनका श्रोता वर्ग से परिचय कराने के उद्देश्य से यह कार्यक्रम अच्छे स्तर का है।

११ पत्रिका –

शास्त्रीय एवं क्रियात्मक संगीत के विभिन्न विषयों पर समस्या, वार्तालाप का यह कार्यक्रम, 'पत्रिका' कहलाता है। रविवार का यह कार्यक्रम ३० मि. की अवधि के लिये रात्रि ९.३० से १० बजे तक प्रसारित किया जाता है। पत्रिका कार्यक्रम में संगीत के आलोचक, कलाकार, शिक्षक सामूहिक रूप से दिये गये विषय पर वार्तालाप करते हैं। विद्यार्थियों, शोधकर्ताओं की जानकारी के लिये यह कार्यक्रम है। पत्रिका कार्यक्रम में संगीत में लेखन, संगीत-शिक्षण, राग-विधान, शास्त्रों की प्रासंगिकता, समय-सिद्धांत, लोकप्रिय संगीत इत्यादि विषयों पर विभिन्न संगीतकार चर्चा कर चुके हैं।

१२ युववाणी –

आकाशवाणी में युवा प्रतिभाओं को प्रसारण का अवसर युववाणी कार्यक्रम के अंतर्गत दिया जाता है। सन् १९६४ में आकाशवाणी श्रीनगर केन्द्र ने युववाणी कार्यक्रम प्रारंभ किया जिसमें १५-३० वर्षीय प्रतिभाओं को प्रसारण की सुविधा प्रदान की गयी। इसके पश्चात् अन्य केन्द्रों ने भी इस कार्यक्रम का प्रसारण आरंभ किया। इस कार्यक्रम में कलाकार की क्षमता रखने वाले प्रतिभा सम्पन्न युवाओं को प्रसारण का अवसर दिया जाता है। इस कार्यक्रम में स्कूल अथवा कालेज के छात्र भाग ले सकते हैं। प्रसारण-अवसर के अतिरिक्त उन्हें पारिश्रमिक भी दिया जाता है।

१३ सुबद्ध संगीत –

शास्त्रीय संगीत पर आधारित कार्यक्रम सुबद्ध संगीत कहलाता है। इस कार्यक्रम में विभिन्न कलाकारों के गायन अथवा वादन टेप करके उन्हें बजाया जाता है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य कम से कम समय में कलाकार की प्रतिभा से श्रोताओं को सम्यक रूपेण परिचित कराना तथा उनमें शा. संगीत के प्रति रुचि जाग्रत करना है। अधिक समय के कार्यक्रम तो साधारणत: आकाशवाणी द्वारा नियमित विशेष सभाओं में आयोजित किये जाते हैं। इस प्रकार तीन मि. से पाँच मि. के समय के अंतर्गत ही गायक अथवा वादक को अपनी कला का प्रदर्शन करने का अवसर इस कार्यक्रम द्वारा दिया जाता है।

१४ संगीत सरिता –

आकाशवाणी द्वारा प्रसारित होने वाला सुगम और शास्त्रीय संगीत का मिला जुला यह कार्यक्रम शास्त्रीय संगीत के प्रति जनरुचि जगाने की दृष्टि से अत्यंत महत्व का है। यह नियमित रूप से प्रात: ६.३० से ८ बजे तक ३० मि. का होता है। इसमें शास्त्रीय राग पर आधारित फिल्मी गीत पहले बजाया जाता है। फिर उस राग की जानकारी देकर उस पर थोड़ा सा शास्त्रीय संगीत पर आधारित गायन अथवा वादन बजाया जाता है।

प्रसारण के अतिरिक्त आकाशवाणी की अन्य गतिविधियाँ –

१ आकाशवाणी संग्रहालय
२ स्वर परीक्षण प्रणाली
३ आकाशवाणी संगीत प्रतियोगिता
४ आकाशवाणी केन्द्र पर सम्मानार्थ पदों की स्थापना
(क) प्रोड्यूसर एमरिट्स (ख) संगीत सलाहकार

१ आकाशवाणी संग्रहालय –

आकाशवाणी द्वारा प्रसारित प्रसिद्ध गायक-वादकों के गायन तथा वादन को सुरक्षित रखने की व्यवस्था आकाशवाणी संग्रहालय यूनिट करता है। इस शताब्दी के पांचवें दशक से यह व्यवस्था आरंभ की गयी। प्रारंभ में संगीत प्रेमियों के निजी संकलन से पुराने डिस्क आदि इस संग्रहालय के कार्यकर्ताओं ने एकत्रित किये, तत्पश्चात उन्हें टेप में परिवर्तित करके संग्रहालय में सुरक्षित रखा गया है। पुराने डिस्क के रूप में उपलब्ध जिन संगीतसों के टेप आकाशवाणी में उपलब्ध हैं, उनमें पं. रामकृष्ण बुआ वझे, वहीद खाँ (बहरे) उस्ताद रजबअली खाँ, उस्ताद फैय्याज खाँ आदि गायकों के हैं। संगीत के क्षेत्र में शोधकार्य कर रहे विद्यार्थियों को इससे बहुत लाभ होता है। कुछ कंपनियों ने आकाशवाणी संग्रहालय से रेकार्डस लेकर उन्हें अपनी कंपनी के नाम से जारी कराया है तथा बाज़ार में जनसाधारणों को उपलब्ध कराया है।

२ स्वर परीक्षण प्रणाली –

इस शताब्दी के पांचवें दशक में ही अर्थात सन् १९५२ में डा. बी. वी. केसकर ने रेडियो प्रसारण को एक व्यवस्थित रूप दिया जिसके अंतर्गत कलाकारों के लिये स्वर-परीक्षण प्रणाली की व्यवस्था की गयी। आकाशवाणी में शास्त्रीय संगीत का प्रसारण वे ही कलाकार कर सकते हैं जो स्वर-परीक्षण प्रणाली में उत्तीर्ण हो चुके हैं। कलाकारों की निजी योग्यता के अनुसार उन्हें विभिन्न ग्रेड प्रदान किये जाते हैं – जैसे बी., बी. हाई, ए, उच्च श्रेणी। कलाकारों को अगली श्रेणी में प्रवेश पाने के लिये अप ग्रेडिंग व्यवस्था है। वर्तमान में भी स्वर-परीक्षण-प्रणाली पूर्ण रूप से व्यवस्थित कार्य कर रही है। सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय की रिपोर्ट २२ के अनुसार हिन्दुस्तानी और पाश्चात्य संगीत के आजकल पांच यूनिट कार्य कर रहे हैं।[1]

---

१ 'सूचना व प्रसारण मंत्रालय, वार्षिक रिपोर्ट १९८१-८२

ये यूनिट इस प्रकार हैं —

१ स्थानीय स्वर परीक्षण कमेटी (सुगम संगीत के लिये यह कमेटी ही कलाकारों का चयन करती है।)

२ म्यूज़िक आडीशन बाडी (कलाकार का शास्त्रीय संगीत सुगम संगीत और अप ग्रेडिंग करने की यह अंतिम निर्णायक कमेटी है)

३ सेन्ट्रल म्यूज़िक यूनिट (केन्द्र निर्देशालय में सुगम संगीत, लोक संगीत का स्वर परीक्षण तथा ग्रेड प्रदान करने का कार्य यह यूनिट करता है।

४ विभागीय कमेटी (लोक संगीत के लिये कलाकारों का चयन करना इस कमेटी का कार्य है। आदि-जाति के परीक्षण की व्यवस्था यही कमेटी करती है।

५ क्षेत्रीय ऑडीशन कमेटी (दिल्ली, कलकत्ता, मद्रास, बम्बई में पाश्चात्य संगीत के लिये स्वर-परीक्षण यही कमेटी करती है।)

इस प्रकार शास्त्रीय-संगीत, लोक-संगीत, सुगम-संगीत, पाश्चात्य-संगीत सभी कलाकारों का चयन विभिन्न समीतियों द्वारा किया जाता है। कलाकार किसी एक ग्रेड में पाँच वर्ष तक प्रसारण कर सकता है। उसके पश्चात उसे अपग्रेडिंग के लिये प्रार्थनापत्र देना पड़ता है। अन्यथा उसकी संविदा रद्द कर दी जाती है।

२ आकाशवाणी प्रतियोगिता —

आकाशवाणी की विभिन्न गतिविधियों में शास्त्रीय-संगीत प्रतियोगिता का राष्ट्रीय स्तर पर आयोजन एक महत्वपूर्ण विषय है। आकाशवाणी में उत्तर-भारतीय एवं दक्षिण भारतीय संगीत की प्रतियोगितायें विभिन्न प्रकार से आयोजित की जाती हैं। प्रतियोगिता में उत्तीर्ण कलाकारों के प्रसारण का सीधा अवसर दिया जाता है। युवा प्रतिभाओं (१६ से २४ वर्ष की आयु) को अवसर और प्रोत्साहन प्रदान करने के उद्देश्य से इस कार्यक्रम का आरंभ किया गया। वर्तमान में भी यह प्रतियोगिता आयोजित की जाती है। उत्तीर्ण कलाकारों को नियमित कार्यक्रम प्रसारण के अवसर के साथ नगद पुरस्कार

भी दिया जाता है। दुर्लभ वाद्यों के लिये भी विशेष पुरस्कार दिये जाते हैं।

४ आकाशवाणी केन्द्र द्वारा सम्मानार्थ पदों की स्थापना –

(क) प्रोड्यूसर एमरिट्स – शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य करने वाले, ख्याति प्राप्त एवं विशेष दक्ष व्यक्तियों को इस पद पर नियुक्त करके उनके दीर्घकालीन अनुभवों और योग्यता का सदुपयोग आकाशवाणी द्वारा किया जाने लगा है। आकाशवाणी की इस व्यवस्था से संगीत जगत को कलाकारों को कार्यकाल की समाप्ति के बाद भी, उनके दीर्घकालीन अनुभवों तथा विशिष्ट दक्षता का लाभ उठाने का अवसर रहता है। इससे आकाशवाणी द्वारा प्रसिद्ध कलाकार को सम्मान के साथ-साथ उसे अपने विशिष्ट अध्ययन क्षेत्र का और अधिक विकास के करने में सहायता मिलती है और उसमें कार्यक्षमता बनी रहती है। उदाहरणार्थ देश की शीर्षस्थ कलाकार सुमति मुटाटकर दिल्ली विश्वविद्यालयों में विभिन्न उच्च पदों पर कार्य करते हुये जब संगीत एवं ललित कला – संकाय के अधिष्ठाता पद से सेवा-निवृत्त हुई तो आकाशवाणी ने, 'प्रोड्यूसर एमरिट्स' का पद प्रदान करके उन्हें सम्मानित किया अपितु महान विदुषी कलाकार की दक्षता और अनुभव से यथोचित लाभ उठाया। उनसे पूर्व बीसवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध के विख्यात कलाकार पंडित दिलीपचंद्र बेदी भी इस पद को सुशोभित कर चुके हैं।

(ख) संगीत सलाहकार –

आकाशवाणी के संगीत कार्यक्रमों को सही मार्गदर्शन प्रदान करने के लिये संगीत सलाहकारों की नियुक्ति की जाती है। आकाशवाणी इन अनुभवी तथा प्रसिद्ध कलाकारों को को विशिष्ट पदों पर सम्मानित करके संगीत-विकास में एक महत्वपूर्ण योगदान कर रही है। उदाहरण के लिये आगरा घराने के सुविख्यात कलाकार उस्ताद विलायत हुसैन खाँ कई वर्षों तक

आकाशवाणी के संगीत सलाहकार के पद पर नियुक्त हुए

आकाशवाणी प्रसारण का आधुनिक हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत पर प्रभाव –

1 गायकों के प्रस्तुतिकरण में अनुशासन, नियमबद्धता एवं उसकी कला का परिष्कृत रूप आजकल देखने को मिलता है।
२ आकाशवाणी द्वारा कलाकारों को प्रसिद्धि तथा संरक्षण प्राप्त हो रहा है।
३ आजकल का गायक गायन में शब्दोच्चार को अधिक महत्व देने लगा है ताकि वह साफ हो स्पष्ट हो।
४ आकाशवाणी के पदार्पण से गायकों की स्वर प्रणाली में काफी परिवर्तन आया है अर्थात साधारणतः गायकों की परिष्कृत आवाज़ सुनने को मिलने लगी है।

आकाशवाणी पर प्रसारण से पूर्व संगीत का एक विस्तृत दायरा नहीं था। यह या तो रियासतों में बंद था या लोक-कला के रूप में पनप रहा था। दोनों ही दशाओं में इसका दायरा बहुत संकुचित था। अलग-अलग रियासतों में अलग-अलग घरानेदार संगीतज्ञों का पोषण होता था। लोक-संगीत का प्रसार व प्रचार अपने-अपने गाँवों, कस्बों इत्यादि के सीमित दायरे में था। आकाशवाणी पर प्रसारण से जहाँ सभी प्रकार का संगीत सर्वसाधारण के लिये सुलभ हो गया वहीं संगीत-साधकों के लिये भी यह कम महत्वपूर्ण सिद्ध नहीं हुआ। इस प्रकार रेडियो का आगमन भारतीय संगीत के इतिहास की एक क्रांतिकारी घटना थी किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था में यांत्रिक साधनों, विशेषतः रेडियो की सामाजिक भूमिका सर्वविदित है। संसार की ताज़ा गतिविधियों से जनता का तत्काल परिचय रेडियो के कारण ही हुआ। रेडियो ने संपूर्ण मानव जाति को प्रगति के पथ पर अग्रसर होने का महत्वपूर्ण अवसर दिया है। श्राव्य कला होने के कारण संगीत से इसका संबंध बहुत निकट का हो जाता है। संगीत

के लिये तो रेडियो वरदान सिद्ध हुआ है। उच्चकोटि के संगीतिज्ञ भी रेडियो, टेपरेकार्डर इत्यादि की उपयोगिता स्वीकार कर चुके हैं। शास्त्रीय संगीत को जनसुलभ और लोकप्रिय बनाने की जो महत्वपूर्ण भूमिका आकाशवाणी ने निभाई है, उसके महत्व को भुलाया नहीं जा सकता।

आकाशवाणी द्वारा प्रसारित जिन विभिन्न संगीत-कार्यक्रमों का प्रसारण होता है उन कार्यक्रमों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(१) कलाकार प्रधान कार्यक्रम (२) श्रोता प्रधान कार्यक्रम

ऐसे अनेक कार्यक्रम जिनको प्रारंभ करने का उद्देश्य कलाकारों को उचित अवसर एवं प्रोत्साहन प्रदान करना है उन्हें 'कलाकार प्रधान कार्यक्रम' कहा जा सकता है। इनमें संगीत का राष्ट्रीय प्रसारण, रेडियो संगीत सम्मेलन, आकाशवाणी का नियमित प्रसारण, विशेष सभायें आदि सम्मिलित हैं। श्रोता-प्रधान कार्यक्रमों में सुगम-संगीत, फिल्म-संगीत, लोक-संगीत, पाश्चात्य-संगीत के कार्यक्रम आते हैं।

आकाशवाणी ने इन सभी प्रसारणों के जरिये सांगीतिक साक्षरता का प्रमाण बढ़ाने तथा जनसाधारण की बुद्धिमत्ता का गुणांक ऊपर उठाने की दृष्टि से बड़ा ही महत्वपूर्ण कार्य किया है। मुख्यतया आकाशवाणी के कारण किसी न किसी प्रकार के संगीत का प्रचलन गृहीत माना जा सकता है। आकाशवाणी के केन्द्रों का फैला हुआ जाल, रेडियो-सेट की बढ़ती हुई संख्या, उसकी सरकारी ठेकेदारी, उसके द्वारा निश्चित की गयी परंपरा आदि के कारण भविष्य में भी ठोस कार्य होने की संभावना है।

परंतु आकाशवाणी ने अपनी आदर्श-लक्ष्यता का विचार-प्रणाली में तथा कार्यपद्धति में गतिशीलता का जो अभाव दिखाया है वह सहज ही ध्यान में आ जाता है। अब भी अपने बोध वाक्य, 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' के संकुचित तथा शब्दशः अर्थ से चिपके रहकर ही उसका कार्य चल रहा है। जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, वैसे-वैसे समाज के सांस्कृतिक

स्तर तथा संख्या गुणों से अधिक विविध होते जाते हैं। उनकी सांगीतिक आवश्यकतायें भी अधिकाधिक विविध होती जाती हैं। आकाशवाणी को इन सभी के लिये पर्याप्त बनना है इस बात को भूल जाने से काम नहीं चलेगा। सांस्कृतिक दृष्टि से समाज में सुरुचि सम्पन्न तथा साधारण अभिरुचि वाले लोग हमेशा रहेंगे इस बात को लक्षित करके भी व्यवहार करना चाहिये। शिक्षा आदि के कारण आज जिनकी अभिरुचि साधारण हो ऐसे लोग आगे चलकर अभिरुचि सम्पन्न होंगे ही।

जनतंत्र का अर्थ है सांगीतिक दृष्टि से साक्षर समाज 'साक्षर' तथा 'साक्षर और अभिरुचि' सम्पन्न स्तरों में मुक्त आदान-प्रदान के योग्य अवस्था निर्माण करना। कार्यक्रमों के आयोजन तथा उसके प्रस्तुतिकरण में आकाशवाणी को चाहिये कि वह इस सत्य के आकलन को सिद्ध करे। आकाशवाणी शासन का एक ऐसा संस्थान है कि जिसकी ओर कलाकारों को प्रोत्साहन देने वाली, जनता में संगीत का सर्वाधिक प्रचार-प्रसार करने वाली संस्था, संगीत की शिक्षा का साधन, विविध प्रकार के संगीत रसिकों की आकांक्षापूर्ति करनेवाली और बहुरंगीय मनोरंजन करने वाली संस्था के नाते ही साधारण मनुष्य देखता है। अतः समय के अनुसार उसकी कार्यप्रणाली में परिवर्तन होना आवश्यक है। ताकि संगीत जगत में इसे विशाल रूप प्राप्त हो, इसके द्वारा कला में आस्था बढ़ जाय, अध्ययनवृत्ति का संवर्धन हो जाय, कलाकारों को इसके द्वारा प्रोत्साहन मिले। संगीत की परिभाषा राष्ट्रीय एकता का भी महत्वपूर्ण कार्य कर सकती है। इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखकर आकाशवाणी अपनी उद्देश्य नीति को फिर से जाँचकर स्थिर करे और सुधार करे तो यह एक वरदान ही होगा।

२ दूरदर्शन — दूरदर्शन प्रचार व प्रसार माध्यम का श्राव्य माध्यम होने के साथ-साथ दृश्य माध्यम होने के कारण इस उपकरण की भूमिका शास्त्रीय संगीत की उन्नति में भी महत्वपूर्ण है। भारतवर्ष में दूरदर्शन प्रसारण का प्रारंभ १५ सितंबर

१९५९ को किया गया। आकाश-भारती के अनुसार प्रारंभ में दूरदर्शन आकाशवाणी के सहविभाग के रूप में कार्य करता रहा।[1] जनवरी प्रथम १९७६ से आकाशवाणी केन्द्र से पृथक होकर अब वह सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के एक स्वतंत्र विभाग के स्तर पर कार्य कर रहा है। प्रारंभिक कार्यक्रम केवल ४० मि॰ की अवधि तक ही सीमित था जिसमें जीवंत कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाता था। धीरे-धीरे कार्यक्रमों में विविधता लाई गयी तथा नये केन्द्रों की स्थापना की गयी। इसमें लम्बी अवधि के कार्यक्रमों को दूरदर्शन के माध्यम से देखा जा सकता था। दूरदर्शन में विभिन्न वर्ग के श्रोताओं की रुचि का ध्यान रखते हुये महिलाओं, बालकों, युवाओं के लिये कार्यक्रमों के अतिरिक्त समाचार, खेलकूद, कृषि-दर्शन, शास्त्रीय संगीत, तथा फिल्मी गीतों आदि के प्रसारण की व्यवस्था की गयी। सन् १९६९ से कार्यक्रम प्रसारण की अवधि दो घंटा प्रतिदिन, १९७० से तीन घंटा प्रतिदिन, १९७१ से साढ़े तीन घंटा प्रतिदिन और १९७३ से चार घंटा प्रतिदिन कर दी गयी। सन् १९७८ में सायंकालीन सभा के अतिरिक्त प्रातःकालीन सभा का प्रारंभ किया गया। दूरदर्शन में कार्यक्रम के विस्तार के अतिरिक्त भिन्न-भिन्न केन्द्रों से भी कार्यक्रम प्रसारित करने की व्यवस्था की गयी वर्ष १९८२ में नागपुर में एक केन्द्र खोला गया। सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार सन् १९८३-८४ में कुल नौ प्रसारण केन्द्र, श्रीनगर, जालंधर, मद्रास, दिल्ली, लखनऊ, कलकत्ता, हैदराबाद, बंगलौर तथा बम्बई में खुले।[2] इस प्रकार पिछले दो दशकों में दूरदर्शन के कार्यक्रमों एवं केन्द्रों का विस्तार बहुत तीव्र गति से हुआ।

भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का प्रतीक ललित कलाओं में संगीत भी आज दूरदर्शन के कार्यक्रमों

---

1 आकाश भारती वर्गीस कमेटी रिपोर्ट, भाग 1, पृ॰ 10

२ सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, वार्षिक रिपोर्ट १९८३-८४, पृ॰ २९

का विषय है। शास्त्रीय-संगीत के अतिरिक्त (गायन) वाद्य-वादन एवं नृत्य-कला के कार्यक्रम भी दूरदर्शन प्रस्तुत कर रहा है। शास्त्रीय-संगीत के अतिरिक्त उपशास्त्रीय संगीत, सुगम-संगीत, लोक-संगीत, फिल्म-संगीत भी आजकल दूरदर्शन के प्रसारण के विषय बने हुये हैं। उपरोक्त कार्यक्रमों के अतिरिक्त दूरदर्शन आधुनिक वर्ग विशेष की रुचि का ध्यान रखते हुये पाश्चात्य-संगीत का भी प्रसारण कर रहा है।

शास्त्रीय संगीत का राष्ट्रीय प्रसारण –

दूरदर्शन द्वारा प्रसारित शास्त्रीय संगीत का राष्ट्रीय प्रसारण कार्यक्रम एक उच्च स्तरीय कार्यक्रम है। इसमें देश भर के उच्चकोटि के गायक, वादकों और नर्तकों को दर्शकों के समक्ष कला-प्रदर्शन का अवसर प्रदान किया जाता है। राष्ट्रीय प्रसारण में न केवल उत्तर-भारतीय शास्त्रीय-संगीत अपितु कर्नाटक संगीत के प्रसारण को भी सम्मिलित किया गया है। संगीत का राष्ट्रीय प्रसारण ३० मिनट की अवधि का कार्यक्रम है। जिसे भारतवर्ष के मुख्य केन्द्र बम्बई, दिल्ली, कलकत्ता, मद्रास रेकार्ड करके प्रसारित करते हैं। प्रसारण के उपरांत दूरदर्शन संग्रहालय में उन्हें सुरक्षित रखने की भी व्यवस्था की गयी है। दूरदर्शन का शास्त्रीय संगीत का राष्ट्रीय प्रसारण कलाकार को सुनने के साथ-साथ देखने का भी अवसर प्रदान करता है। आधुनिक काल में दूरदर्शन के माध्यम से शास्त्रीय संगीत का राष्ट्रीय प्रसारण निस्संदेह प्रशंसनीय कार्य है।

दूरदर्शन के विभिन्न केन्द्र और उनका संगीत प्रसारण –

राष्ट्रीय प्रसारण के अतिरिक्त दूरदर्शन विभिन्न केन्द्रों से शास्त्रीय संगीत के अन्य कार्यक्रमों को भी प्रसारित करता है। उदाहरणार्थ दिल्ली केन्द्र से दूर-दर्शन प्रत्येक रविवार (रात्रि १० बजे) नृत्य का अखिल भारतीय

कार्यक्रम प्रसारित करता है। श्रीनगर केन्द्र से शास्त्रीय संगीत का प्रसारण रात्रि (१०.०० बजे)[1], लखनऊ केन्द्र से शास्त्रीय संगीत का प्रसारण रात्रि (१०.०० बजे) होता है।[2] जयपुर केन्द्र शास्त्रीय संगीत का प्रसारण रात्रि आठ बजे करता है।[3] मद्रास केन्द्र से शास्त्रीय संगीत का प्रसारण (कर्नाटक संगीत) रात्रि ६.३० मिनट पर होता है।[4] कलकत्ता केन्द्र से शास्त्रीय संगीत का प्रसारण रात्रि आठ बजे होता है।[5] यद्यपि शास्त्रीय संगीत का राष्ट्रीय प्रसारित कार्यक्रम उच्चस्तरीय है, परंतु अन्य केन्द्र श्रीनगर, लखनऊ, जयपुर, मद्रास कलकत्ता अपने निजी स्तर पर भी शास्त्रीय-संगीत प्रसारित करते हैं। शास्त्रीय संगीत के अतिरिक्त विभिन्न केन्द्रों से लोकसंगीत का प्रसारण भी नियमित रूप से होता है। लोकसंगीत के दर्शक-श्रोताओं की संख्या विभिन्न राज्यों में काफी बढ़ गयी है। दूरदर्शन के श्रीनगर केन्द्र से लोकसंगीत का प्रसारण लगभग प्रतिदिन होता है।[6] जालंधर दूरदर्शन केन्द्र से सबद कीर्तन, पंजाबी गीत, भक्ति संगीत लगभग प्रतिदिन प्रसारित होता है।[7] बंबई केन्द्र से मराठी, गुजराती लोक संगीत सप्ताह में लगभग चार-पांच दिन प्रसारित होता है।[8] इसी प्रकार कलकत्ता दूरदर्शन केन्द्र से रवीन्द्र संगीत, नजरुल गीति सप्ताह में लगभग तीन-चार दिन प्रसारित होते हैं।

---

१ अकाशवाणी पत्रिका, सितम्बर, १९८९, पृ.४९
२ वही , " , " , पृ.५०
३ " , " , " , पृ.५०
४ वही , " , " , पृ.५१
५ वही , " , " , पृ.५२
६ वही , " , " , पृ.४२
७ वही , " , " , पृ.५०
८ वही , " , " , पृ.५१
९ वही , " , " , पृ.५२

सम्प्रति दूरदर्शन द्वारा शास्त्रीय संगीत की अपेक्षा सुगम संगीत का प्रसारण अधिक परिमाण में हो रहा है। दूरदर्शन द्वारा शास्त्रीय-संगीत को अधिक प्रोत्साहन प्रदान करने में अनेक कठिनाइयाँ हैं। श्रवण-प्रधान कला होने के कारण शास्त्रीय संगीत को आकाशवाणी ने इसे पूर्ण प्रोत्साहन प्रदान किया है। दूरदर्शन के माध्यम से श्रव्य-दृश्य दोनों का आनंद लिया जा सकता है। दूरदर्शन पर शास्त्रीय संगीत की लम्बी अवधि के कार्यक्रम प्रसारित करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। जैसे दूरदर्शन से शास्त्रीय संगीत में अभिरुचि रखने वाले वर्ग के साथ सर्वसाधारण वर्ग भी जुड़ा है। इन तथ्यों को ध्यान में रखकर ही दूरदर्शन के कार्यक्रमों की व्यवस्था की जाती है। दूरदर्शन में रोचक तथा ज्ञानप्रद शास्त्रीय संगीत के कम अवधि के कार्यक्रम संयोजित किये जाने चाहियें जिससे जन-साधारण की शास्त्रीय-संगीत के कार्यक्रमों में रुचि और ज्ञानवृद्धि हो। इसके लिये किसी लोकप्रिय कार्यक्रम के पहले या फिल्म के मध्यांतर में पाँच या १० मिनट के शास्त्रीय संगीत के आकर्षक कार्यक्रम रखे जायें ताकि लोग उन्हें भी अनिवार्यतः देख सकें और उनसे ऊबें भी नहीं। दूरदर्शन पर शास्त्रीय-संगीत के कलाकारों का परिचय, भेंटवार्ता, और उनकी उपलब्धियों से संबंधित कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिये। दूरदर्शन को शास्त्रीय संगीत के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है। इसकी संभावनायें और अधिक बढ़ सकती हैं यदि दूरदर्शन के कार्यक्रमों के क्षेत्र के विकास के साथ-साथ संगीत प्रसारण को भी विशेष महत्व प्रदान किया जाय। जैसाकि वर्ष १९८४ में दूरदर्शन ट्रांसमीटरों की संख्या लगभग १०० तक पहुँच जायेगी।[1] इतने अधिक विस्तार का सदुपयोग शास्त्रीय संगीत का विकास करने के लिये किया जाय यह अत्यन्त आवश्यक है। इसकेलिये

---

1 जोशी कमेटी रिपोर्ट, २८.४.१९८४, पृ.२१

यह आवश्यक है कि शास्त्रीय-संगीत के कार्यक्रमों में नये-नये प्रयोग किये जायें। उदाहरणार्थ आकाशवाणी द्वारा छोटे-छोटे शिक्षाप्रद कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाता है, उसी प्रकार दूरदर्शन को भी अधिक प्रभावशाली ढंग से नये कार्यक्रम का विकास करना चाहिये। संगीत के कार्यक्रम में विविधता और श्रोताओं की रुचि बढ़ाने के लिये निम्नलिखित कार्यक्रमों का प्रयोग किया जाना चाहिये।

(1) **प्रसिद्ध संगीतकारों की जीवनी प्रसारण** – इस कार्यक्रम के अंतर्गत पूर्व प्रसिद्ध एवं सफल कलाकारों की संगीत कला में उपलब्धियों, साधना एवं योगदान के विषय में दर्शकों को अवगत कराने का प्रयास किया जाना चाहिये। इस तरह का १९८९-१९९० में दूरदर्शन द्वारा प्रसारित कार्यक्रम 'साधना' ९ बजे से ९.३० बजे तक आधे घंटे का काफी अच्छा कार्यक्रम था। पर अब भी काफी कलाकार बाकी हैं जिनका प्रसारण नहीं हो पाया है। इसी तरह का कार्यक्रम, 'ग्रेट मास्टर्स' भी अच्छा बन पड़ा था।

(२) **शास्त्रीय संगीत से परिचय** – छोटे-छोटे रोचक एवं शिक्षाप्रद कार्यक्रमों द्वारा दर्शकों का संगीत कला से परिचय कराया जाना चाहिये। जैसे आकाशवाणी द्वारा प्रसारित, 'संगीत सरिता', 'पत्रिका' और 'महफिल' आदि कार्यक्रम हैं।

(3) **उभरते कलाकारों से संबंधित विशेष कार्यक्रम** – जिस प्रकार आकाशवाणी मंगलवारीय तथा अन्य रात्रिकालीन संगीत सभाओं में युवाओं के लिये विशेष कार्यक्रम प्रसारित करती है। उसी प्रकार दूरदर्शन से भी युवा प्रतिभाओं को प्रोत्साहित करने के लिये कार्यक्रम प्रसारित किये जाने चाहियें। इनमें से कुछ कार्यक्रम प्रतियोगितात्मक भी हो सकते हैं। बीच में दूरदर्शन द्वारा प्रसारित कार्यक्रम, 'लहर लहर संगीत' इसी प्रकार का उत्कृष्ट कार्यक्रम था। परंतु यह कार्यक्रम सभी भाषाओं के सुगम संगीत पर था। इसमें कार्यक्रम में जितने युवा गाते थे उनमें से किसका गीत श्रेष्ठ है यह बताने पर श्रोताओं के लिये भी पुरस्कार की व्यवस्था थी। इससे एक पंथ दो काज हो रहे थे

युवा प्रतिभाओं को प्रोत्साहन के साथ-साथ श्रोताओं को भी प्रोत्साहन दिया जा रहा था। इसी प्रकार के प्रयोग शास्त्रीय संगीत के प्रसारण में भी किये जाने चाहिये।

आकाशवाणी ने इस शताब्दी के पूर्वार्द्ध में शास्त्रीय संगीत को संरक्षण प्रदान किया, उसी प्रकार इसी शताब्दी के उत्तरार्ध में दूरदर्शन भी शास्त्रीय संगीत को अपने कार्यक्रमों में प्रसारित कर, एक महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। दूरदर्शन में शास्त्रीय संगीत का प्रसारण सीमित है इसमें अभी और अधिक विस्तार की आवश्यकता है। इस संदर्भ में आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के संगीत प्रसारण में सुधार संबंधी कुछ सुझाव यहाँ प्रस्तुत हैं —

आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के संगीत प्रसारण में सुधार संबंधी सुझाव —

यद्यपि आकाशवाणी प्रसारण में शास्त्रीय संगीत को प्रधानता देकर कार्यक्रमों में विविधता लाने के सफल प्रयास किये गये हैं; किन्तु दैनिक कार्यक्रम में कुछ समय ऐसा भी है जिसमें प्रसारण अपेक्षाकृत अल्प अथवा कम समय के लिये किया जाता है। शास्त्रीय संगीत के प्रसारण सम्बन्धी कुछ सुझाव यहाँ दिये जा रहे हैं —

① पिछले कुछ समय से यह पाया गया है कि शास्त्रीय गायन का प्रसारण वाद्य संगीत की अपेक्षा कम हो गया है। दूसरी ओर वाद्य संगीत में भी गिने-चुने वाद्यों जैसे सितार, वायलिन, शहनाई, बाँसुरी वादन का ही प्रसारण अपेक्षाकृत अधिक हो गया है। यद्यपि इस प्रकार के परिवर्तनों के कारण की खोज इस शोधकार्य की परिधि से बाहर का विषय है। तथापि यह सुझाव देना आवश्यक है कि गायन संबंधी कार्यक्रम में यदि वृद्धि संभव न हो तो उसे कम से कम वाद्य संगीत की तुलना में उचित स्थान अवश्य मिलना चाहिये।

② दूरदर्शन के विकास के साथ यह बात ध्यान में रखना अत्यंत आवश्यक हो गया है कि आकाशवाणी और दूरदर्शन

के एक प्रकार के कार्यक्रमों में परस्पर असामंजस्य नहीं होना चाहिये। उदाहरणार्थ जब दूरदर्शन की रात्रिकालीन सभा (१०.००) बजे) में अत्यंत महत्वपूर्ण साप्ताहिक विशेष कार्यक्रम 'संगीत सभा' प्रसारित हो रहा होता है; ठीक उसी समय (१०.०० बजे) आकाशवाणी से सप्ताह का सबसे महत्वपूर्ण कार्यक्रम 'चयन' भी प्रसारित हो रहा होता है। शास्त्रीय संगीत में रुचि रखने वाले श्रोताओं के लिये ये दोनों ही कार्यक्रम इतने अधिक महत्वपूर्ण एवं लाभप्रद हैं कि न तो किसी एक कार्यक्रम को छोड़ा जा सकता है और न ही दोनों को एक साथ सुना ही जा सकता है। इन दोनों कार्यक्रमों में दोनों संस्थाओं का सामंजस्य रखना अत्यन्त ही आवश्यक है।

(४) आकाशवाणी की स्वर परीक्षण प्रणाली में अनेक सुधारों की अपेक्षा है। स्वर- परीक्षण में अनुत्तीर्ण व्यक्ति को इसकी जानकारी दी जानी चाहिये वह अमुक पक्षों पर अभ्यस्त न होने के कारण अस्वीकृत किया गया है। इससे शास्त्रीय संगीत के उभरते कलाकारों को प्रोत्साहन और अपनी कला में वांछित सुधार करने में सहायता मिलेगी।

(५) आकाशवाणी द्वारा संगीत संबंधी विभिन्न कार्यक्रमों के प्रसारण के अतिरिक्त उससे यह अपेक्षा करना स्वाभाविक है कि वह संगीत शिक्षा प्रसारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करे। इस संबंध में हम यह सुझाव देना चाहते हैं कि शिक्षा (संगीत) संबंधी प्रसारण को न केवल पुर्नजीवित किया जाय अपितु इसी प्रकार के और नये कार्यक्रमों के विषय में गंभीरता से विचार किया जाना चाहिये।

दूरदर्शन और आकाशवाणी जैसे प्रचार माध्यमों के प्रयोग के संबंध में प्रसिद्ध संगीतज्ञों व कलाकारों के मत इस प्रकार हैं—

श्रीमती सुमति मुटाटकर —

आकाशवाणी ने शास्त्रीय संगीत के प्रचार-प्रसार में बहुत अधिक योगदान दिया है। पर टी.वी. ने अभी उतना योगदान नहीं दिया है उसे इसके लिये अभी बहुत

कुछ करना है। टी.वी. पर शास्त्रीय गायन की समय-सीमा बहुत कम है और कार्यक्रम भी अधिक होने चाहियें। मुझसे किसी टी.वी. अधिकारी ने कहा था टी.वी. तो दृश्य साधन होने के कारण शास्त्रीय संगीत के लिये उपयोगी नहीं है, तो फिर आकाशवाणी पर रेडियो ड्रामा क्यों दिया जाता है। वो तो श्राव्य साधन है। जब ड्रामा श्रव्य साधन द्वारा इतनी सफलता से प्रेषित किया जाता है तो शास्त्रीय संगीत टी.वी. पर क्यों नहीं प्रसारित किया जा सकता। टी.वी. पर शास्त्रीय संगीत के लिये दी गयी समय सीमा बहुत कम है और कार्यक्रम भी अधिक होने चाहियें।[1]

श्री महादेव प्रसाद मिश्र –

शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रम टी.वी. पर बहुत कम हैं और जो हैं उनका समय बहुत कम रखा जाता है। शास्त्रीय संगीत की प्रस्तुति के लिये आधा घंटे से कम का समय तो होना ही नहीं चाहिये। रेडियो के प्रोग्राम फिर ठीक हैं।[2]

पंडित छन्नूलाल मिश्र –

दूरदर्शन एवं आकाशवाणी द्वारा शास्त्रीय संगीत की सफलता के लिये योगदान के संबंध में पंडित जी का कथन है कि सिफारिश के आधार पर यहाँ ऐसे लोग जमे हैं, जिन्हें कला का ठीक से ज्ञान ही नहीं है। जब वे स्वयं अपूर्ण हैं तब उनकी प्रस्तुति क्या होगी। तथा इस ढंग की प्रस्तुति से जनता निश्चित ही गुमराह होगी और उसकी अरुचि शास्त्रीय संगीत के प्रति निश्चय ही बढ़ जायेगी। क्योंकि संगीत ऐसी चीज़ है जिसे समझने के लिये हर मनुष्य में प्रकृति ने ही ज्ञान प्रदत्त किया है कि वह जानते हुये भी समझ जाता है कि क्या

---

1 श्रीमती सुमति मुटाटकर, प्रत्यक्ष साक्षात्कार द्वारा प्राप्त, दिल्ली, २३.२.८८

२ प्रत्यक्ष साक्षात्कार द्वारा प्राप्त साभार, २४.८.८९, बनारस, महादेवप्रसाद मिश्र

सुंदर है और क्या असुंदर है। अतः योग्य पात्रों को इसमें स्थान न मिलने के कारण अवश्य ही ये माध्यम अयोग्य पात्रों को प्रश्रय देकर संगीत-कला का ह्रास कर रहे हैं।[1]

श्री बिलेन्दु मुखर्जी —

आकाशवाणी और टेलीविज़न शास्त्रीय संगीत को बढ़ावा देने की दृष्टि से आज जो योगदान दे रहे हैं; इससे अधिक भी इनका योगदान हो सकता है यदि राजनीति न हो इनके मध्य।[2]

के. जी. गिंडे —

सीमित समय के हिसाब से हर एक विषय का वे पूर्ण ज्ञान नहीं दे सकते। शास्त्रीय संगीत को रुचिकर बनाकर किसी भी धमि या रूपक द्वारा प्रदर्शित किया जाय तो साधारण जन का आकर्षण इस ओर बढ़ सकता है। यह कार्य आकाशवाणी टी. वी कर सकते हैं। डा. केसकर ने फिल्म संगीत बिलकुल बंद कर दिया था; इसके लिये उन्होंने कवियों की कविताओं को अच्छी तर्जों में बाँधकर उनका प्रसारण प्रारंभ करवाया था। ताकि लोगों के कान सुसंस्कृत हो सकें। इस तरह के कदम उठाने के कारण विरोध होगा; परंतु, एक नीति लेकर चलना होगा। आज कोई बड़ा कदम उठाने के पहले अपनी-अपनी कुर्सी के विषय में सोचते हैं। अतः आज हम इन साधनों से अधिक उम्मीद नहीं कर सकते।[3]

नियाज़ अहमद खान — ड्रामें-डाँस को अधिक टाईम दिया जाता है। जबकि लोगों को आकर्षित करने के लिये इन माध्यमों पर शास्त्रीय संगीत को अधिक समय देना चाहिये। दूसरे कलाकारों के साथ पक्षपात किया जाता है योग्यता को

---

1 पंडित चन्द्रलाल मिश्र, प्रत्यक्ष साक्षात्कार द्वारा प्राप्त, बनारस, २८.८.८९
२ श्री बिमलेन्दु मुखर्जी, " " " ", खैरागढ़,
३ के.जी. गिंडे , " " " ", बम्बई, १३.१०.८९

को आधार नहीं बनाया जाता। अपने-अपने को स्थान मिलता है। मुझे आडीशन में कहा एक स्वर की तान सुनाइये। मैंने कहा एक स्वर की तान होती ही नहीं है, आपका सवाल ही गलत है तो बोले आप ज्यादा नहीं बोल सकते जितना उत्तर है दो। मैंने कहा यदि गलत बात है तो मैं बोलूँगा। उसके बाद ३-४ साल तक मेरा प्रोग्राम रेडियो पर नहीं हुआ।[1]

उपरोक्त वक्तव्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि इन दोनों प्रचार माध्यमों का प्रयोग ठीक प्रकार से नहीं हो रहा है। जबकि ऐसा नहीं होना चाहिये। इसके पीछे एक कारण तो यह नज़र आता है कि स्वार्थपूर्ति के लिये इन साधनों का प्रयोग किया जा रहा है जो बहुत गलत है और इस प्रवृत्ति पर पूर्ण नियंत्रण किया जाना आवश्यक है। दूसरा कारण अधिकारी व्यक्तियों में जागरुकता का अभाव है। इसका अनुमान हम इस उदाहरण से लगा सकते हैं— "एक रेडियो अफसर जिनका काम यह देखना था कि छपे हुये कार्यक्रम के अनुसार कार्यक्रम सम्पन्न हो रहे हैं या नहीं। एक दिन सबेरे चिन्तित चेहरे से बरामदे में चक्कर काट रहे थे। संगीत शाखा के नौकर ने स्टूडियो से बाहर आकर पूछा—"साहब, सारंगीवाला तो सारंगी मिलाकर कार्यक्रम के लिये तैयार है आप किसका इंतज़ार कर रहे हैं?" अधिकारी ने झल्लाकर कहा —"सारंगीवाला तैयार है, परंतु कालिंगड़ा अभी तक क्यों नहीं आया? कार्यक्रम शुरू होने में अभी दो मिनट बाकी है, और अभी तक कालिंगड़ा का पता नहीं।" Kalingra on Sarangi!"[2]

इस प्रकार की घातक स्थिति इतने उत्तरदायित्व पूर्ण पद के लिये नहीं होनी चाहिये। इन माध्यमों पर जो भी शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रम दिये जा रहे हैं वे पूर्ण सफलता से सम्पन्न हों तथा कलाकारों के साथ पक्षपात न हो उनकी योग्यता की पूर्ण कीमत हो यह देखना अधिकारी व्यक्तियों का कर्तव्य है।

---

1 नियाज़ अहमदखान, प्रत्यक्ष साक्षात्कार द्वारा प्राप्त, बम्बई, १३.१०.८९

2 सं. क. वि., मार्च, १९६०, 'अब भी कालिंगड़ा ---' बा. र. देवधर, पृ. १२१

३ चित्रपट – आज के युग में प्रचार का सर्वोत्तम माध्यम सिनेमा है। अत्यधिक लोकप्रिय होने के कारण यह अपने में निहित प्रत्येक अच्छी बुरी बात को दर्शकों तक पहुँचा देता है। इसी तरह संगीत प्रचार का भी यह एक शक्तिशाली साधन है। यद्यपि संगीत प्रचार के लिये चित्रपट के अतिरिक्त रेडियो, टी.वी., ग्रामोफोन, कैसट-प्लेयर आदि साधन भी हैं; परंतु चित्रपटों की बात ही कुछ और है। इसका मुख्य कारण यह है कि चित्रपटों में गीत चित्रपट की कहानी के अनुरूप होते हैं और उस कहानी के अनुरूप चरित्र विशेष के लिये गाये गीतों में तदनुरूप नृत्य अथवा भावाभिव्यक्ति भी होती रहती है जिससे दर्शकों पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। अतः यह कहना अनुचित न होगा कि चित्रपट आज के युग में संगीत-प्रचार का सशक्त माध्यम है। यद्यपि सिनेमा के गीत हलकी फुलकी धुनों पर आधारित रहते हैं, फिर भी उनमें जो ताज़ापन और आकर्षण रहता है उससे शास्त्रीय संगीत मर्मज्ञों का मन भी एक बार डोल उठता है। इसके मुख्य कारण हैं गीत के सुंदर बोल, मधुर कंठ, और वृंद-वादन का संयोजन।

वस्तुतः संगीत की चर्चा जहाँ प्रारंभ होती है, वहाँ एक वस्तु अनिवार्यतः स्पष्ट हो जाती है कि किसी भी प्रकार के संगीत का प्रथम प्रभाव व गुण 'लोकरंजन' है; वह चाहे शास्त्रीय संगीत हो या फिल्म संगीत हो अथवा विभिन्न प्रदेशों का लोकसंगीत। 'संगीत' से पूर्व 'शास्त्रीय' शब्द लग जाने से एक बात प्रकट होती है कि ऐसा संगीत जो शास्त्र की दृष्टि से पूर्णतः निर्दोष तो हो, किंतु आंतरिक लोकरंजन की दृष्टि से भी वह पर्याप्त सक्षम हो।

फिल्म संगीत में शास्त्रीयता केवल वहीं तक मिलती है, जहाँ तक वह जनता जनार्दन के चित्त को अनुरंजित करने में सक्षम है। विभिन्न अवसरों पर अनुभूतियों को प्रेषित करने के लिये अनुकूल रागों का प्रयोग फिल्मों में किया गया है। लेकिन ऐसे गीत बहुत कम मिलेंगे जो पूर्णतः शास्त्र अनुकूल हों। क्योंकि वहाँ रंजकता प्रधान हो

जाती है, वहाँ संगीत को बाह्य बंधनों में जकड़कर नहीं रखा जा सकता। और इस जन-रंजन की प्रवृत्ति के कारण फिल्म संगीत लोगों को शास्त्रीय संगीत का परिचय देने में समर्थ हो सका है और कुछ लोगों की रुचि पूर्णतः शास्त्रीय संगीत की ओर मोड़ने में अवश्य सफल हुआ है।

अतः फिल्मों में शास्त्रीय संगीत का प्रयोग फिल्म संगीत व शास्त्रीय संगीत दोनों के ही पक्ष में हितकर है। ऐसा करने से शास्त्रीय संगीत जनता के अधिक निकट आयेगा, वह उसमें रुचि लेगी उसे सीखेगी तथा अंततोगत्वा यह तथ्य शास्त्रीय संगीत के विकास में सहायक सिद्ध होगा। दूसरी ओर शास्त्रीय संगीत के प्रयोग से फिल्म संगीत निर्देशकों को पाश्चात्य संगीत की ओर व्यर्थ की दौड़ नहीं लगानी पड़ेगी; और फिल्म संगीत का गिरता हुआ स्तर अपेक्षाकृत अधिक ऊँचा उठ सकेगा। लोकप्रियता की दृष्टि से आज भी शास्त्रीय संगीत पर आधारित फिल्मी गीत ही आगे हैं; गुड्डी, दस्तक, अमर प्रेम फिल्मों के गीत इस बात के साक्षी हैं। चित्रपट प्रचार का सशक्त माध्यम है उसका प्रयोग हम अपने हित के लिये करते हैं या अहित के लिये ये हमारी जिम्मेदारी है।

कई शास्त्रीय संगीतज्ञों का कथन है कि शास्त्रीय संगीत का अपना श्रोता वर्ग है उसे जन-जन में पहुँचाने की क्या आवश्यकता है? शास्त्रीय संगीत एक ऊर्ध्वमुखी कला है। यह सुनने वाले सीखने वाले को मानवीय भावनाओं के उच्च स्तर पर पहुँचाती है। इसलिये जितने अधिक से अधिक लोग इसका मनन चिन्तन करेंगे उनकी विचारधारा लोक स्तर से अपेक्षाकृत उच्च स्तर पर होगी अतः हम एक अच्छे व सुंदर समाज के निर्माण करने में समर्थ होंगे। आज वैसे भी सामाजिक-स्तर तेज़ी से हीनता और बुराइयों की ओर अग्रसर हो रहा है उसे इस पतन से बचाने के लिये आवश्यक है जन-जन में शास्त्रीय संगीत का प्रचार हो। और इसके लिये चित्रपट एक सशक्त प्रचार माध्यम है। इस दिशा में इस प्रचार माध्यम का पूर्ण उपयोग किया जाना चाहिये।

४ ध्वनिमुद्रण — ध्वनि मुद्रिका और ध्वनि पट्टिका में जो ध्वनिमुद्रण होता है उसने समाज के विविध स्तरों में संगीत को 'संगीत' के नाम से परिचित कराने में बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया है। इस जनसंपर्क माध्यम ने संगीत के नाते कुछ श्राव्य अनुभवों को पहचानने के जरिये सुनने वाले के मन में शास्त्रीय संगीत के कुछ निश्चित ढाँचे निर्माण किये हैं और संगीत कला की उन्नति के क्षेत्र में यह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

हमारे ध्वनिमुद्रिका के व्यवसाय को शैक्षणिक और सांस्कृतिक उत्तरदायित्व का भान नहीं है। यही कारण है कि आज इतनी बड़ी उपकरण सुविधा के होते हुये भी हम उसका सही लाभ नहीं उठा पा रहे हैं। असली लोक संगीत जिसकी तर्जें न बनी हों, संगीतकार के बाहर के दिनों की मुलाकातें तथा चर्चा, संगीत शिक्षा के कुछ कैसेट, सांगीतिक दृष्टि से महत्व रखने वाला परंतु व्यापार की दृष्टि से कम महत्व का खानदानी संगीत आदि तथ्यों को ध्वनि मुद्रिका तथा ध्वनि पट्टिका में स्थान नहीं मिलता। इन बातों का भान न होने का अर्थ है ऐतिहासिक दृष्टिकोण का न होना। आज आकाशवाणी, विद्यापीठ अकादमी आदि संस्थायें भी, जिनका दृष्टिकोण व्यापारी नहीं है इस दिशा में आशा स्थान नहीं बन पा रही हैं; इसका कारण तात्पर्यता तथा जागरूकता का अभाव ही माना जा सकता है। आज भी एक व्यक्ति द्वारा संचालित संस्था तथा व्यक्तिगत स्तर पर शौक होने से प्रयत्नशील व्यक्ति के पास ही ध्वनिमुद्रण संग्रह पाया जाता तथा उपलब्ध होता है।

(५) समाचार पत्र एवं पत्रिकायें —

आधुनिक काल में हिन्दुस्तानी संगीत के विकासशील चरण में समाचार-पत्र एवं पत्रिकायें उसके प्रचार व प्रसार में अभूतपूर्व सहयोग दे रही हैं। ये समाचार-पत्र समीक्षा और विज्ञापन द्वारा शास्त्रीय संगीत की

समकालीन गतिविधियों से अवगत कराते हैं। इस दिशा में कार्यरत वर्तमान के कुछ समाचार पत्र अग्रलिखित हैं:- इंडियन एक्सप्रेस, नवभारत टाईम्स, टाइम्स ऑफ इन्डिया, दि हिन्दुस्तान टाइम्स, स्टेटमैन, दिनमान, हिन्दुस्तान आदि। इन समाचार पत्रों में केवल एक ही दिन कार्यक्रमों की समीक्षा दी जाती है। शोधकर्त्री का सुझाव है कि इस विषय पर अधिक विस्तार-पूर्वक समीक्षा दी जानी चाहिये। इन दैनिक पत्रों के अतिरिक्त कुछ अन्य मैगज़ीन, 'एकानामिक टाइम्स' आदि भी संगीत की समीक्षा प्रकाशित करते हैं। समाचार-पत्रों के अतिरिक्त धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, दिनमान, इलस्ट्रेटेड वीकली आदि प्रमुख पत्रिकायें भी संगीत की समीक्षा प्रकाशित करती हैं। इन पत्रिकाओं में समय-समय पर विशिष्ट संगीतज्ञों के लेख भी प्रकाशित होते रहते हैं।

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में कुछ सांगीतिक पत्रिकायें भी प्रकाशित हुई हैं। उनमें से एक 'संगीतामृत प्रवाह' 'संगीत', 'संगीत कला विहार' प्रमुख हैं। इसके पश्चात की पत्रिकाओं में 'लक्ष्य संगीत' एक उच्च स्तरीय पत्रिका रही है। इस पत्रिका में उच्च स्तर के लेख प्रकाशित होते थे। वर्तमान में इसका प्रकाशन बंद हो गया है। संगीत से संबंधित विषयों की प्रकाशित होने वाली आज बहुत सी पत्रिकायें हैं जिसमें लेख तथा अन्य समाचार प्रकाशित होते रहते हैं। मद्रास अकादमी से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'जनरल ऑफ दि म्यूज़िक अकादमी' थी। इसके संपादक श्री वी॰ राघवन थे। मद्रास से ही 'इन्डियन म्यूज़िक जनरल' नामक संगीत पत्रिका श्री॰ वी॰ वी॰ सदागोपन के संपादकीय में प्रकाशित होती थी। वर्तमान में इसका प्रकाशन बंद हो गया है। संगीत नाटक अकादमी द्वारा प्रकाशित, 'संगीत नाटक अकादमी जनरल' एक उच्च स्तरीय त्रैमासिक पत्रिका है। वर्तमान में भी इसका प्रकाशन नियमित रूप से हो रहा है। बड़ौदा राज्य से भी एक पत्रिका 'जनरल ऑफ दि इन्डियन म्यूज़िकोलॉजिकल सोसायटी' नियमित रूप से प्रकाशित हो रही है। इस पत्रिका का संपादन

प्रो. आर. सी. मेहता कर रहे हैं। इस पत्रिका में उच्चस्तर के लेख प्रकाशित होते हैं। 'संगीत कला विहार' बम्बई के गांधर्व महाविद्यालय मण्डल द्वारा प्रकाशित पत्रिका है जिसका संपादन श्री मो. वि. भाटवडेकर कर रहे हैं। यह पत्रिका हिन्दी तथा मराठी दोनों भाषाओं में प्रकाशित होती है। संगीत कार्यालय हाथरस द्वारा प्रकाशित 'संगीत' पत्रिका वर्तमान में सर्वाधिक लोकप्रिय है। इस पत्रिका के संपादक श्री मुकेश गर्ग हैं। इस पत्रिका ने समय-समय पर 'घराना अंक', 'राग रागिनी अंक', भजन अंक, 'ख्याल अंक', 'संगीत शिक्षा अंक' आदि अंकों का प्रकाशन करके महत्वपूर्ण कार्य किया है।

उपर्युक्त पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त विभिन्न स्वायत्तशासी निकायों एवं राज्य सरकारों द्वारा प्रकाशित प्रमुख संगीत-पत्रिकाओं का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है—

बम्बई विश्वविद्यालय से प्रकाशित होने वाली 'म्यूज़िक बुलेटिन' एक प्रमुख संगीत पत्रिका है। बम्बई से ही प्रकाशित, 'नैशनल सेन्टर ऑफ परफार्मिंग आर्ट' संगीत पत्रिका की संपादिका सुश्री कुमुद मेहता हैं। यह पत्रिका अन्य कलाओं के लेखों के अलावा संगीत कला के लेख भी प्रकाशित करती है।

कलकत्ता से एक पत्रिका सुरघंटा (बांगला) का संपादन श्री नील रत्न बनर्जी कर रहे हैं। कलकत्ता से ही एक अन्य पत्रिका, 'विश्ववीणा' (बांगला) का संपादन श्री अमिताभ घोष कर रहे हैं। संगीत रिसर्च अकादमी कलकत्ता से भी एक पत्रिका प्रकाशित होती है। अरविन्द महाविद्यालय से कन्नड़ भाषा में प्रकाशित पत्रिका, 'गायन गंगा' एक विशेष संगीत पत्रिका है। संगीत नाटक अकादमी आंध्र प्रदेश से, 'नाट्य कला पत्रिका' तेलगू भाषा में प्रकाशित होने वाली पत्रिका, 'केली' दक्षिण भारत में पर्याप्त लोकप्रिय है। इसके अतिरिक्त 'श्रुति', 'सन्मुख', 'त्रिवेणी', संगीत पत्रिकाओं में भी संगीत संबंधी लेख प्रकाशित होते हैं।

'आकाशवाणी' पत्रिका' में आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों में दैनिक प्रसारण का विवरण प्रकाशित होता है। यह

यह पाक्षिक पत्रिका है। विभिन्न प्रदेशों में इस पत्रिका का प्रकाशन क्षेत्रीय भाषाओं में होता है। अंग्रेज़ी व हिन्दी भाषाओं में यह पत्रिका अब भी प्रकाशित हो रही है।

(द) शास्त्रीय संगीत तथा कलाकार

आज शास्त्रीय संगीत के जितने जलसे समारोह आयोजित किये जा रहे हैं; जितने विद्यालयों, विश्वविद्यालयों में संगीत शिक्षा दी जा रही है, समूचे इतिहास में ऐसी देखने को नहीं मिलती। लेकिन यह बड़ी अजीब बात है कि इतने पर भी ये शिक्षण संस्थायें अच्छे व मंचीय कलाकारों की जन्मभूमि नहीं बन पा रही हैं। यदि कोई प्रतिभा इनमें विकास कर भी जाती है तो मध्यम कोटि के कलाकारों से ऊपर नहीं उठ पाता है।

यह सवाल एक सीमा तक आज हमारी सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थिति से भी जुड़ा है। दरअसल शिक्षा की प्रणाली और शिक्षा के विषय में बड़ा अंतरंग रिश्ता होता है। आज जिसे हम शास्त्रीय संगीत कह रहे हैं, उसका विकास जिन सामंतीय परिस्थितियों में हुआ था वे आज से एकदम भिन्न थीं। शास्त्रीय संगीत के गुणग्राहक तब राजा-महाराजा थे; संगीतज्ञों को राजदरबारों में प्रश्रय मिलता था वहीं उनके शिष्यों का तथा उनका पालन-पोषण होता था। अतः तालीम और रियाज़ के जैसे अवसर उन परिस्थितियों में उपलब्ध थे वैसे आज नहीं हैं। तब कलाकारों का भविष्य उतना अनिश्चित नहीं था जितना कि आज। बड़े-बड़े राजदरबार अच्छे उस्तादों को अपनी शोभा बनाने के लिये उत्सुक रहते थे। बस, एक बार ऐसे उस्ताद की शागिर्दी मिलने पर ही सारा जीवन सुरक्षित हो जाता था। आज संगीत साधकों (विद्यार्थी), उदीयमान कलाकार तथा प्रस्थापित कलाकारों को भी जीविका की वैसी सुरक्षा प्राप्त नहीं है। पहले राजा तथा बादशाह कलावंतों और विद्यावंतों को आश्रय देना अपनी और राज्य की प्रतिष्ठा समझते थे। इन्हीं लोगों के आश्रय के कारण ३०-३०, ४०-४० साल सीखना, मेहनत करना, शागिर्द तैयार करना इन कलावंतों द्वारा संभव हो पाता था। यह सब कला संवर्धन की एकनिष्ठ तपस्या, खाना-पीना और कपड़े-लत्ते की कमी न होने से संभव हो सकी। इस प्रकार का आश्रय पाने पर आज

भी कलासाधक उम्र भर मेहनत साधना कर सकते हैं और फिर आज भी वैसे ही युगप्रवर्तक कलाकारों का जन्म हो सकता है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि कलाकार का समाज के प्रति कोई ठोस कर्तव्य है। परंतु कर्तव्य तथा अधिकार वस्तुत: सापेक्षिक शब्द हैं। यदि कलाकार का समाज के प्रति कुछ कर्तव्य है तो समाज का भी कलाकार के प्रति कुछ कर्तव्य है। क्या समाज का यह कर्तव्य नहीं कि, कला का जो उपासक समाज के सांस्कृतिक परिष्कार का गुरुतर कार्य भार अपने कंधों पर लिये हुये है, उसके जीवन को कुछ सरल बनाना अपना कर्तव्य समझे। जब कलाकार राज्याश्रित थे; जीवन की साधारण चिन्ताओं से मुक्त थे तब ही मध्यम श्रेणी के इस समाज में से ऐसे प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति उद्भूत होते थे जो कला के माध्यम से कुछ चमत्कार दिखा सकते थे। परंतु आज के कलाकारों को जीवन के संघर्ष में ही इतना पिस जाना पड़ता है कि उनकी प्रतिभा स्वयमेव ही कुंठित हो जाती है। फिर भी आज का समाज कलाकारों से प्रश्न करता है - "क्या आप दीपक राग गा सकते हैं? क्या दीपक राग गाने से सचमुच दीपक प्रज्वलित हो जाता है? संसार में असंभव तो कुछ भी नहीं यदि सतत् लगन सच्ची उपासना और वास्तविक तपस्या से ईश्वर प्राप्ति भी संभव है। संगीत कला की उत्कृष्टता के पक्ष में प्रश्न साधना का है। कितने कलाकार आज सच्चे कलाकार होने का दावा कर सकते हैं; कदाचित् एक भी नहीं। परंतु इस समस्या का उत्तरदायित्व क्या आज की परिवर्तित परिस्थितियों को नहीं है? घी के नाम पर मूँगफली का तेल अथवा डालडा खाने वाला कलाकार भला क्या चमत्कार दिखा सकेगा। गृहस्थी की गाड़ी में निरंतर पिसने वाले कलाकार से किसी चमत्कार प्रदर्शन करने की आशा करना व्यर्थ है। पूर्वकालीन गायकों की नित्य आठ-आठ घंटे रियाज़ करने की कहानी कोरी कहानी नहीं है। आज का कलाकार जीवन संघर्ष में इतना पिसा है कि अपने अस्तित्व के लिये अधिकांश समय व्यय करके भी वह देखता

है कि उसका गुज़ारा कठिनता से होता है। इन विषम परिस्थितियों ने अनेक ऐसे प्रतिभा सम्पन्न कलाकारों के उत्साह को नष्ट कर दिया है। जिनसे भविष्य में बड़ी-बड़ी आशायें थीं।

हमारे देश में अधिकांश ललित कलायें विशेष कर संगीत और नृत्य, राष्ट्र की आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक पूंजी का एक अविभाज्य अंग हैं और सदा रही हैं। यही कारण है कि देश के धार्मिक जीवन में भी इन्हें प्रश्रय मिला है और कला प्रेमी मानव ने अपने इष्ट देवों और देवियों में भी कला सम्बन्धी आरोपित कर दिया है। इसी कारण नटराज, कृष्णजी आदि अवतारों का हम संगीत के किसी न किसी विशेष यंत्र अथवा वाद्य से विशेष संबंध देखते हैं और उधर वीणा के बिना सरस्वती की कल्पना भी कठिन है। इन बातों से अनुमान लगाया जा सकता है कि भारत में संगीत और नृत्य को यहाँ के समाज ने कितना ऊँचा स्थान दे रखा है। इस दिशा में हम अतीत की महानता को देखकर ही हम संतोष नहीं कर सकते हमें इस बहुमूल्य बपौती को सुरक्षित ही नहीं रखना है बल्कि यथा संभव इसकी श्री वृद्धि भी करनी चाहिये। इसके लिये कला को जीवित रखने वाले कलाकार के जीवन को पूर्ण सुविधा प्रदान करना ताकि कला फूल-फूल सके समाज का कर्तव्य है।

भारतीय कलाकारों के धन प्राप्त करने के चार-पाँच मुख्य साधन हैं बहुत बड़े कलाकार तो रेडियो, सिनेमा और ग्रामोफोन कम्पनियों द्वारा अपनी जीविका कमा रहे हैं। कोई नया कलाकार यदि उनकी शरण लेता है तो वहाँ भी उसे निराशा ही हाथ लगती है। पहले तो किसी नवीन कलाकार को रेडियो सिनेमा या ग्रामोफोन पर अपना कार्यक्रम देने में ही कठिनाई होती है। इसके लिये उसे अनेकों की खुशामद करनी पड़ती है तब जाकर सिफारिश से कहीं काम चलता है। कलाकार की आय का यह साधन भी स्थायी अथवा दृढ़ नहीं है क्योंकि प्रतिवर्ष उसे नया 'कान्ट्रैक्ट' भरना पड़ता है। उसे यह भी भय बना रहता है कि व्यवस्थापक गण जब चाहें उसके प्रोग्राम

बंद कर दें।

संगीत शिक्षा द्वारा भी आय इतनी नहीं होती कि कलाकार निश्चिन्त होकर कला साधना कर सके विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयों की स्थिति तो फिर भी ठीक है। परंतु जो प्राइवेट विद्यालयों या ट्यूशन करके जीविका कमाते हैं उनका हाल और बुरा है। अध्यापन कार्य उन्हें निचोड़ डालता है फिर वह किसी मर्ज़ की दवा नहीं रहते।

इनमें से अनेक कलाकारों की आमदनी का साधन कॉलेज, स्कूल, सभा-सोसायटी में होने वाले संगीत समारोह भी हैं। इन जलसों की आय कुछ निश्चित नहीं होती। कभी ये समारोह हुये, कभी नहीं हुये। कुछ संगीतज्ञ पुस्तकें तथा लेखादि लिखकर पैसे प्राप्त कर लेते हैं। इन साधनों से प्राप्त आय इतनी नहीं होती कि कलाकार निश्चिंत होकर कला-साधना कर सके। तब वह अतिरिक्त आय के लिये आय के अन्य स्त्रोतों नौकरी अथवा व्यवसाय की ओर बढ़ता है। दो-तीन कार्य करके जीवन-यापन करने वाला कलाकार दिन भर इतना कठोर परिश्रम करता है कि उससे यह आशा नहीं की जा सकती कि वह दो-चार घंटे अपनी कला-साधना के लिये परिश्रम करे। तब नून, तेल, लकड़ी के चक्कर में संगीत कला की साधना सपना हो जाती है।

यह सर्वमान्य तथ्य है कि संगीत कलाकार देश व समाज के लिये एक अमूल्य देन है। बहुत पहले से ही बादशाह, राजा-महाराजा नवाब और रईस संगीत कलाकारों को संरक्षण देते थे। मकान, भोजन, वस्त्र तथा परिवार की सारी आवश्यकताओं से निश्चिन्त होने के कारण वे अपना पूरा समय संगीत साधना में लगाते थे। वस्तुतः जो भी कलाकार मन लगाकर आठ-दस घंटे संगीत साधना करेगा उसकी कला में निखार अवश्य आयेगा। उस समय दरबार की महफिलों में भी अच्छा इनाम भी कभी-कभी अलग से मिलता था। जिसके कारण जब कभी दरबार से बुलावा मिलता तो पूरी तैयारी से महफिल में गाते थे। कभी बाहर का कलाकार आ जाता तो बड़ी रोचक प्रतिस्पर्धा

होती थी। अंग्रेज़ों के आने के बाद ये लोग देशी रियासतों में ही बसे क्योंकि अंग्रेज़ी राज्य में उनके लिये कोई स्थान नहीं था।

सन् १९४७ के बाद इन संगीतज्ञों की हालत बिगड़ने लगी। कई घरानों के लोगों ने इस कार्य में रुचि लेना छोड़ दिया, क्योंकि संरक्षण के बिना कैसे परिवार पालते और कैसे चिन्तारहित होकर रियाज करते। वर्ष में दो-तीन संगीत सम्मेलनों तथा दो-तीन रेडियो प्रसारणों से कैसे गुज़र बसर हो सकती है। फिर भी कुछ रईस व देशी रियासतों में रहने वाले कलाकार किसी प्रकार अपनी कला व अपने परिवार को जीवित रखते रहे। देशी रियासतों की सुविधाओं को पूरी तरह से समाप्त करने के बाद ये कलाकार पूर्णरूपेण बेसहारा हो गये और नये लोग निरूत्साहित हुये।

संगीत के प्रचार व प्रसार के लिये यह आवश्यक है कि संगीतज्ञ और संगीत शिक्षा प्राप्त कराने वालों तथा संगीत की साधना करने वालों को कला की साधना के लिये उचित संरक्षण मिले। संगीत विद्यालय, ट्यूशन, रेडियो, टी.वी. तथा संगीत सम्मेलनों से आय तो होती है किंतु इतनी नहीं कि कलाकार निश्चिंत होकर संगीत-साधना या रियाज़ करे। कला में उत्कृष्टता लाने के लिये साधना तथा रियाज आवश्यक है और इसके लिये चिंता-रहित होकर पर्याप्त समय व सुविधायें मिलनी चाहियें। कुछ चोटी के कलाकार भले ही आज सुख सुविधापूर्वक रह रहे हों, किंतु इससे संगीत के शिक्षण और प्रचार-प्रसार में अधिक सहायता नहीं मिलती इस व्यवस्था में एक बड़ी त्रुटि यह है कि साधारण जिला स्तर का कलाकार, नौकरी और ट्यूशन में इतनी बुरी तरह फँसा रहता है कि उसे रियाज़ अथवा अभ्यास के लिये समय ही नहीं मिलता। इससे संगीत अध्यापक के निजी गायन-वादन का स्तर गिरता जाता है। इसका प्रभाव कालांतर में उसके शिष्यों पर भी पड़ता है। अब प्रश्न यह उठता है कि किसी प्रतिभावान उदीयमान संगीत साधक को क्या सुविधा प्रदान

की जाय कि वह वांछित साधना के साथ-साथ स्वयं तथा स्वयं के परिवार बच्चों के जीवन निर्वाह की व्यवस्था कर सके पहले इन्हें सरकारी खजानों से धन दिया जाता था आज भी सरकार उन्हें सरकारी खजाने से धन दे सकती है पर आज हमें समाजवादी व्यवस्था में इस पर बहुत सोच-समझकर योजना बनानी होगी, ताकि सरकार द्वारा दिये धन की दुरुपयोग न हो और वांछित व्यक्ति को सहायता मिल सके। यद्यपि इस प्रकार की योजना बनाने का कार्य अधिकारी व्यक्तियों का है। मेरी कल्पना के अनुसार इस प्रकार की व्यवस्था उपरोक्त समस्या का हल किये जाने के लिये की जा सकती है—

यहाँ संगीतज्ञों तथा संगीत साधकों के संरक्षण के संबंध में निम्नांकित स्तर पर विचार किया जा सकता है—

(1) जिला स्तर पर संगीत-शिक्षण, उसका प्रचार-प्रसार तथा संगीतज्ञों को प्रोत्साहन।

(2) प्रांतीय स्तर पर संगीत-शिक्षण, उसका प्रचार-प्रसार तथा संगीतज्ञों को प्रोत्साहन

(3) राष्ट्र स्तर पर संगीत-शिक्षण, उसका प्रचार-प्रसार और संगीतज्ञों को प्रोत्साहन।

उपर्युक्त कार्य के लिये सरकार को ही पहल करनी होगी और समाज को उसे अपना योगदान देना होगा। प्रत्येक जिले में एक या दो संगीत स्कूल खोलने के लिये सरकार अनुदान दे तथा ऐसी व्यवस्था करे कि उनका कार्य ठीक-ठीक चले। जिले का सूचना विभाग इस कार्य को कार्यान्वित ठीक ढंग से है अथवा नहीं देखे। सभी जिलों में इन संगीत-विद्यालयों का निरिक्षण कर उन्हें प्रतिवर्ष उचित अनुदान दिया जाय। इन संगीत विद्यालयों की व्यवस्था संस्थागत शिक्षा पद्धति तथा गुरुकुल शिक्षा पद्धति के समन्वय पर आधारित नवीन शिक्षा व्यवस्था के अनुरूप हो। हर जिले में वर्ष में एक बार विकास मेले के साथ ही संगीत प्रतियोगिता

करवाई जाय और जिला स्तर के संगीतज्ञ कलाकार ही तथा संगीत विद्यार्थी इनमें भाग लें। यदि मेले में अधिक धनराशि प्राप्त हो तो बाहर के कलाकार भी बुलाये जायें। स्थानीय संगीतज्ञों को इस मेले के अवसर पर अच्छी धनराशि भेंट की जाय।

वर्ष में एक बार प्रांतीय स्तर पर संगीत प्रतियोगितायें करवाई जायें। इसका आयोजन प्रांतीय सूचना विभाग और आकाशवाणी करे। जिला स्तर पर जो छात्रायें आगे रही हैं, उन्हें सरकारी खर्च पर प्रांतीय संगीत प्रतियोगिता में सम्मिलित किया जाय। प्रांतीय स्तर पर स्थान पाने वाले छात्र-छात्राओं को भी सर्टिफिकेट प्रदान किये जायें। प्रांतीय स्तर पर पुरस्कार पाने वाले छात्रों के गुरुओं को भी पुरस्कार में उचित धनराशि दी जाय। इन प्रान्तीय प्रतियोगिताओं में भी बीच में प्रांतीय संगीतज्ञों द्वारा भाव-प्रदर्शन करवाया जाय इस स्तर पर इनाम पाने वाले छात्र-छात्राओं का भी प्रदर्शन टी॰ वी॰ तथा रेडियो पर करवाया जाय। इसमें उन्हें उचित धन भी प्राप्त हो। इस स्तर के चयनित छात्र-छात्राओं की शिक्षा की विशेष व्यवस्था की जाय। इसके लिये उन्हें व उनके गुरुओं को पूर्ण आर्थिक सहायता प्रदान की जाय।

सभी प्रांतों के चयन किये गये छात्र-छात्राओं की अखिल-भारतीय-संगीत प्रतियोगिता दिल्ली में हो। प्रतियोगिता का पूरा खर्च (प्रतियोगियों के आने जाने तथा रहने खाने का खर्च भारत सरकार वहन करे) इस प्रतियोगिता में भी प्रथम तीन स्थान पाने वालों को सर्टिफिकेट ही दिये जायें। इस प्रतियोगिता का आयोजन तथा व्यवस्था रेडियो विभाग तथा संगीत नाटक अकादमी ही करे। प्रतियोगिता में उत्तीर्ण छात्र छात्राओं का कार्यक्रम भी टी॰ वी॰ तथा रेडियो द्वारा ही प्रसारित किया जाय। इस स्तर के छात्रों को पूरी-पूरी आर्थिक सुविधा प्रदान की जाय ताकि ये अखिल भारतीय संगीत अकादमी दिल्ली में देश के सर्वोच्च गुरुओं द्वारा अपनी संगीत-प्रतिभा बढ़ायें। यदि किसी विशेष क्षेत्र में छात्रों को (कलकत्ता, मद्रास, बंबई आदि

नगरों में) संगीत का उच्च कोटि का ज्ञान प्राप्त हो सकता है, तो उन्हें वह सुविधा भी दी जाय। देश भर के उच्चकोटि के संगीतज्ञों की सूची बनाई जाय और यदि उनसे यह कार्य लिया जाय, तो उन्हें अच्छी धनराशि भी प्रतिमास दी जाय।

उपर्युक्त व्यवस्था से जिला-स्तर के संगीतज्ञों को आर्थिक सहायता मिलेगी, जिससे वे अपना व परिवार का पालन-पोषण कर सकेंगे जो संगीतज्ञ देश के उच्चकोटि के कलाकार हैं, उन्हें देश के अलवा विदेशों से भी अच्छी आय होती है। परंतु ऐसे कलाकार कितनों को सिखा सकते हैं? अतः संगीत की उपयुक्त शिक्षा के लिये हमें जिला स्तर के संगीतज्ञों पर अधिक ध्यान देना है। 'संरक्षण' का अर्थ हमें राजा व नवाबों वाला संरक्षण न लेकर वर्तमान संगीतज्ञों व संगीत साधकों के लिये शासकीय तथा सामाजिक संरक्षण की विधि मजबूती से बनानी है। प्रत्येक जिले में सूचना व प्रसारण मंत्रालय से एक विभाग इस संबंध में स्थापित होना चाहिये जो संगीत के प्रचार व प्रसार में रहे तथा सरकार को उसके लिये वार्षिक बजट बनाना चाहिये। इसी विभाग का यह कार्य भी होगा कि अधिक उम्र के कलाकारों को जो कार्य करने योग्य न हों, सरकार से प्रतिमास उचित धनराशि दिलाकर उनका भरण-पोषण करें।

'भारतीय शास्त्रीय संगीत की वर्तमान स्थिति' अध्याय में 'जीविकोपार्जन की समस्या' अध्याय में कतिपय कलाकारों की वृद्धावस्था में जो दुर्दशा हुई उसके कुछ उद्धरण दिये गये हैं। रसूलन बाई की बुढ़ौती केवल उस संपूर्ण परिस्थिति की एक छोटी सी तस्वीर है जो भारत के अधिकांश ख्यातनाम उस्तादों कलाकारों को अपनी वृद्धावस्था में झेलनी पड़ी। इन विपन्नताओं के शिकार कलाकारों की दशाओं का वर्णन जब समाज के सम्मुख आता है तो अप्रत्यक्षतः कलाकार के प्रति एक दया का भाव भी उपजता ही है। शायद कुछ गहरे उतरकर देखा जाय तो असली सवाल यही है इतने दिनों सक्षम

और समर्थ ढंग से कला के क्षेत्र में काम करने वाला कोई भी व्यक्ति क्या समाज से केवल 'दया' की भीख चाहता है? क्या उसका कोई अधिकार बनता है या नहीं। तब यहाँ यह देखना कि ऐसा क्या हो सकता है कि कलाकार अपनी वृद्धावस्था, बिना अपना आत्मसम्मान खोये प्रतिष्ठा के साथ बिता सके।

विदेशों में कलाकारों की सहायता बीमा कंपनियाँ अनेक तरीकों से करती हैं। वे गाने वाले बजाने वाले तथा नर्तकों के विभिन्न अंगों का बीमा करती हैं और यदि दुर्भाग्यवश यदि उनके उस अंग का क्षय होता है तो बीमा कंपनियाँ अनेक तरीकों से घाटा पूरा करती हैं और उनकी रोटी चलती रहती है। भारत में बीमा कंपनियाँ, 'योगक्षेम' वहन करने का नारा भी लगाती हैं पर देश के कलाकारों के प्रति इतनी जागरूक नहीं हैं। यद्यपि बीमा निगम और बैंक आम आदमी के बुढ़ापे के लिये कई तरह की योजनाओं का विज्ञापन करता है; अच्छा होता कि वे कलाकार के लिये भी कुछ योजना बनाते। कलाकार से जब उनके अच्छे समय में जब उनकी प्रस्तुतियों में अच्छा पैसा आता है बीमे की आसान किस्तें बाँधी जा सकती हैं। अक्सर ही प्रकाशकों की तरह बहुत सी रेकार्ड बनाने और उन्हें बेचने वाली कम्पनियाँ कलाकारों से या तो कॉपी राइट खरीद चुकी होती हैं या रायल्टी देती ही नहीं। कलाकार को न तो इस शोषण का अंदाज़ ही होता है और न ही इस बात का पता चलने पर वह किसी तरह की मुकदमेबाज़ी ही कर पाता है। ऐसे तमाम अच्छे गायकों तथा वादकों के न जाने कितने रेकार्ड हैं जो अब भी बाज़ार में बिकते हैं पर उन कलाकारों को रायल्टी के नाम पर एक पैसा भी नहीं मिलता। वे केवल अपने यश के प्रचार से सुखी होते रहते हैं। बीमा कम्पनी इस दायित्व को निभा सकती हैं। वे मुकदमा लड़कर इस पैसे को वसूल कर लें और अपना मेहनताना

वसूलकर बाकी रकम कलाकारों के कोश में जमा कर दें; फिर कलाकार के बुढ़ापे में इस रकम की महीनेवार अदायगी की जाय। इससे उसका खर्च सुविधा पूर्वक चलता रहेगा उसे किसीका मोहताज होने से बचाया जा सकेगा। एक और रास्ता यह भी है कि पुराने रेकार्ड जिनकी रायल्टी सीमा समाप्त हो चुकी है उसके प्रकाशन पर रायल्टी की एक स्वल्पांश रकम एक कोष में बाँध दी जाय। कानून के द्वारा कंपनियों को उनके विक्रय में से एक छोटी रकम निकालनी होगी। इससे मुफ्तखोरी पर प्रतिबंध लगेगा और कलाकारों को अपने ही पुरखों की कमायी से कुछ हिस्सा इज्जत के साथ जीने के लिये वज़ीफे के तौर पर मिलता रह सकता है।

तीसरा उपाय कुछ व्यावसायिक कंपनियों से संगीत क्षेत्र में या अन्य कला क्षेत्र में कलाकारों को प्रश्रय देने के लिये अपील करना हो सकता है। भारतीय तंबाकू कंपनी (आई. टी. सी. रिसर्च अकादमी) इस तरह का संगीत अनुसंधान केन्द्र चला रही है। कई कलाकारों को शिक्षक के रूप में उसने अपने यहाँ नियमित वेतनमान पर रख छोड़ा है। इसी नमूने पर दूसरी व्यावसायिक कंपनियाँ भी संगीत क्षेत्र में काम कर सकती हैं। सरकार उन्हें इस काम में आगे आने के लिये आय कर आदि में छूट दे सकती है, प्रोत्साहित कर सकती है। इसी तरह के कई संस्थान हो जाने पर कलाकारों का भविष्य सुरक्षित तो हो ही जायेगा; विभिन्न घरानों शैलियों के संगीत के विकास में भी बहुत सार्थक काम हो सकेगा। दुर्भाग्य यही है कि भारत जैसे देश में जो लोग व्यावसायिक क्षेत्र के उच्चतम शिखरों पर हैं वे केवल राजनैतिक दबाव में ही जीते मरते हैं, उन्हें कला के क्षेत्र में आने की फुर्सत ही नहीं है।

एक और सम्मानजनक रास्ता कलाकारों की जीविका के लिये यह हो सकता है कि विभिन्न विश्वविद्यालयों में मान्य कलाकारों की राष्ट्रीय प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति

करके उन्हें पांच- पांच वर्षों के लिये अनुबंधित किया जाये। ये राष्ट्रीय प्रोफेसर किसी परीक्षा के लिये तैयारी न करवायें। वरन् वे संगीत के विद्यार्थियों को अच्छा संगीत सुनने तथा उसमें डूबने की क्षमता से साक्षात्कार करायेंगे। ऐसा विद्यार्थी जिसे सही संगीत की समझ हो जाये जो इस देश का भावी नागरिक बनेगा वह इस देश के लिये एक निश्चित सार्थक उपलब्धि होगी। इस तरह के राष्ट्रीय प्रोफेसर बनाने का काम यदि हर प्रदेश के सभी विश्वविद्यालय प्रारंभ कर दें तो वे कितने ही समर्थ गायकों अथवा वादकों को अपना सम्मान समय तक बचाये रखने में मदद कर सकेंगे।

इसके अतिरिक्त प्रत्येक नगर में संगीत समाज अथवा म्यूज़िक सर्कलों की स्थापना से भी इस दिशा में लाभ हो सकता है। संगीत समाज के कार्य ये हो सकते हैं।

१ श्रेष्ठ संगीतज्ञों के गायन-वादन-नृत्य के कार्यक्रम का आयोजन करना।
२ अपने इलाके कलाकारों की सूची बनाना उनका संगठन बनाना, बीच-बीच में स्नेहसम्मेलन के द्वारा उनमें स्नेह भाव बढ़ाना
३ श्रेष्ठ संगीतज्ञों के व्याख्यान परिसंवाद आदि का आयोजन करना।
४ संगीत के रसग्रहण के संबंध में सप्रयोग व्याख्यान आयोजित करना।
५ उदीयमान संगीत छात्रों के लिये प्रतियोगिताओं का आयोजन करना।
६ अच्छे संगीत ग्रंथालय की व्यवस्था करना, जिसमें संगीत ग्रंथों के अलावा कैसेट लायब्रेरी भी हो।

यह तो हुई संगीतकारों को प्रदान की जाने वाली सुविधाओं की बात अब संगीत कलाकार का समाज व अपनी कला के प्रति उत्तरदायित्व भी देखना है।

भारतवर्ष में सदैव ही कला को जीवन

के सर्वोच्च स्तर पर आसीन किया गया है। आध्यात्मवादी भारतीय संगीत कला को भौतिक जीवन से संबन्धित नहीं मानते। इसकी उपासना वह साधना है जिसके द्वारा मानवता के उस चरम लक्ष्य की प्राप्ति होती है जिसके लिये मानव आज तक प्रयत्नशील है। कला के विषय में बोलती हुई एक बार संयुक्त प्रांत की गर्वनर महोदया सरोजनी नायडू ने कहा था, "मनुष्यता की साधना के बिना कला कोई अर्थ नहीं है। कलाकार को सर्वप्रथम मनुष्य बनना है।" कला के इस उद्देश्य को मापदण्ड मानकर कहा जा सकता है कि जिन लोगों के सम्मुख कला का यह पावन उद्देश्य नहीं है, वे न कलाकार हैं और न उनकी कला वास्तविक कला।

हमारे प्राचीनतम संगीतज्ञ सदैव ही कला संयम, तप एवं गंभीर अध्ययन से प्राप्त करते रहे हैं। कला जीवन के लिये होती है और उसका लक्ष्य आत्म संस्करण है। प्रश्न यह है कि क्या आधुनिक संगीतज्ञ भी कला की साधना सात्विकता के साथ करते हैं, उत्तर मिलेगा नहीं? आज के संगीतज्ञों (या प्रत्येक प्रकार के कलाकारों) को दो कक्षाओं में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम कक्षा के कलाकारों की संज्ञा 'संयत कलाकार' तथा द्वितीय कक्षा के कलाकारों की संज्ञा 'असंयत कलाकार' दे सकते हैं। 'संयत कलाकार' ही वास्तविक कलाकार हैं क्योंकि वे कला की सात्विक उपासना करते हैं और नैतिक होते हैं। दोनों ही प्रकार के वर्गों के लिये दो प्रकार की मानसिक प्रवृत्तियाँ होती हैं। उन्हीं के लिये भारतवर्ष के प्रसिद्ध मनोविज्ञानाचार्य, काशी विश्वविद्यालय के प्राध्यापक श्री लालजीराम शुक्ल अपने एक लेख में लिखते हैं — "प्रत्येक मनुष्य के स्वभाव के दो अंग होते हैं, एक भोगेच्छु, दूसरा आदर्शवादी। एक सदा सुख की खोज में रहता है और दूसरा पूर्णता की ओर। पहले अंग को मनुष्य का पाशविक स्वत्व कहते हैं और दूसरे को उसका नैतिक अथवा विवेकी स्वत्व कहते हैं। मनुष्य के अंदर देवासुर संग्राम है। मनुष्य कभी अपने को एक स्वत्व से आत्मसात् करता है कभी

दूसरे से। जैसे-जैसे मनुष्य नैतिक स्वत्व को बली बनाता है वैसे-वैसे ही वह अपने आपको दूसरों की दृष्टि में ऊँचा उठाता है।" आप आगे नैतिकता के विषय में लिखते हैं कि-"जब तक मनुष्य नैतिक स्तर से ऊँचा नहीं उठता तब तक उसे आत्मसंतोष नहीं प्राप्त होता है।"[1] इस तरह हम देखते हैं कि मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास में नैतिकता एक आवश्यक सीढ़ी है।

यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि असंयत संगीतज्ञ की क्या पहचान है। जो संगीतज्ञ आत्मसंयम नहीं रखते अर्थात् जो खान-पान में अविवेकी हों, सर्वभक्षी, मद्यपी, चरित्रहीन, दंभी एवं मिथ्याचारी हों, नाना प्रकार की जघन्य क्रियाओं में रत हों तथा भौतिक ऐश्वर्य के लोलुप हों। तथापि जन मंच पर अपने प्रदर्शन द्वारा जम जाते हों या कुछ और कारणों के द्वारा जम जाते हों बरबस अपनी प्रशंसा करवा लेते हों ऐसे असंयत संगीतज्ञों के लिये कुछ लोगों का मत है, कुछ भी हो असंयमी अथवा सर्वदोष सम्पन्न होते हुये भी कला तो प्रस्तुत करते हैं और आनंद को उत्पन्न करते हुये संगीत के मुख्य ध्येय, चित्त रंजन की तो पूर्ति करते हैं। परंतु, ऐसे लोग भूल करते हैं वे कला को परख नहीं पाते हैं और आनंद, आनंद की तो परिभाषा भी नहीं जानते। तज्जन्य आनंद वास्तविक नहीं है। वह तो केवल एक धोखा है आनंद का अर्थ सांसारिक सुख या समृद्धि कदापि नहीं समझना चाहिये।

प्रायः लोगों का भ्रम है कि सांसारिक सुख, वैभव और चरित्र की उच्छृंखलता में 'निर्वाण' और 'नर्क' का अंतर है। दोनों की साधना एक नहीं हो सकती। कला का उद्देश्य अनिर्वचनीय आत्मानुभूति की प्राप्ति है और सांसारिक सुख की अभिलाषा से उक्त उद्देश्य की प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती। कला का चरित्र से निकटतम संबंध है। जब तक कलाकार में आत्मबल जो संयम, तप और अध्ययन से ही प्राप्त होता है, न होगा, तब तक कला की सेवा करना असंभव होगा। आज

की विश्वव्यापी असंगतियों को मिटाने के लिये कलाकार एवं वैज्ञानिकों के सामूहिक शुभ मंतव्य एवं प्रयत्न की आवश्यकता है। क्योंकि कला, विज्ञान और दर्शन का मूल ध्येय ऐसी आध्यात्मिक अनुभूति का प्रस्फुरण है जिसका आधार अद्वैत और विश्वैक्य की वह भावभूमि है जहाँ व्यक्ति-व्यक्ति में कोई भेद-भाव बाकी नहीं रह जाता।"

गुप्त काल संगीत कला के उत्थान का स्वर्ण युग माना गया है इसमें भी कलाकार के चरित्र को प्रथम महत्व दिया गया था। नैतिकता ऐसा गुण है जिससे अनुशासन व्यक्ति में सहज ही आता है। संगीत-साधना के लिये व्यक्ति में अनुशासन का गुण होना अतिआवश्यक है। अनुशासन से ही कलाकार कला साधना के स्तर को बनाये रखकर उसकी वृद्धि करेगा और यह कलाकार का कर्तव्य है कि वह कला की उन्नति का मार्ग निरंतर प्रशस्त करता रहे।

कलाकार का पद समाज की दृष्टि में एक उच्च पद है इस पद की गरिमा बनाये रखना कलाकार का कर्तव्य है। अतः उसे अपने खान-पान, चाल-चलन व्यवहार में किसी प्रकार का हल्कापन नहीं लाना चाहिये। इस संबंध में यह तर्क दिया जा सकता है कि अपने व्यक्तिगत जीवन में कोई कुछ भी करे। परंतु कलाकार का कर्तव्य समाज की विचारधारा को उच्चता की ओर ले जाना है। अतः जब उसे समाज के सम्मुख एक आदर्श प्रस्तुत करना है तो उसका व्यक्तिगत जीवन भी ऐसा हो कि सामान्य जन उससे प्रेरणा ग्रहण करें।

कलाकार को उदार होना चाहिये शिष्यों को कला का दान दिल खोलकर करना चाहिये। इसके पीछे उसका दृष्टिकोण यह होना चाहिये कि वह संस्कृति की अमूल्य धरोहर को इस माध्यम से सुरक्षित रख रहा है।

कलाकार को केवल पैसे के पीछे न पड़ना चाहिये। अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार गायक या

वादक अपना पारिश्रमिक लें इसमें कुछ भी अनुचित नहीं है। परंतु पारिश्रमिक लेते वक्त कलाकार को इतना ध्यान अवश्य रखना पड़ेगा कि जलसा कराने वाली व्यक्ति अथवा संस्था कौन सी है। मान लीजिये कोई धनवान किसी मंगलकार्य के निमित्त जलसा कराना चाहता हो अथवा कोई व्यक्ति टिकिट लगाकर जलसा करवाना चाहता हो तो गायक अपना पारिश्रमिक यथायोग्य वसूल करें; किन्तु इसे प्रथा न बनायें। संगीत की उन्नति के लिये आजकल प्रांतिक सरकारों की ओर से जलसे कराये जाते हैं जिनमें भारत के लगभग सभी कलाकार सम्मिलित होते हैं, तथा प्रवेश मूल्य भी अत्यल्प रखा जाता है। इस प्रकार के जलसे सरकार अपने फायदे के लिये नहीं, अपितु कलाकार का सम्मान बढ़ाने के लिये करती है। अतः कलाकार की अपेक्षा भी संयत होनी चाहिये। तात्पर्य यह है कि कलाकार को पारिश्रमिक वसूल करने के लिये समय और व्यक्ति का ध्यान रखना आवश्यक है।